HSC (N)- 303

उपचारात्मक पोषण

Therapeutic Nutrition

स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

HSC (N)-303

उपचारात्मक पोषण

Therapeutic Nutrition

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाई पास रोड, ट्रांसपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी-263139

फोन नं. 05946- 261122, 261123

टोल फ्री नं. 18001804025

फैक्स नं. 05946-264232, ई-मेल: info@uou.ac.in

http://uou.ac.in

अध्ययन बोर्ड

प्रोफेसर पी0 डी0 पंत निदेशक स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर लता पाण्डे विभागाध्यक्ष, गृह विज्ञान विभाग डी0एस0बी0 कैम्पस कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर दीक्षा कपूर प्राध्यापक, पोषण विज्ञान विभाग सतत् शिक्षा विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	प्रोफेसर मनीषा गहलौत प्राध्यापक, वस्त्र एवं परिधान विभाग गृह विज्ञान महाविद्यालय गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पन्तनगर, उत्तराखण्ड

डॉ0 दीपिका वर्मा सहायक प्राध्यापक गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 प्रीति बोरा सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्रीमती मोनिका द्विवेदी सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 ज्योति जोशी सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 पूजा भट्ट सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

पाठ्यक्रम संयोजक	**पाठ्यक्रम संपादन**
डॉ0 दीपिका वर्मा सहायक प्राध्यापक गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 प्रीति बोरा सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

इकाई लेखन	**इकाई संख्या**	**इकाई लेखन**	**इकाई संख्या**
एम0ए0 गृह विज्ञान MAHS- 01 की सम्बंधित इकाईयों का संशोधन एवं रूपांतरण	1-6	एम0ए0 गृह विज्ञान MAHS- 06 की सम्बंधित इकाईयों का संशोधन एवं रूपांतरण	7-13

ISBN-

समस्त लेखों/पाठों से सम्बन्धित किसी भी विवाद के लिए लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद के लिए जूरिसडिक्शन हल्द्वानी (नैनीताल) होगा।

कॉपीराइट: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष: 2025

संस्करण: सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

प्रकाशक: एम0पी0डी0डी0, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139 (नैनीताल)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

उपचारात्मक पोषण

Therapeutic Nutrition

HSC (N) - 303

खण्ड	इकाई	पृष्ठ संख्या
1 जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में आहार नियोजन	इकाई 1: आहार नियोजन की मूल अवधारणा	2-16
	इकाई 2: गर्भावस्था एवं धात्रीवस्था में पोषण	17-35
	इकाई 3: शैशवावस्था में पोषण	36-53
	इकाई 4: शालापूर्व तथा विद्यालयी आयु में पोषण	54-74
	इकाई 5: किशोरावस्था और प्रौढ़ावस्था में पोषण	75-88
	इकाई 6: वृद्धावस्था में पोषण	89-101
2 उपचारात्मक पोषण एवं आहार चिकित्सा- I	इकाई 7: उपचारात्मक आहार	103-118
	इकाई 8: जठरांत्रिय रोगों में आहार	119-135
	इकाई 9: हृदय रोगों में आहार	136-145
3 उपचारात्मक पोषण एवं आहार चिकित्सा- II	इकाई 10: मधुमेह में आहार	147-158
	इकाई 11: शारीरिक भार प्रबंध हेतु पोषण एवं देखभाल	159-173
	इकाई 12: लघु तथा दीर्घ अवधि ज्वर में आहार	174-187
	इकाई 13: अन्य अवस्थाओं में आहार	188-209

खण्ड 1:
जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में आहार नियोजन

इकाई 1: आहार नियोजन की मूल अवधारणा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 आहार नियोजन से अभिप्राय
1.4 आहार नियोजन की प्रक्रिया
1.5 आहार आयोजन के लाभ
1.6 आहार नियोजन को प्रभावित करने वाले कारक
1.7 आहार नियोजन के सिद्धान्त
1.8 आहार नियोजन करते समय ध्यान देने योग्य बातें
1.9 सारांश
1.10 पारिभाषिक शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

निरोगी रहने के लिए उत्तम पोषण आवश्यक है। उत्तम पोषण की प्राप्ति हेतु आहार में सभी पौष्टिक तत्वों का उचित मात्रा एवं अनुपात में रहना बेहद जरूरी है। कार्बोहाइड्रेट जहाँ ऊर्जा प्रदान करता है, वहीं प्रोटीन शरीर के निर्माणात्मक कार्यों को सम्पन्न करता है। विटामिन एवं खनिज लवण सुरक्षात्मक एवं नियंत्रणात्मक कार्य करते हैं। पौष्टिक तत्वों की अधिकता व कमी दोनों ही उत्तम स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद हैं। इसलिए व्यक्ति का भोजन हर दशा में सन्तुलित एवं पौष्टिक होना चाहिए।

सन्तुलित आहार के निर्माण के लिए आहार नियोजन करना आवश्यक है। व्यक्ति को उचित स्वास्थ्य हेतु उम्र, वजन, क्रियाशीलता व शारीरिक अवस्था के अनुरूप आहार दिया जाता है। परन्तु एक व्यक्ति के लिए एक आहार जो पूर्णतः पौष्टिक एवं सन्तुलित होगा, वही आहार दूसरे व्यक्ति के लिए असन्तुलित हो सकता है। इसका कारण यह है कि परिवार में सदस्यों की उम्र, लिंग, विकास अवस्था, क्रियाशीलता आदि एक समान नहीं होते। अतः एक अच्छे आहार नियोजन द्वारा सम्पूर्ण परिवार को एक सन्तुलित भोजन प्रदान किया जा सकता है जो उन्हें स्वस्थ व निरोगी बनाए रखने में सहायक सिद्ध होता है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जानेंगे:

- आहार नियोजन से अभिप्राय;
- आहार नियोजन की प्रक्रिया;
- आहार आयोजन के लाभ;
- आहार नियोजन को प्रभावित करने वाले कारक;
- आहार नियोजन के सिद्धान्त; एवं
- आहार नियोजन करते समय ध्यान देने योग्य बातें।

1.3 आहार नियोजन से अभिप्राय

सभी भोज्य समूह के भोज्य पदार्थों की मात्रा को आहार में इस तरह से सम्मिलित करना जिससे कि परिवार के सभी सदस्यों को सभी पौष्टिक तत्व पर्याप्त मात्रा में मिल सकें तथा वे स्वस्थ एवं निरोगी रहकर अपने-अपने कार्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्वहन पूर्ण कुशलता से कर सकें, आहार नियोजन कहलाता है।

आहार नियोजन के द्वारा गृहिणी उपयुक्त भोजन की व्यवस्था सीमित साधनों (समय, धन, शक्ति) के अन्तर्गत ही कर सकती है। इससे परिवार के आय के अनुसार ही पौष्टिक भोजन व्यवस्था सुगम तरीके से सम्भव हो जाती है।

1.4 आहार नियोजन की प्रक्रिया

एक औसत परिवार के लिए आहार आयोजन की प्रक्रिया निम्न बिन्दुओं पर आधारित होनी चाहिए-

- आहार आयोजन पूरे दिन (24 घण्टे) को एक इकाई मानकर किया जाना चाहिए।
- एक दिन के 6 आहार (3 मुख्य आहार तथा 3 अतिरिक्त आहार) के लिए एक साथ आहार नियोजन किया जाना चाहिए।
- आहार नियोजन प्रातः 6-7 बजे से शुरू करके रात्रि के 8:30-9:30 बजे के मध्य होना चाहिए।
- परिवार के सभी सदस्यों की आयु, लिंग, अवस्था, क्रियाशीलता आदि के आधार पर पौष्टिक तत्वों की माँग के अनुसार भोज्य पदार्थों की आवश्यक मात्रा का ज्ञान होना चाहिए।
- भोजन के सभी भोज्य समूहों (अनाज, दाल, हरी पत्तेदार सब्जियाँ व अन्य सब्जियाँ, माँस- मछली, घी, तेल, गुड़, शक्कर, फल, दूध आदि) के अनुसार आहार नियोजन होना चाहिए।
- एक वर्ष तक के शिशु को उपभोक्ता इकाई में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए।
- आर्थिक स्थिति के अनुरूप ही आहार नियोजन होना चाहिए ताकि व्यक्ति की आर्थिक स्थिति में असन्तुलन न हो।

- आहार नियोजन करते समय सर्वप्रथम गृहिणी को भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद् (ICMR) द्वारा विभिन्न, आयु, लिंग एवं कार्यों के अनुसार पोषक तत्वों की दैनिक प्रस्तावित मात्रा की तालिका के द्वारा अपने परिवार के विभिन्न सदस्यों की प्रतिदिन की पोषण सम्बन्धी आवश्यकताएं ज्ञात करनी आवश्यक हैं।
- आहार में पौष्टिकता बढ़ाने के लिए प्रत्येक खाद्य समूह से कम से कम एक खाद्य पदार्थ शामिल करना आवश्यक है। इससे परिवार को सभी पोषक तत्व उचित अनुपात में सन्तुलित रूप से प्राप्त हो सकते हैं।

1.5 आहार आयोजन के लाभ

आहार आयोजन एक मानसिक प्रक्रिया है जिसका मुख्य उद्देश्य परिवार के समस्त सदस्यों को उचित पोषण देना है। इसके लाभ निम्नलिखित हैं-

- परिवार के प्रत्येक सदस्य को उसकी शरीर की माँग के अनुसार सन्तुलित आहार की पूर्ति करना जिससे वे शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहें।
- अच्छे आहार नियोजन से समय की बचत होती है।
- कम समय में अधिक काम किया जा सकता है तथा पूर्ण योजना के कारण शक्ति की बचत होती है।
- आहार नियोजन से धन की भी बचत होती है। इसके द्वारा खाद्य बजट बहुत अच्छी तरह व्यवस्थित रखा जा सकता है।
- परिवार में प्रत्येक सदस्य की रुचि का ध्यान रखा जा सकता है। भोजन के स्वाद, रंग-रूप तथा पकाने की विधियों में विभिन्नता सदस्यों की भूख बढ़ाती है तथा भोजन अधिक चाव से खाया जाता है।
- भोज्य पदार्थों का दोहराव नहीं होता इससे भोजन में उदासीनता नहीं होती।
- विशेष विकास अवस्था से गुजरने वाले परिवार के सदस्य जैसे गर्भावस्था, धात्रीवस्था, किशोरावस्था आदि की उचित देखभाल आसान हो जाती है।
- आहार नियोजन से सब्जी, फल आदि की खरीददारी सरल व जल्दी हो जाती है।
- भोज्य पदार्थ में पौष्टिक मूल्य मालूम रहने से भोजन के चुनाव में कठिनाई नहीं होती है, साथ ही भोजन में विविधता लायी जा सकती है।
- जिन परिवारों में घी, दूध, अण्डा, दही आदि भोज्य पदार्थ आर्थिक विपन्नता के कारण नहीं खरीदे जा सकते हैं, वहाँ आहार नियोजन के द्वारा विटामिन एवं खनिज लवणों की पूर्ति सस्ते फल एवं सब्जियाँ जैसे-पालक, बथुआ, गाजर, मूली, पपीता, लौकी, आदि खरीदकर आहार में सम्मिलित किये जा सकते हैं।
- आहार नियोजन न केवल घर में ही आवश्यक है बल्कि इसका उपयोग छात्रावास, होटल, कैन्टीन, अस्पताल, वायुयान भोजन सेवा, रेलवे कैन्टीन आदि स्थानों में भी किया जा सकता है।

- गृहिणी को इस बात की भी जानकारी हो जाती है कि सस्ते भोज्य पदार्थ भी सभी पौष्टिक तत्वों से परिपूरित एवं भरपूर होते हैं। ऐसा नहीं है कि महँगे फल एवं महँगी सब्जियाँ ही पोषक तत्वों से परिपूर्ण होते हैं। अतः वह आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर भोजन तैयार कर सकती है।
- आहार नियोजन में सुबह या दोपहर की बची हुई वस्तुओं का उपयोग नवीन व्यन्जन बनाने हेतु किया जा सकता है। जैसे दोपहर में दाल या सब्जी बच गयी है तो इसका उपयोग रात्रि के खाने में आटे के साथ गूँथकर पराँठे बनाने में किया जा सकता है।

1.6 आहार नियोजन को प्रभावित करने वाले कारक

आहार नियोजन द्वारा विभिन्न तरीकों से भोजन में बदलाव लाकर पौष्टिकता सुनिश्चित की जाती है जिससे परिवार के सदस्यों की आवश्यकता पूर्ति हो। प्रत्येक परिवार में अनेक ऐसे कारक होते हैं जो आहार नियोजन को प्रभावित करते हैं। अगर इन कारकों को ध्यान में न रखा जाये तो आहार नियोजन का उद्देश्य निरर्थक रह जाता है। अतः गृहिणी को सावधानी पूर्वक सभी कारकों की जानकारी होनी आवश्यक है। आहार नियोजन को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक निम्न हैं-

1. आयु- प्रत्येक व्यक्ति की पोषणीय आवश्यकताएं उसकी आयु पर निर्भर करती हैं। परिवार में हर आयु वर्ग के सदस्य होते हैं। विभिन्न आयु के अनुसार पोषण आवश्यकताएं भिन्न पायी जाती हैं। जैसे बच्चों को व्यस्कों की अपेक्षा अधिक शरीर निर्माणक पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता होती है। बच्चे वृद्धि एवं विकास की अवस्था में होते हैं। व्यस्कों में वृद्धि एवं विकास पूर्ण हो चुका होता है। उन्हें शरीर में हो रही टूट-फूट को पूर्ण करने के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। बालक तेजी से बढ़ रहे होते हैं अतः उन्हें अधिक ऊर्जा व प्रोटीन युक्त भोजन की आवश्यकता होती है। परन्तु यही भोजन परिवार के वृद्धजन आसानी से नहीं पचा सकते। आयु के कारण उन्हें अधिक सुपाच्य व साधारण भोजन की आवश्यकता होती है। अतः आयु के अनुसार आवश्यकता एवं पाचन क्षमता भी विभिन्न होने के कारण हर सदस्य में भिन्नता होती है।

2. लिंग- आहार नियोजन में लिंग भी आवश्यक कारक है। पुरूष तथा स्त्री की पौष्टिक आवश्यकताएं भिन्न होती हैं। पुरूष व स्त्री की लम्बाई व भार अलग-अलग होते हैं। पुरूषों में मांसपेशियों की मात्रा अधिक होती है। इससे उनकी ऊर्जा व प्रोटीन आवश्यकताएं स्त्री से ज्यादा होती हैं। इसके अलावा साधारणतः पुरूष अधिक क्रियाशील होते हैं इससे भी उनकी ऊर्जा आवश्यकताएं ज्यादा देखी जाती हैं। स्त्रियों को मासिक धर्म और विशेष परिस्थितियों जैसे गर्भावस्था, धात्रीवस्था आदि में अत्यधिक पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है। बालक व बालिकाओं की दैनिक आवश्यकताएं भी भिन्न होती हैं क्योंकि विकास अवस्थाओं में बालक व बालिकाएं भिन्न गतियों से बढ़ते हैं। सामान्यतः बालिकाएं बालकों से जल्दी परिपक्वता प्राप्त करती हैं। अतः किशोरावस्था में बालिकाओं की पोषणीय आवश्यकताएं बालकों से अधिक होती हैं।

3. शारीरिक आकार- शरीर के आकार से अनुसार पोषण आवश्यकताएं भिन्न होती हैं। लम्बे चौड़े व्यक्ति को दुबले-पतले व्यक्ति की अपेक्षा अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती हैं। उदाहरण के लिए एक 5 फुट 5 इन्च के व्यक्ति की अपेक्षा 6 फुट के व्यक्ति की पोषक तत्वों की माँग अधिक होगी। लम्बाई चौड़ाई बढ़ने के साथ ही शरीर में कोशिकाओं की मात्रा भी बढ़ जाती है। इसी कारण उनके रख रखाव व टूट फूट हेतु पोषण भी अधिक मात्रा में चाहिए होता है। इसी तरह कसरत या अधिक व्यायाम करने वाले व्यक्तियों के शरीर में माँसपेशियाँ काफी मात्रा में विकसित हो जाती हैं। ऐसे व्यक्तियों को सामान्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक मात्रा में प्रोटीन व विटामिन तथा खनिज लवणों से परिपूर्ण आहार की आवश्यकता होती है।

4. व्यवसाय- प्रत्येक व्यक्ति का व्यवसाय अलग-अलग होता है। कोई शारीरिक श्रम अधिक करता है तो कोई मानसिक श्रम अधिक करता है। क्रियाशीलता के अनुसार व्यक्ति अल्प क्रियाशील, मध्यम क्रियाशील और अत्यधिक क्रियाशील हो सकता है। जो व्यक्ति मुख्यतः ऑफिस में बैठकर काम करते हैं वह मानसिक श्रम में ही लिप्त होने के कारण अल्प क्रियाशील व्यक्ति की श्रेणी में आते हैं। ऐसे व्यक्तियों को ऊर्जा से अधिक प्रोटीन, विटामिन व खनिज लवणों की अधिक आवश्यकता होती है। वहीं दूसरी ओर अत्यधिक क्रियाशीलता वाले व्यक्ति उन व्यवसायों के माने जाते हैं जहाँ शारीरिक परिश्रम अधिक होता है। ऐसे व्यक्तियों को अधिक ऊर्जा के साथ ही अधिक वसा व कार्बोहाइड्रेट की भी आवश्यकता होती है। इनको गरिष्ठ व भारी भोजन देना चाहिए जिससे अधिक देर तक तृप्ति की अनुभूति हो। क्रियाशीलता कम करने वाले व्यक्तियों को पोषक परन्तु सुपाच्य भोजन देना चाहिए। अतः क्रियाशीलता व्यक्ति के भोजन पर काफी प्रभाव डालती है। यह भोजन में पोषण गुण ही निर्धारित नहीं करता अपितु भोजन के प्रकार व मात्रा भी बताता है।

5. परिवार की आय- परिवार की आय अथवा आर्थिक दशा भी आहार नियोजन को प्रभावित करती है। सभी सदस्यों की पोषणीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सभी उपयुक्त खाद्य स्रोतों को परिवार की आय के अनुसार ही शामिल करना चाहिए। आय के अनुसार ही सस्ते व महँगे भोज्य पदार्थों को आहार में सम्मिलित करना सम्भव है। यह सोच गलत है कि महँगे भोज्य पदार्थ ही पौष्टिक होते हैं। सस्ते भोज्य पदार्थों द्वारा भी उत्तम व पौष्टिक भोजन तैयार किया जा सकता है। उदाहरण के लिए खनिज लवणों व विटामिन की प्राप्ति हेतु टमाटर, गाजर, पालक, मूली, पपीता, अमरूद आदि सस्ते पदार्थों का उपयोग किया जा सकता है। दूध के स्थान पर मट्ठा और वसा रहित दूध का प्रयोग किया जा सकता है जो कि लगभग समान पोषण प्रदान करता है। अण्डा, माँस, मछली के स्थान पर सोयाबीन, चना, मूँगफली आदि भी प्रोटीन के काफी अच्छे स्रोत माने जाते हैं। सन्तरे, मौसमी महँगे होने के कारण नींबू, आँवला, टमाटर, हरी मिर्च आदि विटामिन 'सी' की प्राप्ति के सस्ते साधन सिद्ध हो सकते हैं।

6. विशेष अवस्था- विकास की विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार ही पोषण माँगों में वृद्धि अथवा कमी हो जाती है। बाल्यावस्था में अत्यधिक तेजी से बढ़ने के कारण शारीरिक आवश्यकताएं तीव्र होती हैं। वहीं वृद्धावस्था में पोषणीय माँग कम होती हैं क्योंकि शरीर की वृद्धि रूक चुकी होती है। गर्भावस्था और धात्रीवस्था आदि में पोषण माँग में वृद्धि हो जाती है। किसी भी रोग में क्रियाशीलता कम होने के कारण ऊर्जा की आवश्यकता कम हो सकती है परन्तु रोग से लड़ने के लिए प्रोटीन व विटामिन तथा खनिज लवणों की उपयुक्त मात्रा में जरूरत होती है। किसी पोषण हीनता जनित रोग में कुछ पोषक तत्वों की माँग अत्यधिक रूप से बढ़ जाती है। किसी रोग में कोई तत्व हानिकारक भी हो सकता है

जैसे मधुमेह में कार्बोहाइड्रेट तथा हृदय सम्बन्धी रोगों में वसा। अतः हानिकारक भोज्य पदार्थों को आहार में सम्मिलित नहीं करना चाहिए तथा लाभान्वित करने वाले पदार्थों को आहार में विशेष स्थान देना चाहिए। इससे रोग मुक्त तथा स्वस्थ रहने में सहायता मिलती है। गृहिणी को आहार नियोजन करने से पहले सभी सदस्यों के स्वास्थ्य व विकास दृष्टि से अवस्था का अवलोकन आवश्यक रूप से करना चाहिए।

7. जलवायु एवं मौसम- भोजन को मौसम व जलवायु भी प्रभावित करते हैं। गर्मियों में सर्दी की अपेक्षा कम पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। गर्मी में ठण्डे पेय जैसे लस्सी, छाछ आदि तथा सर्दी में गर्म पेय जैसे कॉफी, चाय, गर्म सूप आदि अच्छे लगते हैं। इसी कारण गर्मियों में कम आहार ग्रहण किया जाता है। मौसम में ताजे एवं सस्ते फल व सब्जी जो भी उपलब्ध हों, उन्हें आहार में सम्मिलित करना चाहिए। यद्यपि बाजार में बिना मौसम के भी खाद्य पदार्थ उपलब्ध हो जाते हैं, परन्तु ताजे फल-सब्जी पौष्टिकता के आधार पर ज्यादा सेहतमंद होते हैं।

8. धर्म- धर्म भी आहार नियोजन का एक महत्वपूर्ण कारक है। कुछ धर्मों में माँस, मछली, प्याज, लहसुन आदि पदार्थ वर्जित होते हैं। अतः उन परिवारों में ऐसे खाद्य पदार्थों का सेवन नहीं किया जाता है। इन पदार्थों के स्थान पर समान पोषणीय मूल्य वाले खाद्यों को आहार में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

9. एलर्जी व रोग- कुछ प्रकार के रोगों व एलर्जी में किसी विशेष खाद्य का प्रयोग वर्जित होता है जैसे गेहूँ की एलर्जी अथवा अण्डे की एलर्जी। गृहिणी को आहार नियोजन करने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि उसके द्वारा सोची गई खाद्य योजना से किसी सदस्य को हानि तो नहीं। सभी भोज्य पदार्थ सभी के लिए सम्पूर्णतः सुरक्षित होने चाहिए जिससे किसी भी स्वास्थ्य समस्या को बढ़ावा न मिले।

10. खाद्यों की उपलब्धता- खाद्यों की उपलब्धता आहार नियोजन का अत्यावश्यक कारक है। खाद्य पदार्थों की उपलब्धता के आधार पर ही खाद्य योजना बनाई जा सकती है। कुछ जगहों पर यातायात सुविधा उचित न होने की वजह से सभी फल व सब्जियाँ पर्याप्त रूप से पहुँच नहीं पातीं। उदाहरण के लिए दुर्गम व पहाड़ी क्षेत्रों में अक्सर यातायात सुविधाएं ठप होने से खाद्य आपूर्ति प्रभावित हो जाती है। अतः आहार में स्थानीय खाद्य पदार्थों की प्रधानता रखकर ऐसी समस्याओं से निपटा जा सकता है। इसके अतिरिक्त भोजन संरक्षण की नवीनतम विधियों को अपनाकर भोज्य पदार्थों को अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

11. समय एवं शक्ति की उपलब्धता- वर्तमान समय में नारी भी कार्यशील हो गयी है। वह भी दिनभर कामकाजी होने के कारण अत्यधिक व्यस्त दिनचर्या व्यतीत करती है। आहार नियोजन करते समय तालिका इस प्रकार बनानी चाहिए जिससे समय और श्रम की बचत हो सके। स्त्री को सुबह ही काम पर जाना होता है। अतः भोजन की सभी व्यवस्था सुबह ही कर ली जाती है। घर के सभी सदस्यों को मिल-जुलकर समय व शक्ति की उपलब्धता के आधार पर ही आहार नियोजन की योजना बनानी चाहिए।

12. आदतें- आहार नियोजन में व्यक्ति की आदतों का भी विशेष प्रभाव होता है। यदि परिवार में किसी सदस्य को सुबह चाय पीने की आदत है तो उसे समय पर चाय मिलनी चाहिए। किसी को चाय पसन्द नहीं है तो उसे दूध, कॉफी आदि दिया जा सकता है। आदतों को त्यागना कठिन होता है। इसी प्रकार किसी को भोजन में चावल खाने से ही तृप्ति

का अनुभव होता है, किसी को भोजन के बाद मीठा खाने की आदत होती है। अगर इन आदतों का ध्यान नहीं रखा जाये तो यह भोजन की स्वीकार्यता को प्रभावित करता है तथा परिवार के सदस्य भोजन को खुश होकर नहीं खाते। कुछ आदतें भोजन के स्वाद सम्बन्धी भी होती हैं जैसे किसी को मसालेदार भोजन नहीं अच्छा लगता, वहीं कुछ लोगों को मिर्च-मसाला बहुत आकर्षित करता है। अतः घर के छोटे बच्चे व अन्य लोग जो मसाला नहीं खा सकते उनके लिए दाल-सब्जी अलग से निकाल देनी चाहिए जिससे सम्पूर्ण भोजन मसालेदार न हो।

13. रुचि- परिवार में सभी सदस्यों की रुचियों में भिन्नता होती है। आहार नियोजन करते समय सभी की रुचियों को ध्यान में रखना चाहिए। भोजन सभी की आवश्यकतानुसार व रुचिप्रद होना चाहिए। कुछ भोज्य पदार्थ जो अत्यधिक पसन्द किये जाते हों, वह आहार में बार-बार शामिल किये जाने चाहिए। जैसे अगर सभी सदस्य पनीर पसन्द करते हैं तो बजट के हिसाब हफ्ते में पनीर का इस्तेमाल ज्यादा किया जा सकता है। वहीं अगर बच्चे हरी सब्जी पसन्द नहीं करते तो इसको किसी दूसरी तरह भोजन में शामिल करें जैसे भरवा परांठा आदि। रुचिकर भोजन सभी सदस्य पेट भर खाते हैं जिससे हम उनके उचित स्वास्थ्य की देखभाल कर सकते हैं।

14. सदस्यों की संख्या- आहार नियोजन को परिवार का आकार या सदस्यों की संख्या प्रभावित करती है। परिवार के आकार में वृद्धि होने पर प्रति व्यक्ति धन जो आहार पर व्यय किया जाता है, घटने लगता है। अतः परिवार का संगठन भोजन की मात्रा एवं गुणवत्ता को प्रभावित करता है। बच्चों की अधिक संख्या होने पर भी आय का बहुत बड़ा भाग आहार पर ही व्यय होता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही अथवा गलत बताएं।
   a. एक वर्ष तक के शिशु को उपभोक्ता इकाई में सम्मिलित करना चाहिए।
   b. अच्छे आहार नियोजन से समय की बचत होती है।
   c. आहार नियोजन घर के अलावा कैन्टीन व हास्टलों में भी प्रयोग में लाया जाता है।
   d. आहार नियोजन में व्यक्ति के लिंग का कोई महत्व नहीं है।
   e. सभी व्यवसाय के व्यक्तियों की पोषणीय आवश्यकताएं समान होती हैं।
   f. लम्बे चौड़े व्यक्ति की पोषक तत्वों की आवश्यकताएं अधिक होती हैं।
   g. अत्यधिक क्रियाशील व्यक्ति को ज्यादा ऊर्जादायक भोजन देना चाहिए।
   h. गर्भावस्था तथा धात्रीवस्था में पोषण माँग बढ़ जाती है।
   i. परिवार की आय कम होने पर आहार नियोजन सम्भव नहीं है।
   j. मौसम व जलवायु आहार नियोजन को प्रभावित करते हैं।

1.7 आहार नियोजन के सिद्धान्त

आहार नियोजन परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए किया जाना चाहिए ताकि उसे पूर्ण पौष्टिक एवं सन्तुलित भोजन की प्राप्ति हो सके, साथ ही उसे अधिकतम सन्तुष्टि व तृप्ति मिले। इन सबके लिए आहार नियोजन के कुछ आवश्यक सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाना चाहिए। यह सिद्धान्त निम्न हैं-

1. पोषणीय उपयुक्तता- पोषणीय उपयुक्तता से तात्पर्य है कि प्रत्येक सदस्य की पोषक तत्वों की मात्रा की पूर्ति हो। परिवार के सभी सदस्य आयु, लिंग, अवस्था एवं कार्यशीलता में भिन्नता रखते हैं। इन्हीं भिन्नताओं पर उनकी पोषणीय आवश्यकताओं में भी भिन्नता पायी जाती है। साथ ही भोज्य तत्वों की आवश्यक मात्रा भी समय-समय पर परिवर्तित होती रहती है जैसे एक वर्ष का बालक दो वर्ष का हो जाता है, सामान्य स्त्री गर्भवती स्त्री बन जाती है, प्रौढ़ व्यक्ति वृद्ध बन जाता है आदि। इन्हीं सब परिवर्तनों द्वारा सभी सदस्यों की पोषण माँगें बदलती रहती हैं। आहार नियोजन में आसानी हेतु सभी भोज्य समूहों को तीन मुख्य भागों में बाँटा गया है। गृहिणी को इन तीनों वर्गों के भोजन को उचित मात्रा में शामिल कर एक आदर्श व पौष्टिक आहार तैयार करने में मदद मिलती है-

- **ऊर्जा देने वाले भोज्य पदार्थ-** इस वर्ग में वह भोज्य पदार्थ आते हैं जो ऊर्जा अधिक देते हैं अर्थात् ये भोज्य पदार्थ कार्बोहाइड्रेट के अच्छे स्त्रोत होते हैं जैसे अनाज और उनके उत्पाद (दलिया, मैदा, चिवड़ा, आटा आदि), कन्दमूल (मूली, गाजर, आलू, शकरकन्द, चुकन्दर आदि), चीनी, गुड़ आदि। इसके अलावा इस वर्ग में वसा के स्त्रोत भी आते हैं जैसे सूखे मेवे, तेल, घी आदि। इस वर्ग में शामिल अनाज ऊर्जा के साथ प्रोटीन व बी विटामिन का भी अच्छा स्त्रोत होते हैं। वसा व शक्कर न केवल ऊर्जा प्रदान करते हैं वरन् यह भोजन को स्वाद व मनमोहक गन्ध भी प्रदान करते हैं।
- **शरीर निर्माणात्मक भोज्य पदार्थ-** इस वर्ग में वह भोज्य पदार्थ आते हैं जो कोशिका के निर्माण व टूट-फूट रखरखाव सम्बन्धी प्रोटीन के मुख्य स्त्रोत होते हैं। प्राणिज स्त्रोतों से प्राप्त भोज्य पदार्थ जैसे दूध व दुग्ध उत्पाद, अण्डे, माँस, मछली बहुत अच्छी गुणवत्ता का प्रोटीन माने जाते हैं। यह प्रोटीन सर्वोत्तम इसलिए माना जाता है क्योंकि इसमें सभी आवश्यक अमीनो अम्ल उचित मात्रा में पाये जाते हैं। यह शरीर में आसानी से अवशोषित हो माँसपेशियों की कोशिकाओं का निर्माण व अन्य शारीरिक रखरखाव सम्बन्धी कार्यों में इस्तेमाल होता है। वहीं वानस्पतिक स्त्रोतों जैसे दाल, फलियाँ, मेवे आदि से भी प्रोटीन प्राप्त किया जा सकता है परन्तु तुलनात्मक रूप से यह निम्न गुणवत्ता वाला माना जाता है। इस वर्ग में शामिल सभी प्रोटीन के स्त्रोत ऊर्जा, विटामिन ए व विटामिन बी के भी अच्छे स्त्रोत माने जाते हैं।
- **सुरक्षात्मक भोज्य पदार्थ-** यह वर्ग उन भोज्य पदार्थों को शामिल करता है जो विटामिन एवं खनिज लवणों के मुख्य स्त्रोत होते हैं। यह हमारे शरीर के सभी सुरक्षात्मक कार्यों को करते हैं। सब्जियाँ विशेषकर हरी सब्जियाँ लौह लवण, कैल्शियम, बीटा कैरोटीन, विटामिन सी और रेशे की अत्यधिक मात्रा धारण करते हैं। गहरे पीले व लाल फल जैसे सन्तरा, आम, कद्दू आदि खट्टे फल भी विटामिन सी व विटामिन ए का मुख्य स्त्रोत माने जाते हैं।

सभी भोज्य पदार्थ अपनी विशिष्ट विशेषताएं रखते हैं अतः व्यक्ति विशेष की आवश्यकताओं के अनुसार गृहिणी उनका प्रयोग कर पौष्टिकता मूल्य में वृद्धि कर सकती है। उम्र व विकास अवस्था में अलग-अलग वर्गों के भोज्य समूह द्वारा भोजन तैयार किया जाना चाहिए जैसे बालकों को ऊर्जा देने वाले भोजन अधिक व वृद्धों को सुरक्षात्मक भोजन अधिक देने चाहिए। पोषक तत्वों की माँगों के अनुसार इन वर्गों का उचित तालमेल करके परिवार का उत्तम स्वास्थ्य सुनिश्चित किया जा सकता है।

2. बजट सम्बन्धी मितव्ययिता- आहार नियोजन में बजट का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। महँगाई बहुत अधिक है और परिवार के साधन सीमित होते हैं। गृहिणी को यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि किन-किन भोज्य तत्वों में कौन-कौन से पोषक तत्व विद्यमान हैं। उसे सस्ते भोजन से भी रुचिकर एवं मनोहारी भोजन पकाने की कला एवं परोसने की कला आनी चाहिए। उसे विभिन्न भोज्य पदार्थों के गुणों के बारे में जानना भी आवश्यक है क्योंकि यदि किसी कारणवश किसी भोज्य पदार्थ की उपलब्धता नहीं हो पाती है अथवा वह बहुत ही महँगी है तो समान गुण वाले भोज्य पदार्थों को उसकी जगह प्रयोग में लाया जा सकता है। भोजन के इस प्रकार के परिवर्तन को खाद्य विनिमय कहते हैं। मौसम के अनुसार सस्ते एवं सन्तुलित खाद्य पदार्थ को खरीदना, उन्हें ठीक से पकाना एवं परोसना आवश्यक है जिससे सन्तुलित और स्वादिष्ट भोजन परिवार को उपलब्ध कराया जा सके।

सभी भोज्य समूहों एवं खाद्य विनिमय की जानकारी द्वारा गृहिणी खाद्य पदार्थों का बजट से अनुसार आसानी से चयन कर सकती है जैसे दूध, अण्डा, माँस, मछली आदि महँगे भोज्य पदार्थों के स्थानों पर वसा रहित दूध, अण्डा तथा सप्ताह में एक- दो बार माँस आदि भी प्रोटीन पूर्ति हेतु प्रयुक्त किये जा सकते हैं। गेहूँ में चना, सोयाबीन आदि मिलाकर आटा पिसवाने से भी प्रोटीन, कार्बोज, वसा आदि पोषक तत्वों की वृद्धि होती है। मूँगफली, दालें आदि भी प्रोटीन का उत्तम स्त्रोत हैं। इसी तरह अरबी की जगह आलू, पालक की जगह बथुआ प्रयोग कर भोजन तैयार किया जा सकता है।

लाल-पीली सब्जियाँ, हरी सब्जियाँ और फल आदि भी विटामिन सी और विटामिन ए के अच्छे स्त्रोत होते हैं। नींबू, आँवला, टमाटर, अमरूद, पपीता, आम आदि आसानी से बजट में समाकर भोजन को उचित गुणवत्ता प्रदान करते हैं। घी आदि से रिफाइन्ड तेल सस्ते होते हैं साथ ही वसीय अम्ल की प्राप्ति के भी अच्छे साधन होते हैं। इनका पाचन भी सरल होता है। अतः इन्हें उपयुक्त मात्रा में आहार में शामिल किया जा सकता है। शर्करा एवं गुड़ भी ऊर्जा प्राप्ति का साधन हैं। इन्हें भी आहार में सीमित मात्रा में लेना चाहिए। इस प्रकार सभी भोज्य पदार्थों को आय के अनुसार पारिवारिक आहार नियोजन में शामिल किया जा सकता है।

3. भोज्य पदार्थों की स्वीकार्यता एवं स्वादिष्टता- आहार नियोजन करते समय गृहिणी को भोजन की स्वीकार्यता एवं स्वादिष्टता पर भी पूरा ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि एक भोजन जो परिवार के एक सदस्य के लिए सुपाच्य एवं रुचिकर है, वही भोजन दूसरे सदस्य के लिए अपचनशील एवं अरुचिकर भी हो सकता है। जैसे छोटे बालकों को पूरी, कचौड़ी, परांठा तथा अन्य तले-भुने भोजन पसन्द आते हैं परन्तु एक वृद्ध एवं रोगी व्यक्ति के लिए यही भोजन अरुचिकर हो सकता है। भोजन की स्वीकार्यता एवं स्वादिष्टता हेतु निम्न गुणों का होना आवश्यक है-

- सुपाच्य एवं नरम हो।
- भोजन पूर्ण रूप से पका हो।

- दुर्गन्ध न हो।
- देखने में आकर्षक एवं मनोहारी हो।
- सुगन्ध अच्छी हो।
- स्वाद में खट्टा, मीठा, चटपटा व नमकीन का मिश्रण हो।

भोजन की स्वीकार्यता एवं स्वादिष्टता निम्न गुणों पर निर्भर करती है-

रंग में विविधता- रंगों का हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। रंगहीन जीवन नीरस हो जाता है। एक ही तरह के भोजन से मन ऊब जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि भोजन के रंगों में विविधता लाकर उसे मनमोहक, आकर्षक एवं स्वादिष्ट बनाया जाए। उदाहरण के लिए दाल एवं सब्जियाँ चाहे कितनी भी स्वादिष्ट क्यों न बनायी जाएं, यदि उनमें हल्दी न डाली जाये तो वह देखने में भद्दी व अनाकर्षक लगेंगी। अतः भोजन का रंगीन होना आवश्यक है। भोजन में रोटी, सब्जी, दाल, सलाद, पापड़, दही, मिठाई, चटनी आदि से रंगों में विविधता आती है क्योंकि हर एक भोजन का रंग अलग-अलग होता है। गृहिणी आकर्षक रंगों के प्रयोग से सदस्यों को भरपेट भोजन ग्रहण करने के लिए प्रेरित कर सकती है।

गंध में विविधता- रंग की तरह गंध का भी सीधा प्रभाव भोजन ग्रहण करने वाले व्यक्ति पर पड़ता है। यदि व्यक्ति को सड़ा हुआ, दुर्गन्ध वाला या बासी भोजन खाने को दिया जाये तो वह भोजन ग्रहण नहीं कर सकेगा। वहीं सुगन्धयुक्त भोजन देखते ही उसे खाने की इच्छा जागृत हो जाती है। इसलिए भोजन पकाते समय सुगन्ध पर भी ध्यान देना आवश्यक है। प्रत्येक भोजन में कुछ प्राकृतिक सुगन्ध छिपी हुई होती है, जो पकाने पर विकसित हो जाती है। कुछ अवांछनीय महक पकाने के माध्यम से नष्ट भी हो जाती हैं जो भोजन की स्वीकार्यता को बढ़ाता है जैसे- लहसुन, प्याज, मछली आदि। दूध, बासमती चावल, केक आदि पकाने से उनमें मनमोहक सुगन्ध आने लगती है। सुगन्ध से मस्तिष्क में स्थित भूख का केंद्र उत्तेजित हो जाता है और भूख बढ़ती है। आमाशय से पाचक रसों का स्राव तेजी से होने लगता है। अतः व्यक्ति भरपेट भोजन करता है।

रचना में विविधता- आहार नियोजन करते समय भोज्य पदार्थ की रचना में विविधता लाना भी आवश्यक है। अत्यधिक पकाने अथवा कम पकाने से भोजन का बाहय स्वरूप एवं रचना आकर्षक एवं मनोहारी नहीं बन पाता है जिससे भूख कम हो सकती है। उदाहरण के लिए सब्जी कम पकी हो और चावल ज्यादा पका हो तो दोनों ही अवस्थाएं भोजन को अरुचिकर व अनाकर्षक बनाती हैं। इसलिए भोजन को उचित तापक्रम पर उचित विधि से तैयार करना चाहिए जिससे इसका स्वरूप एवं रचना नहीं बिगड़ सके। भोजन में रसेदार, सूखा, नर्म, सख्त, कुरकुरा आदि सभी भोज्य पदार्थों का समावेश होना चाहिए।

पकाने की विधियों में विविधता- एकरसता एवं उबाऊपन को दूर करने के लिए भोजन को पकाने की विधियों में विविधता लाना आवश्यक है। गृहिणी को पकाने की विधियों का समुचित एवं पर्याप्त ज्ञान होना आवश्यक है ताकि वह एक ही भोज्य पदार्थ के प्रयोग से विभिन्न तरह के व्यन्जन तैयार कर सके। जैसे आटे का उपयोग कर पूरी, कचौड़ी,

रोटी, परांठा, हलुआ आदि अनेकानेक व्यन्जन बनाये जा सकते हैं। पकाकर, उबालकर, भाप द्वारा इत्यादि अनेक विधियों द्वारा भोजन में विविधता लायी जा सकती है। इससे भोजन न केवल आकर्षक व स्वादिष्ट लगता है बल्कि मन से भरपेट खाने से सभी सदस्यों का स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है।

4. अधिकतम तृप्ति मूल्य प्रदान करे- आहार नियोजन इस प्रकार का होना चाहिए जिससे कि परिवार के हर सदस्य को अधिकतम तृप्ति प्रदान हो सके। यहाँ तृप्ति का अर्थ सन्तुष्ट होने से है। अर्थात् अगले भोजन तक व्यक्ति को भूख की संवेदना जागृत न हो तथा भोजन का स्वाद व सुगन्ध उसके मन पर सकारात्मक छवि बनाये, जिससे वह अगले भोजन के लिए भी अच्छे विचार रखे। अधिकतम तृप्ति एवं सन्तुष्टि के लिए निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए-

भोजन की पर्याप्त मात्रा- सर्वप्रथम इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि प्रत्येक सदस्य को भरपेट भोजन दिया जाना चाहिए। कम भोजन से व्यक्ति असन्तुष्ट रह जाता है। इसके अलावा यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि थोड़ी-थोड़ी मात्रा में अधिक व्यन्जन परोसने की अपेक्षा कम व्यन्जन पर्याप्त मात्रा में परोसे जायें। इससे खाने वाले को अधिक सन्तुष्टि मिलती है।

शाकाहारी एवं माँसाहारी भोजन- कुछ व्यक्ति शाकाहारी होते हैं, कुछ माँसाहारी। आहार नियोजन करने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लेना अति आवश्यक है कि व्यक्ति किस प्रकार का भोजन खाता है। शाकाहारी व्यक्ति अण्डा, माँस, मछली आदि को अखाद्य मानते हैं। ऐसे में अगर उन्हें रंग, सुगन्ध, स्वाद आदि से भरपूर माँसाहारी भोज्य पदार्थ खाने को दिया जाए तो वे उसे नहीं खा सकते। इसके विपरीत माँसाहारी व्यक्ति को हमेशा शाकाहारी भोजन परोसने से वह खाने के प्रति उदासीन हो जायेगा। अतः भोजन के प्रकार से भी तृप्ति प्रभावित होती है।

कुछ अवधि के लिए भोज्य पदार्थ नहीं ग्रहण करना- भारत एक धार्मिक देश है। विभिन्न धर्म व जातियों से सुसज्जित हमारे देश में अनेक पर्व व मान्यताएं हमारी भोजन शैली को भी प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए नवरात्र, श्रावण मास आदि अवसरों पर हिन्दुओं में कुछ विशेष भोज्य तत्वों विशेषकर प्याज, लहसुन का त्याग कर दिया जाता है। इसी तरह जैन धर्म में जड़ एवं कन्दमूल वाली सब्जियों का त्याग कर दिया जाता है। अगर इन सब मान्यताओं का परिवार में ध्यान नहीं रखा जाये तो सदस्यों को भोजन से अरुचि हो सकती है तथा संशय की स्थिति के कारण वह भोजन से तृप्ति प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

5. समय, शक्ति व ईंधन की बचत हो- आहार नियोजन करते समय गृहिणी को समय, शक्ति तथा ईंधन की बचत पर ध्यान देना बेहद जरूरी है। सफल समय एवं शक्ति व्यवस्थापन से गृहिणी को घर के दूसरे कार्यों को करने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। यदि महिला स्वयं नौकरी पेशा है अथवा परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक है अथवा निम्न आर्थिक वर्ग की है, तब उनके लिए समय शक्ति तथा ईंधन का व्यवस्थापन करना और भी जरूरी हो जाता है। इसके लिए परिवार के दूसरे सदस्यों से भी सहायता लेनी चाहिए। मिलजुलकर कार्य करने से आहार नियोजन की प्रक्रिया और भी प्रभावशाली व सुगम हो जाती है।

6. आहार नियोजन लचीला हो- आहार नियोजन में लचीलापन अनिवार्य है। कई बार अनेक परिस्थितियाँ ऐसी आ जाती हैं जिन्हें टाला नहीं जा सकता। ऐसे में नई परिस्थितियों के समावेश के पश्चात् भी भोजन व्यवस्था न बिगड़े इसका

भरपूर इन्तजाम होना चाहिए। उदाहरण के लिए घर में अचानक मेहमानों के आ जाने से आहार की मात्रा में अधिकता हो जाती है। इसके लिए राशन व्यवस्था होनी चाहिए। इसी तरह से यदि एक दिन में आहार नियोजन के अनुसार खाद्य पदार्थों की उपलब्धता नहीं हो अथवा पकाने का समय नहीं हो या कोई अन्य कारण हो तो आहार में परिवर्तन किया जाना चाहिए। जैसे मूँग दाल के स्थान पर चने की दाल पकायी जा सकती है। हर परिस्थिति में निर्धारित समय पर सभी पौष्टिक तत्वों से युक्त भोजन व्यक्ति को प्राप्त हो सके इसी कारण आहार नियोजन में लचीलापन आवश्यक है।

7. दैनिक आहार नियोजन में हल्के तथा भारी दोनों ही तरह के व्यन्जन हों- आहार नियोजन करते समय दैनिक भोजन इस तरह को होना चाहिए जिसमें हल्के तथा भारी व्यन्जनों को सम्मिलित किया जा सके। भारी व्यन्जन से तात्पर्य उन गरिष्ठ पकवानों से है जो ऊर्जा एवं वसा अच्छी मात्रा में धारण करते हैं। यह देर से पचते हैं तथा इनके लगातार सेवन से अपच व पाचन सम्बन्धी विकार हो सकते हैं जैसे पूरी, पकौड़ी, समोसे आदि। यदि दिन में किसी समय ऐसे किसी गरिष्ठ व्यन्जन का प्रयोग किया गया है तो दूसरे समय का भोजन हल्का अर्थात् सुपाच्य रखा जाना चाहिए जैसे खिचड़ी, पुलाव इत्यादि। इससे पोषण मूल्य को बिना गंवाये पाचन स्वास्थ्य भी अच्छा बनाये रखने में सहायता मिलती है।

8. मौसमी फलों एवं सब्जियों का समावेश- आहार नियोजन करते समय गृहिणी को मौसमी फलों एवं सब्जियों का भी समावेश करना चाहिए। यद्यपि आजकल सालभर हर तरह की सब्जियाँ व फल बाजार में मिलते रहते हैं। परन्तु मौसमी फल व सब्जियाँ ज्यादा पौष्टिकता, रंग-रूप व ताजगी धारण करती हैं। साथ ही बेमौसम की सब्जियाँ व फल महंगी भी होती हैं। अतः मौसमी भोज्य पदार्थों को भोजन में अवश्य शामिल करना चाहिए।

इसके अलावा मौसम के अनुसार भी आहार नियोजन करना चाहिए क्योंकि गर्मी में तले-भुने गरिष्ठ एवं मिर्च-मसालेदार भोजन अरुचिकर लगते हैं। वे देरी से पचते हैं तथा अपच एवं अजीर्ण भी उत्पन्न करते हैं। सर्दी में गरिष्ठ भोजन का आयोजन किया जाना चाहिए क्योंकि सर्दी में गरिष्ठ एवं भारी भोजन आनन्ददायक, तृप्तिदायक एवं मजेदार लगते हैं। साथ ही वे आसानी से पच भी जाते हैं।

1.8 आहार नियोजन करते समय ध्यान देने योग्य बातें

आहार नियोजन की प्रक्रिया करते समय कुछ छोटी-छोटी बातों को अगर ध्यान में रखा जाये तो यह और भी प्रभावशाली व आसान बन सकती है। ऐसे कुछ ध्यान देने योग्य बिन्दु निम्न हैं-

- एक बार में कम से कम एक सप्ताह के आहार का नियोजन करना चाहिए।
- बाजार में से जो भी सामान लाना हो उसकी तैयार करनी चाहिए जिससे बार-बार बाजार न जाना पड़े।
- साधारण एवं उपलब्ध सामग्री को आहार तालिका में सम्मिलित करना चाहिए जिससे सरलता से आहार तैयार किया जा सके।
- रसोईघर में उपकरणों एवं सामग्री के सरलीकरण की दृष्टि से व्यवस्था करनी चाहिए जिससे कार्य कुशलता में वृद्धि हो सके। जैसे प्रेशर कुकर, मिक्सर ग्राइन्डर आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए।

- व्यन्जनों का दोहराव कम हो इसके लिए खाद्यों में विविधता का प्रयास करना चाहिए।
- एक ही समय के आहार में एक ही पोषक तत्व को प्रमुखता नहीं दी जानी चाहिए। प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट व वसा आदि सभी को आहार में स्थान देना चाहिए।
- आहार नियोजन करते समय सर्वप्रथम शरीर निर्माणात्मक, फिर शरीर सुरक्षात्मक और बाद में ऊर्जादायक पदार्थों का चयन करना चाहिए।
- आहार नियोजन करते समय ऐसी पाक विधियाँ चुननी चाहिए जिससे पोषक तत्व कम से कम नष्ट हों।
- प्रतिदिन एक अथवा दो कच्चे फल और सब्जियों का भी आहार में प्रयोग किया जाना चाहिए। इससे अनेक पोषक तत्व तो मिलते ही हैं साथ ही रेशा भी शरीर में पहुँचता है जो आँतों की गतिविधि को स्वस्थ बनाये रखने में सहायक है।
- भोजन के पश्चात् खीर, फल अथवा आइसक्रीम आदि मीठी वस्तु से चित्त प्रसन्न रहता है। अतः आहार नियोजन में मिष्ठान का भी प्रविधान होना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 2

1. सही मिलान करें।

a. सुरक्षात्मक भोज्य पदार्थ	(क) स्वीकार्यता एवं स्वादिष्टता
b. सन्तुष्टि	(ख) मितव्ययता
c. रंगों में विविधता	(ग) विटामिन व खनिज लवण
d. खाद्य विनिमय	(घ) प्रोटीन
e. निर्माणात्मक भोज्य पदार्थ	(द) तृप्ति मूल्य

1.9 सारांश

प्रतिदिन कैसा आहार लेना है अथवा तैयार करना है साथ ही पौष्टिकता का सुनिश्चितिकरण आहार नियोजन कहलाता है। वास्तव में परिवार के सदस्यों का स्वास्थ्य भी इसी बात पर निर्भर करता है कि उनको आहार कैसा मिलता है। अतः सभी सदस्यों की आवश्यकता और सन्तुष्टि के अनुकूल आहार नियोजन करना चाहिए। आहार नियोजन का प्रमुख उद्देश्य परिवार हेतु पौष्टिक आहार प्रदान करना है। आहार नियोजन इस प्रकार किया जाना चाहिए जो सभी की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रोटीन, कार्बोज, वसा, लवण, विटामिन और जल उचित मात्रा में प्रदान करे। सामान्यतः आहार नियोजन का कार्य परिवार में गृहिणी द्वारा किया जाता है। यह उसका प्रमुख कर्तव्य है कि वह परिवार की आवश्यकताओं और रुचियों का ध्यान रखे। गृहिणी की योग्यता, कार्य कुशलता, उसकी सुरुचिपूर्ण कल्पना

और पोषण सम्बन्धी ज्ञान परिवार को न केवल स्वादिष्ट व तृप्तिदायक आहार प्रदान करता है वरन् मानसिक सन्तुष्टि व सन्तुलन भी प्रदान करने में सहायक होता है।

1.10 पारिभाषिक शब्दावली

- **दैनिक प्रस्तावित मात्रा-** पोषक तत्वों की वह मात्रा जो व्यक्ति की आयु, लिंग व अवस्था के अनुसार उसे शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ्य रखने में सहायक हो। भारत में यह मात्रा भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् (Indian council of Medical Research, ICMR) द्वारा स्थापित की गयी है।
- **खाद्य विनिमय-** एक भोज्य पदार्थ की जगह समान पोषणीय गुण वाले दूसरे भोज्य पदार्थ का प्रयोग करना।

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही अथवा गलत बताइए।

a. गलत
b. सही
c. सही
d. गलत
e. गलत
f. सही
g. सही
h. सही
i. गलत
j. सही

अभ्यास प्रश्न 2

1. सही मिलान करें।

a. (ग)
b. (द)
c. (क)
d. (ख)
e. (घ)

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. खन्ना कुमुद: टेक्स्टबुक ऑफ न्यूट्रीशन एन्ड डाइटेटिक्स, ऐलीट पब्लीशिंग।
2. श्रीलक्ष्मी बी0: डाइटेटिक्स, न्यू एज इन्टरनेशनल पब्लिकेशन (पाँचवा संस्करण)।
3. स्वामिनाथन एम0: फूड एण्ड न्यूट्रीशन, बैपको पब्लिकेशन।
4. बक्शी बी0 के0: आहार एवं पोषण के मूल सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

इंटर्नेट स्रोत:

www.wikipedia.com

www.ninindia.org.

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. आहार नियोजन से क्या अभिप्राय है? आहार नियोजन के लाभों का वर्णन करें।
2. आहार नियोजन को प्रभावित करने वाले कारकों का विवरण दें।
3. आहार नियोजन के सिद्धान्तों पर चर्चा करें।
4. आहार नियोजन करते समय ध्यान रखने योग्य बिन्दुओं की विवेचना करें।

इकाई 2: गर्भावस्था एवं धात्रीवस्था में पोषण

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 गर्भावस्था
2.3.1 गर्भावस्था में शारीरिक परिवर्तन
2.3.2 गर्भावस्था में पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता
2.3.3 गर्भावस्था में आहार नियोजन हेतु कुछ महत्वपूर्ण सुझाव
2.3.4 गर्भवती स्त्री हेतु एक दिन की आहार तालिका
2.4 धात्रीवस्था
2.4.1 स्तनपान कराने से माँ को लाभ
2.4.2 धात्रीवस्था को प्रभावित करने वाले कारक
2.4.3 धात्रीवस्था में पोषक तत्वों की आवश्यकता
2.4.4 धात्री माता के लिए आहार नियोजन करते समय ध्यान देने योग्य बातें
2.4.5 धात्री स्त्री हेतु एक दिन की आहार तालिका
2.5 सारांश
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रजनन काल स्त्रियों के लिए महत्व रखता है। इसी दौरान स्त्री गर्भावस्था धारण करती है एवं शिशु जन्म के पश्चात् उसे दुग्धपान कराती है जिसे धात्री अवस्था कहते हैं। पोषण की दृष्टि से गर्भावस्था व धात्रीवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण अवस्थाएं हैं। गर्भावस्था में स्त्री के शरीर में एक नये जीव का निर्माण होता है और कई प्रकार के उपापचयन सम्बन्धी परिवर्तन भी होते हैं। शिशु जन्म के बाद पूरी तरह से माता पर ही पोषण के लिए आश्रित होता है। वह अपने प्रारम्भिक जीवन में माँ के दूध से ही पोषक तत्व प्राप्त करता है। अतः भ्रूण के उचित विकास हेतु, उचित ढंग से प्रसव हेतु तथा उचित शिशु पोषण हेतु गर्भवती एवं धात्री स्त्री का स्वस्थ रहना आवश्यक है जिसके लिए सन्तुलित आहार आवश्यक है। स्वस्थ स्त्री ही एक स्वस्थ शिशु को जन्म देने तथा उचित शिशु पोषण में सक्षम है। अतः स्त्री के भोजन पर ही उसका और शिशु का स्वास्थ्य निर्भर करता है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जानेंगे;

- गर्भावस्था में स्त्री के शरीर में होने वाले शारीरिक परिवर्तन;
- गर्भावस्था में विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता;
- गर्भावस्था में आहार नियोजन हेतु ध्यान रखने योग्य बातें;
- धात्रीवस्था को प्रभावित करने वाले कारक;
- धात्रीवस्था में विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता; तथा
- धात्रीवस्था में आहार नियोजन हेतु ध्यान रखने योग्य बातें।

2.3 गर्भावस्था

गर्भकालीन अवस्था में एक ही साथ दो मानव शरीरों का पोषण होता है। जन्म से पूर्व 40 सप्ताह अर्थात् 9 माह तक शिशु माँ के गर्भ में विकसित होता है। वह अपनी पोषण सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति हेतु पूर्णतः माता पर आश्रित रहता है। परिणामतः माता को न केवल अपने स्वयं के लिए बल्कि गर्भ में पल रहे शिशु के लिए भी पोषण प्राप्त करना होता है। अतः गर्भवती माँ का आहार ऐसा होना चाहिए जो उसे स्वयं के लिए तथा गर्भस्थ शिशु के लिए सम्पूर्णतः पौष्टिक तत्वों से भरपूर होकर उचित स्वास्थ्य प्रदान करे। गर्भकाल में भोज्य पदार्थों की मात्रा एवं गुणवत्ता दोनों में ही वृद्धि करनी होती है। गर्भ के दौरान सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार होने से गर्भस्थ शिशु की समुचित वृद्धि एवं विकास होता है। गर्भकालीन अवस्था को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

1. डिम्ब अवस्था- यह गर्भाधान से दो सप्ताह तक मानी जाती है।

2. भ्रूणावस्था- यह 15 दिन से 2 माह तक होती है।

3. गर्भस्थ शिशु की अवस्था- यह तीसरे माह के प्रारम्भ से शिशु जन्म तक होती है।

2.3.1 गर्भावस्था में शारीरिक परिवर्तन

गर्भवस्था के दौरान स्त्री के शरीर में अनेक परिवर्तन होते हैं। वह शारीरिक, रासायनिक और हारमोन सम्बन्धी होते हैं। कुछ बाहृय परिवर्तनों के साथ अनेक आन्तरिक परिवर्तन भी होते हैं। गर्भावस्था के विभिन्न परिवर्तनों का विवरण निम्न है-

1. गर्भवती स्त्री के वजन में वृद्धि- गर्भावस्था के दौरान वजन में वृद्धि होती है। यह वृद्धि प्रथम तीन माह में नहीं के बराबर होती है क्योंकि प्रथम तीन माह में भ्रूण अत्यन्त ही छोटा होता है। इस समय पाचन क्रिया मन्द हो जाती है। गर्भवती स्त्री को उल्टी, जी मचलाना आदि की भी शिकायत हो जाती है। परन्तु गर्भावस्था के चौथे माह से प्रति सप्ताह 1.2 पौण्ड तक वजन में वृद्धि होती है। शिशु जन्म तक गर्भवती माता 10-12.5 किलोग्राम तक अतिरिक्त वजन प्राप्त

कर लेती है। वजन में यह वृद्धि रक्त, वसा की मात्रा बढ़ने से, गर्भाशय के आकार में परिवर्तन, गर्भनाल व गर्भतरल (एम्नियोटिक तरल/Amniotic fluid) आदि में वृद्धि होने के कारण होता है।

तालिका 2.1: गर्भकाल में गर्भवती स्त्री के भार में वृद्धि का विश्लेषण

	10 सप्ताह तक (ग्राम)	20 सप्ताह तक (ग्राम)	30 सप्ताह तक (ग्राम)	40 सप्ताह तक (ग्राम)
भ्रूण व गर्भनाल	55	720	2350	4750
गर्भाशय एवं स्तनकोशिका	170	765	1170	1300
रक्त	100	600	1300	1350
बह्यकोषीय द्रव्य	-	-	-	1200
वसा	325	1915	3500	4000
योग	**650**	**4000**	**8500**	**12600**

स्रोत: टेक्स्ट बुक ऑफ न्यूट्रीशन एन्ड डाइटेटिक्स, कुमुद खन्ना।

यदि माता कुपोषण का शिकार होती है तो वजन आवश्यक मात्रा से बहुत कम या अधिक बढ़ता है। दोनों ही स्थितियाँ गर्भवती स्त्री एवं गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती हैं। अल्पभार की स्थिति में शिशु का विकास भली प्रकार से नहीं हो पाता है जिसके परिणामस्वरूप शिशु की गर्भ में ही मृत्यु हो जाने जैसे घातक परिणाम भी हो सकते हैं।

गर्भावस्था में अतिभार का होना भी उतना ही खतरनाक साबित हो सकता है जितना की अल्पभार। अत्यधिक भार होने के कारण सामान्य प्रसव में बाधा आ सकती है जिससे शल्य क्रिया (सिजेरियन ऑपरेशन) द्वारा प्रसव की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं।

तालिका 2.2: गर्भावस्था के दौरान शिशु व माता की वजन वृद्धि

सप्ताह	**भ्रूण का कुल वजन (ग्राम)**	**माता के वजन में वृद्धि (ग्राम)**
10	5	650
12	30	
20	300	4000

24	900	
28	1240	
30	1484	8500
32	1750	
34	2278	
36	2750	
38	3052	
40	3230	12500
42	3310	

स्त्रोतः टेक्स्ट बुक ऑफ न्यूट्रीशन एन्ड डाइटेटिक्स, कुमुद खन्ना।

अतः उपरोक्त भार वृद्धि दर के अनुसार विभिन्न गर्भ सम्बन्धी अंगों तथा शिशु विकास के लिए उपयुक्त पोषण की अति आवश्यकता होती है।

2. उपापचयात्मक परिवर्तन- शरीर का क्षेत्रफल व वजन के हिसाब से उपापचयात्मक दर भी अलग-अलग होती है। भ्रूण का वृद्धि व विकास होने के कारण गर्भवती स्त्री की उपापचयिक दर प्रथम तीन महीनों में 5 प्रतिशत बढ़ जाती है। आगे की गर्भावस्था में इस दर में 12 प्रतिशत तक बढ़ोत्तरी देखी जाती है। इसके बढ़ने के कुछ प्रमुख कारण होते हैं जैसे- गर्भाशय की वृद्धि, गर्भस्थ शिशु द्वारा अधिक पोषण व ऑक्सीजन की माँग आदि।

3. पाचन क्रिया में परिवर्तन- गर्भावस्था में पाचन क्रिया भी प्रभावित होती है। गर्भकाल के प्रथम कुछ महीनों में जी मिचलाना, वमन, गैस बनना, कब्ज आदि समस्याएं देखने को मिलती हैं। यह सब पाचन शक्ति में शिथिलता व आमाशयिक स्राव के कम होने के कारण होता है। आमाशय में उपस्थित अम्ल व पेप्सिन कम होने तथा आमाशय में भोज्य पदार्थों का पलटकर वापस आ जाने से सीने में जलन व अत्यधिक उल्टी होना देखा जाता है। जैसे-जैसे गर्भावस्था बढ़ती है भ्रूण के बढ़ते भार के कारण दबाव से यह समस्या और बढ़ती है। गर्भावस्था में अक्सर माता को किसी विशेष भोज्य पदार्थ खाने का मन करता रहता है तथा किसी भोज्य पदार्थ की गंध से परेशानी होती है। कुछ महिलाओं को अक्सर अखाद्य पदार्थों को खाने का भी मन करता है जैसे मिट्टी आदि। इस आदत को “पिका” कहते हैं।

4. हारमोन्स में परिवर्तन- गर्भकाल में शरीर में अनेक हारमोन सम्बंधी परिवर्तन होते हैं। भ्रूण के विकास के लिए प्रोजेस्टेरॉन हारमोन का स्तर बढ़ जाता है। इसके बढ़ने से पाचन सम्बन्धी विकार भी उत्पन्न होते हैं जैसे पेट में जलन आदि। एस्ट्रोजन हारमोन स्तन की ग्रन्थियों को दुग्ध निर्माण के लिए उत्तेजित करता है। गर्भनाल के हारमोन प्रजनन

अंगों की कोशिकाओं की मात्रा बढ़ाते हैं तथा स्तनों का आकार भी विकसित करते हैं। थायरॉइड ग्रन्थि का आकार भी बढ़ जाता है अतः आयोडीन की गर्भावस्था में अतिरिक्त आवश्यकता होती है।

5. मूत्र नलिकाओं में परिवर्तन- गर्भावस्था में मूत्र नालिकाओं में भी परिवर्तन होता है। रक्त परिसंचरण गुर्दों (Kidneys) की ओर अधिक होने लगता है, जिससे उन्हें अतिरिक्त कार्य करना पड़ता है। इस अवस्था में ग्लूकोज का अवशोषण कम हो जाता है, जिससे मूत्र में ग्लूकोज की मात्रा अधिक हो जाती है। अतः कई गर्भवती स्त्रियों को गर्भावस्था में मधुमेह हो जाती है, जो स्वतः ही प्रसव के बाद समाप्त हो जाती है। गर्भकाल में गर्भाशय का बढ़ता भार मूत्राशय पर पड़ता है अतः मूत्र उत्सर्जन की क्रिया में भी वृद्धि हो जाती है।

6. त्वचा में परिवर्तन- गर्भवती स्त्री के गाल, नाक, ऊपरी होंठ, ललाट तथा गर्दन पर भूरे रंग के धब्बे हो जाते हैं। आँखों के नीचे की त्वचा भी कुछ-कुछ काली हो जाती है। ऐसा रक्त में मेलेनोसाइट स्टीमुलेटिंग हारमोन की उपस्थिति के कारण होता है। स्तन की त्वचा में भी परिवर्तन होता है। पेट की त्वचा में खिचांव के कारण लम्बी-लम्बी धारियों जैसे निशान बन जाते हैं। गर्भकाल में स्वेद ग्रन्थियों (Sweat glands) की भी क्रियाशीलता बढ़ जाती है। फलतः शरीर से अधिक पसीना निकलता है।

7. श्वसन सम्बन्धी परिवर्तन- प्रोजेस्टेरॉन हारमोन के कारण श्वसन क्रियाओं में परिवर्तन होने लगते हैं। जैसे-जैसे गर्भ का समय बढ़ता है और प्रसव का समय नजदीक आता है, वैसे-वैसे श्वसन क्रिया में उथलापन आने लगता है। इससे श्वसन दर बढ़ जाती है। गर्भाशय का बढ़ता भार श्वसन क्रिया में बाधा उत्पन्न करता है। अतः गर्भवती तेज-तेज चलने में हाँफने लगती है।

8. पेशियों व कंकाल तन्त्र में परिवर्तन- गर्भावस्था में गर्भाशय का आकार बढ़ने के कारण शरीर का सन्तुलन बिगड़ जाता है। इससे पीठ व कमर में दर्द बना रहता है। आमाशय की पेशियाँ भी ढीली होकर नरम हो जाती हैं। मलाशय की पेशियों के दबने से कब्ज व मूत्राशय पर दबाव पड़ने से बार- बार मूत्र त्यागने की तीव्र इच्छा होती है।

9. रक्त परिसंचरण में परिवर्तन- गर्भावस्था में रक्त परिसंचरण में भी परिवर्तन होता है क्योंकि शरीर में रक्त की मात्रा बढ़ जाती है। फलतः हृदय को अधिक कार्य करना पड़ता है। रक्त की मात्रा पूर्व की उपेक्षा 30% तक बढ़ जाती है। रक्त में हीमोग्लोबीन का प्रतिशत कम हो जाता है। रक्त-चाप भी चौथे-पाँचवे माह तक बढ़ जाता है। इससे पैरों व टखनों में सूजन उत्पन्न हो जाती है। रक्तचाप के अत्यधिक बढ़ने से गर्भवती स्त्री को बेहोशी भी आ सकती है। इसे गर्भाक्षेप (Eclampsia) कहते हैं। यह स्त्री एवं शिशु दोनों के लिए जानलेवा भी सिद्ध हो सकता है।

10. नाड़ी संस्थान में परिवर्तन- गर्भावस्था में नाड़ी संस्थान में अनेक परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं जिसके कारण गर्भवती स्त्री को नींद कम आती है, स्वभाव में चिड़चिड़ापन आने लगता है, सुस्ती एवं आलस्य के कारण वह अधिक-से-अधिक समय विश्राम करना चाहती है। किसी विशेष वस्तु को खाने के प्रति चाह तथा किसी विशेष वस्तु से घृणा हो जाती है। मानसिक तनाव, भय, चिन्ता, सिरदर्द आदि समस्याएं अक्सर गर्भवती स्त्री में देखी जाती हैं।

11. उदर एवं जोड़ों में परिवर्तन- गर्भावस्था में उदर की दीवारों में परिवर्तन होता है, जिसके कारण इनकी पेशियों में वृद्धि होती है। इससे गर्भाशय की वृद्धि एवं विकास हेतु स्थान सुलभ होता है। उदर की दीवार फैल कर गर्भस्थ शिशु के बढ़ते आकार के साथ उदर को बढ़ने में मदद करती है। यह प्रसव के उपरान्त भी फैली रहती है जिसके कारण त्वचा के लचीले तन्तु फट जाते हैं और पेट पर लम्बे धारीदार निशान पड़ जाते हैं। इस अवस्था में कमर का निचला हिस्सा (श्रोणी), जोड़ों के स्नायु ढीले व नर्म हो जाते है। गर्भावस्था में जोड़ों की गतिशीलता भी बढ़ जाती है।

12. योनिमार्ग (Vagina), ग्रीवा (Cervix) एवं गर्भाशय (Uterus) में परिवर्तन- गर्भावस्था में हारमोन का प्रभाव प्रजनन अंगों पर बहुत अधिक पड़ता है। एस्ट्रोजन हारमोन के कारण योनि मार्ग की श्लैष्मिक झिल्ली अधिक मोटी हो जाती है। योनि मार्ग की शिराएं भी फूल जाती हैं। गर्भाशय के द्वार (ग्रीवा) के आकार में भी परिवर्तन होता है। इसकी पेशियाँ भी लचीला होकर ढीली हो जाती हैं। इसमें रक्त की कोशिकाओं का जाल बढ़ जाता है जिससे यह सूजा हुआ सा प्रतीत होता है। परिणामतः प्रसव में आसानी होती है।

गर्भाशय के आकार में भी परिवर्तन होता है। पूर्व की स्थिति की अपेक्षा गर्भाशय की लम्बाई में 12-15 गुना तक वृद्धि हो जाती है। गर्भाशय का भार 50 ग्राम से 950 ग्राम तक बढ़ जाता है। छठे माह तक गर्भाशय का ऊपरी भाग नाभि के ऊपर तक पहुँच जाता है तथा नवें माह तक अपनी उच्चतम सीमा पर पहुँचकर निचली पसलियों तक पहुँच जाता है।

13. अन्य परिवर्तन- उपरोक्त सभी परिवर्तनों के अतिरिक्त गर्भावस्था में पित्तरंजक (Bile) तथा कोलेस्ट्रॉल अधिक निर्मित होने लगते हैं तथा यकृत को अधिक कार्य करना पड़ता है जिससे भोजन का पाचन प्रभावित होता है। इसी अवस्था में भ्रूण के यकृत में लौह तत्व भी संग्रहित होते हैं।

गर्भावस्था में इन्हीं सब शारीरिक परिवर्तनों के कारण स्त्री को इस समय सन्तुलित आहार की आवश्यकता होती है क्योंकि एक सुपोषित स्त्री को गर्भधारण में व गर्भावस्था में कम कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

2.3.2 गर्भावस्था में पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता

1. ऊर्जा- गर्भावस्था में ऊर्जा की माँग बढ़ जाती है। गर्भावस्था में स्त्री के वजन एवं शरीर के आकार में वृद्धि होती है। इन दोनों में वृद्धि होने से आधारीय उपापचयिक दर में वृद्धि हो जाती है। परिणामतः ऊर्जा की माँग बढ़ जाती है। भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् (Indian Council of Medical Research, ICMR) के भोज्य विशेषज्ञों ने गर्भावस्था में 300 kcal अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता अनुशंसित की है।

2. प्रोटीन- गर्भकाल में गर्भवती को सामान्य स्त्री की अपेक्षा अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है। गर्भस्थ शिशु के शरीर निर्माण, गर्भवती स्त्री के शरीर के ऊतकों में टूट-फूट की मरम्मत एवं नये तन्तुओं के निर्माण हेतु प्रोटीन की नितान्त आवश्यकता होती है। I.C.M.R. के भोज्य विशेषज्ञों ने प्रोटीन की पूर्ति के लिए गर्भवती स्त्री को सामान्य स्थिति की अपेक्षा 23 ग्राम अतिरिक्त प्रोटीन की मात्रा प्रस्तावित की है। यह प्रोटीन के उत्तम स्रोत जैसे दूध, दूध से बने पदार्थ, माँस, मछली, अण्डा, सोयाबीन, सूखे मेवे, दालों इत्यादि द्वारा लिया जा सकता है।

3. वसा- गर्भवती स्त्री को प्रतिदिन 30 ग्राम वसा की मात्रा लेनी चाहिए। गर्भावस्था में वसा की अत्यधिक मात्रा की आवश्यकता नहीं होती। स्वस्थ प्रसव व मोटापे से बचने के लिए संतृप्त वसा जैसे डालडा के उपयोग से बचना चाहिए। असंतृप्त वसा का उपयोग श्रेयस्कर है जो वनस्पति तेलों से लिया जा सकता है।

4. कैल्शियम- गर्भस्थ शिशु की अस्थियों एवं दाँतों के विकास में कैल्शियम का महत्वपूर्ण स्थान है। एक सम्पूर्ण विकसित भ्रूण के शरीर में लगभग 25-30 ग्राम कैल्शियम होता है जिसमें से ज्यादातर वह गर्भावस्था की तीसरी तिमाही में संग्रहित करता है। अतः गर्भवती स्त्री की कैल्शियम आवश्यकताएं बढ़ जाती हैं। गर्भवती स्त्री को प्रतिदिन 1.2 मिलीग्राम कैल्शियम आहार के माध्यम से लेना चाहिए। दूध, पनीर, दही, छाछ, खीर व दूध से बने व्यन्जन कैल्शियम प्राप्ति के अच्छे साधन हैं। सूखे मेवे, तिल आदि में भी कैल्शियम पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहता है। इन्हें आहार शामिल कर माता अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है।

5. लौह लवण- गर्भस्थ शिशु के शरीर में रक्त एवं हीमोग्लोबिन निर्माण के लिए लौह लवण अत्यावश्यक होता है। नवजात शिशु के शरीर में कुछ मात्रा में लौह लवण संग्रहित भी रहता है जिससे 4-6 महीने उसकी लौह लवण की आवश्यकताएं पूरी होती हैं क्योंकि माता के दूध में लोहे की मात्रा कम होती है। यदि माता के आहार में पर्याप्त मात्रा में लौह तत्व उपस्थित नहीं होता है तो गर्भवती स्त्री रक्ताल्पता रोग/एनीमिया की शिकार को जाती है। गर्भवती स्त्री को प्रतिदिन 35 मिलीग्राम लौह लवण आहारीय माध्यम से लेना चाहिए। हरी पत्तेदार सब्जियाँ, यकृत, केला, गुड़, पालक, बथुआ, अण्डे की जर्दी आदि में लोहा भरपूर मात्रा में होता है। इसलिए इन खाद्यों को गर्भवती के भोजन में अवश्य ही सम्मिलित किया जाना चाहिए।

6. आयोडीन- गर्भवती स्त्री की आधारीय उपापचयिक दर (बी0एम0आर0) बढ़ जाने से आयोडीन की आवश्यकताएं भी बढ़ जाती हैं। अतः गर्भवती स्त्री को आयोडीनयुक्त नमक का ही सेवन करना चाहिए।

7. जिंक- जिंक का भी गर्भावस्था में उचित महत्व होता है। एक स्वस्थ गर्भावस्था के लिए जिंक की उचित मात्रा अत्यन्त आवश्यक है। इसकी कमी से न केवल गर्भपात का खतरा होता है बल्कि शिशु के मानसिक रूप से विकलांग होने की भी सम्भावना बढ़ जाती है। गर्भवती स्त्री को 12 मिलीग्राम जिंक प्रतिदिन लेना चाहिए।

8. विटामिन ए- गर्भावस्था में माता के आहार में विटामिन ए की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए। गर्भावस्था में 800 माइक्रोग्राम विटामिन ए की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। सभी प्रकार के पीले फल जैसे पपीता, आम, गाजर, कद्दू, हरी पत्तेदार सब्जियाँ आदि विटामिन ए के अच्छे स्रोत होते हैं। इन्हें आहार में उचित मात्रा में शामिल करना चाहिए।

9. विटामिन सी- शरीर में प्रतिरक्षण क्षमता (रोगों से लड़ने की क्षमता) में वृद्धि के लिए विटामिन सी अत्यावश्यक है। गर्भस्थ शिशु के विकास में विटामिन सी का अमूल्य योगदान होता है क्योंकि यह शरीर में कोलेजन का निर्माण करता है। कोलेजन शरीर की विभिन्न कोशिकाओं एवं ऊतकों को जोड़ने के काम आता है जैसे अस्थि, दाँत आदि। गर्भवती स्त्री को प्रतिदिन 60 मिलीग्राम विटामिन सी की आवश्यकता होती है। आहार में खट्टी व रसदार फल व ताजी सब्जियों को शामिल करके विटामिन सी प्राप्त किया जा सकता है जैसे नींबू, आँवला, सन्तरा, मौसमी आदि।

10. विटामिन बी- गर्भावस्था में विटामिन बी समूह की भी आवश्यकताएं बढ़ जाती हैं-

- **थायमिन-** गर्भस्थ शिशु के समुचित विकास के लिए थायमिन का महत्वपूर्ण स्थान है। गर्भावस्था में इसकी 0.2 मिलीग्राम अतिरिक्त मात्रा प्रस्तावित की गयी है। साबुत अनाज व शुष्क खमीर में यह बहुतायत में पाया जाता है। दालें, हरी सब्जियाँ, फल, सूखे मेवे, माँस, मछली, यकृत, मूँगफली आदि को आहार में सम्मिलित कर थायमिन प्राप्त किया जा सकता है।
- **राइबोफ्लेविन-** शिशु के समुचित विकास में राइबोफ्लेविन की अहम् भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। चोकर सहित गेंहूँ का आटा, खमीर, दूध, पनीर, यकृत, अण्डा, सूखे मटर, सोयाबीन, अंकुरित चना आदि इसके अच्छे स्रोत होते हैं। गर्भवती स्त्री को इसकी 0.3 मिलीग्राम अतिरिक्त मात्रा प्रस्तावित की गयी है।
- **नियासिन-** गर्भवती स्त्री को 3 मिलीग्राम अतिरिक्त नियासिन की आवश्यकता होती है। इसकी पूर्ति के लिए दूध एवं दुग्ध उत्पादों को भोजन में अच्छी मात्रा में शामिल करना चाहिए।
- **विटामिन बी6-** विटामिन बी6 अथवा पाइरिडॉक्सिन की प्रतिदिन आवश्यकता 2.5 मिलीग्राम होती है। इसकी कमी से त्वचा सम्बन्धी रोग हो जाता है। इसके लिए साबुत अनाज, अण्डे, गहरी हरी पत्तेदार सब्जियाँ, सोयाबीन आदि को आहार में सम्मिलित किया जाना चाहिए।
- **विटामिन बी12-** विटामिन बी12 को साइनोकोबालामिन भी कहते हैं। यह 1.2 माइक्रोग्राम प्रतिदिन आवश्यक होता है। इसके लिए दूध, दही, अण्डा, माँस, मछली, यकृत, पनीर, छाछ आदि का सेवन करना चाहिए।
- **फोलिक अम्ल-** रक्त की अतिरिक्त आवश्यकता के कारण फोलिक अम्ल की आवश्यकता बढ़कर 500 माइक्रोग्राम प्रतिदिन हो जाती है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ, फलियाँ, मूँगफली, ताजे फल एवं फलों का रस, साबुत अनाज, यकृत, अण्डे आदि फोलिक अम्ल के अच्छे खाद्य स्रोत हैं।

11. अन्य तत्व- गर्भावस्था में उपरोक्त पोषक तत्वों के अतिरिक्त कुछ अन्य तत्वों को भी ध्यान रखना चाहिए जैसे-

- **जल एवं तरल पदार्थ-** उपयुक्त स्वास्थ्य के लिए उचित मात्रा में जल एवं तरल पदार्थ अति आवश्यक होते हैं। गर्भवती स्त्री को प्रतिदिन 1.5-2 लीटर पानी पीना चाहिए। फलों का रस, सूप, शर्बत, छाछ आदि पेय पदार्थ भी दैनिक आहार में सम्मिलित करने चाहिए।
- **आहारीय रेशा-** गर्भावस्था में प्रायः सभी स्त्रियों को कब्ज की शिकायत रहती है। अतः साबुत अनाज, छिलकेदार फल, अंकुरित अनाज, हरी पत्तेदार सब्जियाँ आहार में शामिल करने चाहिए। इससे शरीर में भरपूर मात्रा में रेशा पहुँचेगा और कब्ज से बचाव होगा।
- **कैफीन-** गर्भावस्था में अत्यधिक मात्रा में कैफीनयुक्त पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए जैसे चाय, कॉफी, कोला व कोको आदि। कैफीन के अत्यधिक सेवन से गर्भपात, समय से पहले प्रसव आदि खतरों की सम्भावना बढ़ जाती है।

- **धूम्रपान-** तम्बाकू में हानिकारक पदार्थ उपस्थित होते हैं। यह गर्भनाल में असमानताएं एवं भ्रूण को नुकसान पहुँचाते हैं। इससे भ्रूण को कम ऑक्सीजन मिल पाती है व समय से पहले प्रसव हो सकता है। अतः धूम्रपान को गर्भावस्था में निषेध करना चाहिए।
- **मद्यपान-** मद्यपान करने से भ्रूण में अनेक असमानताएं एवं विकृतियाँ हो जाती हैं, जैसे मानसिक विकलांगता, आँखों व नाक की विकृतियाँ, पोषक तत्वों की कमी तथा उनसे उत्पन्न समस्याएं इत्यादि। इसी कारण गर्भावस्था में मद्यपान नहीं करना चाहिए।

2.3.3 गर्भावस्था में आहार नियोजन हेतु कुछ महत्वपूर्ण सुझाव

गर्भवती स्त्री के आहार का चयन करते समय बहुत अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। कुपोषण ही नहीं मोटापा भी गर्भावस्था के समय बहुत हानिप्रद होता है। आहार का चुनाव करते समय निम्न बातों का ध्यान रखें-

- माता व भ्रूण के स्वास्थ्य के लिए शरीर निर्माणक व संरक्षक प्रोटीन को ऊर्जादायक व वसायुक्त खाद्यों की अपेक्षा आहार में प्रमुखता देनी चाहिए।
- भोजन में परिवर्तन व विभिन्नता को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए जिससे उचित पोषक तत्व सरलता से प्राप्त किये जा सकें।
- जल को भी आहार में महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए।
- भोजन करते समय मानसिक स्थिति प्रसन्नचित व चिन्तारहित होनी चाहिए।
- भोजन पकाने में पोषक तत्वों की न्यूनतम क्षति होनी चाहिए।
- रात्रि को सोने से पहले 2-3 घण्टे पूर्व भोजन कर लेना चाहिए।
- प्रतिदिन के आहार में हरी पत्तेदार सब्जियाँ, अंकुरित दालें व अनाज, दूध व दूध से बने पदार्थ, उत्तम कोटि के प्रोटीन युक्त खाद्य जैसे अण्डा, मौसमी फल, चोकर सहित आटे की रोटी, छिलके सहित दाल, रेशेदार भोज्य पदार्थ सम्मिलित करने चाहिए।
- बासी भोजन व अधिक मिर्च मसालेदार गरिष्ठ भोजन से परहेज करना चाहिए क्योंकि ये देर से पचते हैं तथा पाचन सम्बन्धी कई गड़बड़ियाँ उत्पन्न करते हैं।
- आयोडिन की पूर्ति हेतु आयोडीनयुक्त नमक का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- पॉलिश रहित दाल व चावल का प्रयोग करना चाहिए।
- गर्भवती स्त्री को दिन में एक-दो बार भरपेट भोजन ग्रहण करने के स्थान पर 5-6 बार थोड़ा-थोड़ा करके खाना चाहिए। सम्पूर्ण दिन का भोजन हल्का और रुचिपूर्ण होना चाहिए।

2.3.4 गर्भवती स्त्री हेतु एक दिन की आहार तालिका

मध्यम क्रियाशील गर्भवती स्त्री के लिए एक दिन की आहार तालिका-

आहार तालिका

आहार	मीनू
6:30 a.m.	चाय बिस्कुट
8:30 a.m.	कॉफी पालक बेसन परांठा दही अमरूद
11:30 a.m.	मुरमुरा/ चिवड़ा नमकीन नींबू पानी
1:30 p.m.	चने की दाल भरवाँ बैंगन पुदीना रायता सलाद चावल रोटी
5:30 p.m.	पोहा बनाना शेक
8:30 p.m.	मटर-पनीर मिक्स वेजिटेबल चावल रोटी फ्रूट कस्टर्ड

अभ्यास प्रश्न 1

1. गर्भावस्था में निम्न पोषक तत्वों की अनुशंसित की मात्रा बताएं:
   a. प्रोटीन
   b. थायमिन
   c. विटामिन सी
   d. लौह लवण

e. वसा

2. सही अथवा गलत बताएं।

a. गर्भावस्था में स्त्री की उपापचयिक दर बढ़ जाती है।

b. गर्भावस्था में वसा अत्यधिक मात्रा में खाना चाहिए।

c. गर्भवती स्त्री को रेशेदार भोज्य पदार्थों से परहेज करना चाहिए।

d. गर्भावस्था में अखाद्य पदार्थ जैसे मिट्टी आदि खाने की आदत 'पिका' कहलाती है।

e. गर्भवती स्त्री को आयोडीनयुक्त नमक इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।

2.4 धात्रीवस्था

शिशु के जन्म के उपरान्त माता की उस अवस्था को धात्रीवस्था कहते हैं जब तक माता अपने शिशु को दूध पिलाती है। शिशु जन्म के तुरन्त बाद से ही माता के स्तनों में दुग्ध स्रावित होने लगता है। माता का दूध शिशु के लिए ईश्वर की देन है क्योंकि इसमें शिशु की आवश्यकतानुसार सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में उपस्थित होते हैं। शिशु जन्म से लगभग एक वर्ष की आयु तक स्तनपान करता है। अतः इस अवस्था में स्त्री के शरीर में दूध का निर्माण होने के कारण पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता बढ़ जाती है। उत्तम पोषण लेकर पर्याप्त मात्रा में दूध निर्माण द्वारा शिशु पोषण व स्वास्थ्य सुनिश्चित किया जा सकता है।

2.4.1 स्तनपान कराने से माँ को लाभ

स्तन पान द्वारा शिशु को केवल पोषण ही नहीं मिलता अपितु यह माता के लिए भी निम्न लाभ प्रदान करता है-

- माता और शिशु के बीच भावनात्मक सम्बन्ध मजबूत बनता है।
- स्तनपान कराने वाली माताएं देर से गर्भवती होती हैं क्योंकि स्तनपान प्रक्रिया एक प्राकृतिक गर्भनिरोधक विधि की तरह कार्य करती है।
- स्तनपान से गर्भाशय अपनी पूर्व आकृति को शीघ्रता से प्राप्त कर लेता है क्योंकि इस क्रिया में गर्भाशय की पेशियों का संकुचन उचित ढंग से होता है।
- माता जब चाहे शिशु को स्तनपान करा सकती है।
- स्तनपान कराने से माँ को मानसिक सन्तुष्टि एवं खुशी मिलती है।

2.4.2 धात्रीवस्था को प्रभावित करने वाले कारक

एक स्वस्थ माता जो प्रतिदिन सन्तुलित एवं पौष्टिक भोजन ग्रहण करती है वह लगभग एक वर्ष तक दूध स्रावित करती है। परन्तु कुपोषण तथा अन्य कारणों से दूध कम मात्रा में स्रावित होता है। इससे शिशु के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। धात्रीवस्था में माता के दूध को प्रभावित करने वाले मुख्य कारण निम्नलिखित हैं-

1. माता की उम्र- माता की उम्र सामान्यतः धात्रीवस्था को प्रभावित करती है। यह देखा जाता है कि यदि माता की उम्र 35 वर्ष से अधिक होती है तो उसकी धात्रीवस्था कम समय की होती है या वह कम दूध स्रावित कर पाती है। सम्भवतः उम्र अधिक हो जाने से पेशियों का लचीलापन कम हो जाना इसका कारण हो सकता है जिसके फलस्वरूप दुग्धवाहिनी नलिकाओं का पूरा विकास नहीं हो पाता है।

2. माता की मानसिक स्थिति- कई भ्रान्तियों के कारण माताएं शिशु को स्तनपान कम कराती हैं जैसे स्तनपान से उनकी शरीर आकृति खराब होने का भय आदि। शिशु को स्तनपान कराने की इच्छा में कमी से स्वतः ही दूध स्राव पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

3. माता का आहार- यदि माता पूर्ण पौष्टिक एवं सन्तुलित आहार ग्रहण करती है तो दूध स्रावण भी अच्छा होता है तथा दूध की गुणवत्ता भी अच्छी होती है क्योंकि उस दूध में सभी पौष्टिक तत्व विद्यमान होते हैं। कुपोषित माता को दूध तो कम होता ही है साथ ही उन पौष्टिक तत्वों की भी कमी होती है जिनकी माता के शरीर में कमी होती है।

4. माता का स्वास्थ्य- यदि माता कुपोषित, रोगी, अत्यधिक कमजोर व निर्बल होती है तो उसकी धात्रीवस्था भी नकारात्मक ढंग से प्रभावित होती है।

5. धात्री अवस्था का बढ़ता समय- शिशु जन्म से लेकर 6 माह तक माता को अधिक मात्रा में पौष्टिक तत्वों से भरपूर दूध स्राव होता है। यह शिशु पोषण के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है। इसके पश्चात् इसकी मात्रा कम होती जाती है अतः शिशु को ऊपरी आहार खिलाया जाना चाहिए।

6. प्रोलैक्टिन हारमोन के अल्प स्रावण द्वारा- दूध स्रावण पिट्यूटरी ग्रन्थि से निकलने वाले प्रोलैक्टिन हारमोन से प्रभावित होता है। यदि ये हारमोन अल्प मात्रा में स्रावित होता है, तो दूध का निर्माण भी कम होता है।

7. माता के स्तनों का दोषपूर्ण होना- माता के स्तनों के दोषपूर्ण या विकृत होने पर वह स्तनपान नहीं करवा पाती है। परिणामतः धीरे-धीरे शिशु का माता के दूध के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है।

8. शिशु के मुँह की विकृति- कई बार यह भी होता है कि माता के शरीर में दूध की कमी नहीं होती। परन्तु यदि बालक शारीरिक रूप से अपरिपक्व, कम शारीरिक वजन तथा कमजोर होता है तो वह दूध पी नहीं पाता। मुँह में किसी विकृति जैसे कटा होंठ, तलवा व जीभ फटा होना आदि के कारण शिशु को दूध पीने में कठिनाई होती है।

9. समय की कमी- धात्री माता यदि काम काजी है व अत्यधिक व्यस्त दिनचर्या व्यतीत करती है तो वह कई-कई घण्टे बाहर होने के कारण स्तनपान नहीं करवा पाती। ऐसी परिस्थिति में भी दूध की मात्रा धीरे-धीरे कम हो जाती है।

2.4.3 धात्रीवस्था में पोषक तत्वों की आवश्यकता

I.C.M.R. के अनुसार एक धात्री माता प्रतिदिन 600-800 मिली लीटर दूध उत्पादित करती है। दूध की मात्रा प्रसव के तुरन्त बाद कम होती है जो बढ़ते-बढ़ते 6 महीने में अपने चरम पर आ जाती है। इसके बाद दूध की मात्रा एवं गुणवत्ता घटने लगती है। अतः I.C.M.R. ने पोषक तत्वों की आवश्यकतानुसार धात्रीवस्था को दो भागों में बाँटा है-

- 0-6 महीने

- 6-12 महीने

धात्रीवस्था में विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता इस प्रकार है-

1. ऊर्जा- दुग्ध स्राव के कारण धात्री माता को अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता गर्भावस्था से भी अधिक मानी गयी है। I.C.M.R. के अनुसार 0-6 महीने में 600 किलो कैलोरी (kcal) तथा 6-12 महीने में 520 kcal अतिरिक्त ऊर्जा धात्री माता को लेनी चाहिए। धात्री माता 1 वर्ष के बाद सामान्य आहार ले सकती है क्योंकि तब तक दुग्ध स्राव लगभग समाप्त हो जाता है व शिशु सम्पूर्णतः पूरक आहार ग्रहण करने लगता है।

2. प्रोटीन- माता के दूध में प्रोटीन की अच्छी मात्रा होने के कारण उसकी प्रोटीन की आवश्यकताएं काफी मात्रा में बढ़ जाती है। 0-6 महीने में 19 ग्राम तथा 6- 12 महीने में 13 ग्राम अतिरिक्त प्रोटीन माता को अपने आहार में शामिल करना चाहिए। प्राणिज भोज्य पदार्थ जैसे दूध, अण्डा, माँस, मछली प्रोटीन प्राप्ति के उत्तम साधन हैं तथा इनसे उच्च कोटि का प्रोटीन प्राप्त होता है। दालें, सोयाबीन, मेवे आदि भी प्रोटीन के अच्छे वनस्पति स्रोत हैं। अतः भोजन में इनका प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए।

3. वसा- गर्भावस्था की तरह ही धात्री अवस्था के किसी भी चरण में अतिरिक्त वसा की आवश्यकता नहीं होती। धात्री माता को सामान्य स्त्री की तरह ही 30 ग्राम वसा का प्रतिदिन सेवन करना चाहिए।

4. कैल्शियम- माता के दूध में कैल्शियम की उचित मात्रा पायी जाती है। अतः धात्री माता को गर्भावस्था की तरह कैल्शियम की मात्रा का भोजन में ध्यान रखना चाहिए। धात्रीवस्था के दोनों चरणों में प्रतिदिन 1.2 ग्राम कैल्शियम की आवश्यकता होती है। इसके उचित स्रोतों जैसे दूध एवं दुग्ध उत्पादों आदि को आहार में अच्छी मात्रा में शामिल करना चाहिए।

5. लौह लवण- धात्रीवस्था में सामान्यतः स्त्रियों को मासिक स्राव कम होता है या रूक जाता है व शिशु रक्त निर्माण जैसी आवश्यकताएं भी नहीं होती। धात्री माता को प्रतिदिन 21 मिलीग्राम लौह लवण आहार के माध्यम से लेना चाहिए।

6. विटामिन ए- धात्री माता द्वारा स्रावित दूध विटामिन ए का अच्छा स्रोत होता है। अतः विटामिन ए की आवश्यकता गर्भावस्था से अधिक हो जाती है। धात्रीवस्था में 950 रेटिनॉल की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता 1 वर्ष तक की धात्रीवस्था के लिए मानी गयी है।

7. विटामिन सी- धात्रीमाता को प्रतिदिन 80 मिलीग्राम विटामिन सी की आवश्यकता होती है। आहार को पकाते समय उसका विटामिन सी काफी मात्रा में नष्ट हो जाता है। अतः विटामिन सी की आवश्यकता को पूरा करने के लिए आहार में ताजी व कच्ची व खट्टे रसीले तथा मौसम के फलों का बहुतायत में उपयोग करना चाहिए।

8. विटामिन बी- धात्रीवस्था में विटामिन बी समूह की आवश्यकताएं निम्न हैं-

- **थायमिन-** थायमिन की आवश्यकता सम्पूर्णतः ऊर्जा आवश्यकताओं से प्रभावित होती है। अतः 0-6 महीने में 0.3 मिलीग्राम व 6-12 महीने में 0.2 मिलीग्राम अतिरिक्त थायमिन की आवश्यकता होती है। धात्रीवस्था के प्रथम चरण में ऊर्जा की अधिक आवश्यकता होने से थायमिन की आवश्यकता भी बढ़ जाती है।
- **राइबोफ्लेविन-** 0-6 महीने में 0.4 मिलीग्राम व 6-12 महीने में 0.3 मिलीग्राम अतिरिक्त राइबोफ्लेविन की आवश्यकता होती है। इसकी मात्रा भी ऊर्जा की आवश्यकता से प्रभावित होती है।
- **नियासिन-** धात्री माता को 0-6 महीने में 4 मिलीग्राम व 6-12 महीने में 3 मिलीग्राम अतिरिक्त नियासिन की आवश्यकता होती है।
- **विटामिन बी6-** विटामिन बी 6 की मात्रा गर्भावस्था के समान अर्थात् 2.5 मिलीग्राम प्रतिदिन ही मानी गई है।
- **विटामिन बी12-** धात्रीवस्था के दोनों चरणों में इसकी आवश्यकता 1.5 माइक्रोग्राम प्रतिदिन प्रस्तावित की गयी है।
- **फोलिक अम्ल-** धात्रीवस्था में फोलिक अम्ल की मात्रा गर्भावस्था की तुलना में कम हो जाती है। धात्रीवस्था में 300 माइक्रोग्राम फोलिक अम्ल प्रतिदिन लेना चाहिए।

9. जिंक- जिंक की मात्रा धात्रीवस्था में भी गर्भावस्था के समान ही रहती है अर्थात् 12 मिलीग्राम प्रतिदिन।

2.4.4 धात्री माता के लिए आहार नियोजन करते समय ध्यान देने योग्य बातें

उचित पोषण की जितनी आवश्यकता गर्भवती स्त्री को है उतनी ही धात्री माता को भी होती है। धात्री माता के लिए आहार आयोजन करते समय कुछ आवश्यक बातों का ध्यान रखना चाहिए-

- इस अवस्था में दूध, अण्डा, माँस, मछली, पनीर, छाछ आदि भोज्य पदार्थों को अधिक मात्रा में आहार में शामिल करना चाहिए क्योंकि इनमें उत्तम गणवत्ता का प्रोटीन पाया जाता है।
- धात्री माता को अधिक जल पीना चाहिए क्योंकि दुग्ध स्राव के कारण शरीर में पानी की कमी हो जाती है।
- फलों का रस, सब्जियों का सूप, छाछ एवं अन्य तरल भोज्य पदार्थों की मात्रा आहार में बढ़ा देनी चाहिए।
- गरिष्ठ, तला-भुना एवं बासी भोजन से परहेज रखना चाहिए।
- अधिक मिर्च- मसालेदार भोज्य पदार्थ नहीं खाने चाहिए।
- कैल्शियम की बढ़ी हुई आवश्यकता के लिए दूध एवं दुग्ध उत्पाद, सूखे मेवे आदि उचित मात्रा में लेने चाहिए।
- एक साथ ज्यादा भोजन न करके थोड़ी- थोड़ी देर में कुछ-न कुछ खाना चाहिए।
- दिन भर के भोजन को तीन मुख्य व तीन छोटे आहार में बाँट लें। अर्थात् दिन में 6-7 बार आहार ग्रहण करना चाहिए।

तालिका 2.3: पोषक तत्वों की दैनिक प्रस्तावित मात्रा

स्रोत: **www. ninindia.org**

श्रेणी	विटामिन ए (माइक्रोग्राम प्रतिदिन)		थायमिन (मिलिग्राम प्रतिदिन)	राइबोफ्लेविन (मिलिग्राम प्रतिदिन)	नियासिन (मिलिग्राम प्रतिदिन)	विटामिन बी 6 (मिलिग्राम प्रतिदिन)	विटामिन बी12 (माइक्रोग्राम प्रतिदिन)	फोलिक अम्ल (माइक्रोग्राम प्रतिदिन)	मैग्नीशियम (मिलिग्राम प्रतिदिन)
	रेटिनॉल	बीटा कैरोटीन							
अल्पश्रम	600	4800	1	1.1	12	2.0	1	200	310
मध्यमश्रम			1.1	1.3	14				
अत्यधिक श्रम			1.4	1.7	16				
गर्भावस्था	800	6400	+0.2	+0.3	+2	2.5	1.2	500	
धात्रीवस्था 0-6 महीने	950	7600	+0.3	+0.4	+4		1.5	300	
6-12 महीने			+0.2	+0.3	+3				

स्रोत: **www. ninindia.org**

तालिका 2.4: पोषक तत्वों की दैनिक प्रस्तावित मात्रा

श्रेणी	ऊर्जा किलो (कैलोरी प्रतिदिन)	प्रोटीन (ग्राम प्रतिदिन)	वसा (ग्राम प्रतिदिन)	कैल्शियम (मिलिग्राम प्रतिदिन)	लोहा (मिलिग्राम प्रतिदिन)	विटामिन सी (मिलिग्राम प्रतिदिन)	जिंक (मिलिग्राम प्रतिदिन)
अल्पश्रम	1900	55	20	600	21	40	10
मध्यमश्रम	2230		25				
अत्यधिक श्रम	2850		30				
गर्भावस्था	+350	+23	30	1200	35	60	12
धात्रीवस्था 0-6 महीने	+600	+19			21	80	
6-12 महीने	+520	+13					

2.4.5 धात्री स्त्री हेतु एक दिन की आहार तालिका

मध्यम क्रियाशील धात्री माता (0-6 माह) हेतु एक दिन की आहार तालिका

आहार तालिका

आहार	**मीनू**
6:30 a.m.	चाय बिस्कुट
8:30 a.m.	दूध कार्नफ्लेक्स उबला अण्डा ब्रैड बटर केला
11:30 a.m.	चाय पन्जीरी
2:00 p.m.	मिक्स दाल भिन्डी की सब्जी सलाद चावल रोटी प्याज-टमाटर का रायता

5:00 p.m.	स्ट्रॉबेरी शेक वेजीटेबल कटलेट
8:30 p.m.	सब्जियों का सूप लोबिया की दाल कद्दू की सब्जी आलू का रायता रोटी चावल
10:00 p.m.	दूध

अभ्यास प्रश्न 2

1. धात्रीवस्था के दोनों चरणों में निम्न पोषक तत्वों की अनुशंसित आवश्यकता बताएं।
   a. ऊर्जा
   b. राइबोफ्लेविन
   c. फोलिक अम्ल
   d. विटामिन बी6
   e. विटामिन बी12

2. सही अथवा गलत बताएं।
   a. धात्री माता को जल कम पीना चाहिए।
   b. धात्री माता को प्रसव के प्रथम छः महीने अधिक दूध स्रावित होता है।
   c. प्रोलैक्टिन हारमोन के अल्प स्त्रवण से दूध का निर्माण कम होता है।
   d. माता के दूध में कैल्शियम नहीं पाया जाता।
   e. धात्रीवस्था में प्रोटीन की अतिरिक्त आवश्यकता नहीं होती है।

2.5 सारांश

गर्भावस्था में स्त्री एक नये जीव को विकसित करती है एवं धात्रीवस्था में वह दुग्ध स्रावण करके शिशु को पोषण उपलब्ध कराती है। अतः गर्भावस्था एवं धात्रीवस्था पोषण की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। इन दोनों ही अवस्थाओं में अनेक शारीरिक बदलावों के कारण कई अस्थायी स्वास्थ्य समस्याएं जैसे कमर दर्द, कब्ज आदि उत्पन्न हो जाती हैं। इन समस्याओं व बढ़ी हुयी पोषक तत्वों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर आहार नियोजन ही माता एवं गर्भस्थ शिशु के समुचित विकास व स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार से धात्री अवस्था भी माँ व शिशु पर अत्यधिक प्रभाव डालती है। कुपोषण ग्रस्त माता स्वयं भी अनेक स्वास्थ्य समस्याओं से जूझती है, साथ ही शिशु के

शुरूआती पोषण व स्वास्थ्य पर बुरा असर डालकर उसके सम्पूर्ण जीवन पर नकारत्मक प्रभाव डालती है। अतः धात्रीवस्था में भी माता के पोषण का अधिकाधिक ध्यान रखना चाहिए।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

- **रक्त परिसंचरण:** जीवित अवस्था में रक्त शरीर में सदैव संचरण करता रहता है। रक्त के इसी प्रकार से संचरण करने की क्रिया को रक्त परिसंचरण कहते हैं।
- **संतृप्त वसा:** यह वह वसा होती है जिसमें कोई कार्बन डबल बॉण्ड नहीं होता है। पशु की चर्बी व मक्खन आदि वसा के प्राणिज स्रोत संतृप्त वसा के स्रोत हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह अच्छी नहीं मानी जाती।
- **असंतृप्त वसा:** यह वह वसा होती है जिसमें कार्बन डबल बॉण्ड उपस्थित होता है। यह स्वास्थ्य के लिए संतृप्त वसा से बेहतर मानी जाती है। यह वानस्पतिक तेलों जैसे सोयाबीन, कैनोला, ऑलिव आदि तेलों में पायी जाती है।
- **आधारिय उपापचयिक दर (Basal Metabolic Rate/ BMR):** शरीर को जीवित रखने के लिए एक न्यूनतम मात्रा में ऊर्जा की जरूरत होती है जिसे आधारीय उपापचय कहा जाता है। व्यक्ति पूर्ण विश्राम अवस्था में एक घण्टे में जितनी उष्मा उत्पन्न करता है उसे व्यक्ति की आधारीय उपापचयिक दर कहा जाता है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. गर्भावस्था में निम्न पोषक तत्वों की अनुशंसित की मात्रा बताएं:
   a. +23 ग्राम
   b. +0.2 मिलीग्राम
   c. 60 मिलीग्राम
   d. 35 मिलीग्राम

2. सही अथवा गलत बताएं।
   a. सही
   b. गलत
   c. गलत
   d. सही
   e. गलत

अभ्यास प्रश्न 2

1. धात्रीवस्था के दोनों चरणों में निम्न पोषक तत्वों की अनुशंसित आवश्यकता बताएं।
   a. 0-6 महीने +600 kcal एवं 6-12 महीने +520 kcal
   b. 0-6 महीने +0.4 mg एवं 6-12 महीने +0.3 mg
   c. 300 mg
   d. 2.5 mg
   e. 1.5 mg

2. सही अथवा गलत बताएं।
   a. गलत
   b. सही
   c. सही
   d. गलत
   e. गलत

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. खन्ना कुमुदः टेक्स्टबुक ऑफ न्यूट्रीशन एन्ड डाइटेटिक्स, ऐलीट पब्लीशिंग।
2. श्रीलक्ष्मी बी0: डाइटेटिक्स, न्यू एज इन्टरनेशनल पब्लिकेशन (पाँचवा संस्करण)।
3. स्वामिनाथन एम0: फूड एण्ड न्यूट्रीशन, बैपको पब्लिकेशन।
4. बक्शी बी0 के0: आहार एवं पोषण के मूल सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
5. एन्शिया एफ0 पी0 एण्ड फिलिप्स एब्राहमःक्लीनिकल न्यूट्रीशन एण्ड डाइटेटिक्स, ऑक्सफोर्ड पब्लिकेशन (चौथा संस्करण)।

इंटेर्नेट स्रोत:

www. ninindia.org

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. गर्भावस्था में होने वाले शरीरिक परिवर्तनों का उल्लेख करें।
2. गर्भावस्था में पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता पर प्रकाश डालें।
3. गर्भावस्था एवं धात्रीवस्था में आहार नियोजन करते समय ध्यान रखने योग्य सुझाव लिखें।
4. धात्रीवस्था को प्रभावित करने वाले कारकों को समझाएं।
5. धात्रीवस्था में पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता को विस्तृत रूप से समझाइये।

इकाई 3: शैशवावस्था में पोषण

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 शैशवावस्था की विशेषताएं
3.4 शैशवावस्था में पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता
3.5 शैशवावस्था के प्रारम्भिक महीनों में आहार
    3.5.1 स्तनपान
    3.5.2 माता के दूध का संगठन
    3.5.3 स्तनपान के लाभ
    3.5.4 बोतल का दूध
3.6 शिशु का शैशवावस्था मे मध्य एवं अन्तिम महीनों में आहार
    3.6.1 वीनिंग
    3.6.2 अनुपूरक आहार
3.7 शिशु को अनुपूरक आहार देते समय ध्यान रखने योग्य बातें
3.8 सारांश
3.9 पारिभाषिक शब्दावली
3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

जन्म से लेकर एक वर्ष तक की अवस्था को शैशवावस्था कहा जाता है। यह तीव्र वृद्धि और विकास की अवस्था है। जीवन की पहले वर्ष में शिशु बाकी सभी जीवन अवस्थाओं की अपेक्षा अत्यन्त तेजी से बढ़ता है। यही कारण है कि एक नवजात शिशु जो सम्पूर्णतः अपनी माता पर आश्रित होता है, प्रथम वर्ष के अन्त तक काफी मात्रा में शारीरिक एवं मानसिक योग्यताएं सीख जाता है। इसके अलावा शिशु कुछ मात्रा में भाषा ज्ञान, क्रियात्मक कौशल व संवेगात्मक गतिविधियाँ भी करने लगता है। इन सब विकास दरों का निर्विघ्न रूप से चलना शिशु के सम्पूर्ण जीवन के सामान्य रहने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यदि इस अवस्था में पर्याप्त व उचित भोजन से शिशु वंचित रह जाता है तो निश्चित रूप से इसका नकारात्मक प्रभाव उसके सम्पूर्ण जीवन पर पड़ता है। अतः जीवन के प्रारम्भिक काल में पोषण का महत्वपूर्ण स्थान है। माता-पिता अथवा अभिभावकों को शिशु की पोषण आवश्यकताओं के प्रति जागरूक रहना

चाहिए क्योंकि इस अवस्था में उसकी अस्थियों, माँसपेशियों, अंगों तथा मानसिक योग्यताओं का आधार निर्धारित होता है व उसके भविष्य का विकास निश्चित होता है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जानेंगे;

- शैशवावस्था की विशेषताएं;
- शैशवावस्था में पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता;
- शैशवावस्था के प्रारम्भिक महीनों में आहार; तथा
- शिशु का शैशवावस्था के मध्य एवं अन्तिम महीनों में आहार।

3.3 शैशवावस्था की विशेषताएं

शैशवावस्था में शिशु सभी विकास क्षेत्रों में अत्यन्त तेज दर से वृद्धि एवं विकास प्राप्त करता है।

1. शरीर के आकार में परिवर्तन- जीवन के प्रथम वर्ष में बहुत तेजी से आकार में परिवर्तन होता है। एक सामान्य शिशु पाँच माह की आयु में अपने जन्म के वजन से दोगुना हो जाता है तथा पहले वर्ष के अन्त तक तीन गुना हो जाता है। शिशु का जन्म पर वजन 2.5-3.5 किलोग्राम तक होता है। इसी प्रकार वह लम्बाई में भी तेजी से बढ़ता है। जन्म के समय शिशु की लम्बाई 50 सेन्टीमीटर होती है जो प्रथम वर्ष तक 75 सेन्टीमीटर हो जाती है। इसके साथ ही शिशु के शारीरिक अनुपात भी काफी तेजी से बदलते हैं।

2. शारीरिक संगठन में परिवर्तन- हमारे शरीर का सम्पूर्ण भार हमारी माँसपेशियों, अंगों, वसीय ऊतकों तथा हड्डियों से मिलकर बना होता है। जन्म के समय शिशु के शरीर में 75 प्रतिशत जल, 12-15 प्रतिशत वसा व अत्यधिक कमजोर माँसपेशियाँ होती हैं। प्रथम वर्ष के अन्त तक शिशु के शरीर में जल की मात्रा 60 प्रतिशत रह जाती है। यही वजह है इस अवस्था में अतिसार शिशु के लिए जानलेवा भी हो सकता है क्योंकि अतिसार की स्थिति में जल की भारी मात्रा में क्षति होती है।

3. पाचन सम्बन्धी परिवर्तन- नवजात शिशु सरल प्रोटीन, वसा व कार्बोहाइड्रेट पचाने में सक्षम होता है परन्तु प्रथम कुछ महीनों में स्टार्च के पाचन सम्बन्धी एन्जाइम का उत्पादन नहीं हो पाता। जैसे-जैसे शिशु बड़ा होता है एन्जाइम उत्पादन क्षमता बढ़ती है तथा प्रथम वर्ष के अन्त तक वह लगभग हर प्रकार का भोजन पचा पाने योग्य हो जाता है।

4. उत्सर्जन क्रिया सम्बन्धी परिवर्तन- कुछ महीनों तक शिशु के गुर्दे रक्त शुद्धिकरण में सम्पूर्णतः सक्षम नहीं होते परन्तु प्रथम वर्ष के अन्त तक गुर्दों की शुद्धिकरण क्षमता परिपक्वता प्राप्त कर लेती है।

5. मानसिक विकास- प्रथम वर्ष में शिशु के मस्तिष्क की कोशिकाएं बहुत तेजी से बढ़ती हैं। कुपोषण की स्थिति इस अवस्था में होने वाले मानसिक विकास पर अपूरणीय क्षति पहुँचाती है।

6. खान-पान सम्बन्धी व्यवहार- जैसे-जैसे शिशु परिपक्व होता है उसकी माँसपेशियाँ विकसित होती हैं जिससे वह पहले से बेहतर रूप से भोजन ग्रहण कर पाने में सक्षम होता है। प्रारम्भ में शिशु चूसने व निगलने की क्रिया द्वारा दूध पीता है। 3-4 महीने में वह जीभ को ऊपर-नीचे हिला के निगलने में आसानी अनुभव करता है। 6 महीने में वह खाने को हल्का चबा लेता है तथा बाद में दाँत निकलने पर शिशु ठोस आहार भी खा लेता है।

3.4 शैशवावस्था में पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता

शैशवावस्था में वृद्धि व विकास को सुचारू रूप से बढ़ावा देने के लिए उचित पोषण की अति आवश्यकता होती है। ICMR ने पोषण की दृष्टि से शैशवावस्था को दो भागों में बाँटकर उनकी पोषक तत्वों की आवश्यकताओं को प्रस्तावित किया है। यह दो भाग इस प्रकार हैं-

- 0-6 महीने
- 6-12 महीने

दोनों अवस्थाओं में शिशुओं की क्षमताएं एवं आवश्यकताएं अलग होती हैं। विभिन्न पोषक तत्वों का विवरण निम्न प्रकार है-

1. ऊर्जा- नवजात शिशु सम्पूर्णतः माता के दूध पर निर्भर होता है। उसकी समस्त आवश्यकताएं माँ के दूध से पूर्ण हो जाती हैं परन्तु 5 महीने के बाद उसे अनुपूरक आहार द्वारा ऊर्जा प्राप्ति होती है। ICMR के अनुसार 0-6 महीने के शिशु को 92 किलो कैलोरी/प्रति किलो/प्रतिदिन आवश्यक है और 6-12 महीने के शिशु को 80 किलो कैलोरी/प्रति किलो/प्रतिदिन आवश्यक है। वृद्धि की गति तीव्र होने की वजह से ऊर्जा संग्रह की आवश्यकता भी तीव्र होती है अतः शिशु की ऊर्जा आवश्यकताएं पूरी होनी बेहद महत्वपूर्ण हैं। ऊर्जा की उपयुक्त मात्रा प्रोटीन को शारीरिक विकासात्मक कार्यों हेतु सुरक्षित रखती है अन्यथा ऊर्जा की कमी के कारण प्रोटीन अपने मुख्य कार्य को करने के बजाय शरीर को ऊर्जा देने का कार्य करने लगता है।

2. प्रोटीन- 0-6 महीने में 1.16 ग्राम/प्रति किलो/प्रतिदिन एवं 6-12 महीने में 1.69 ग्राम/प्रति किलो/ प्रतिदिन प्रोटीन की मात्रा शिशु को देनी चाहिए। माँसपेशियों एवं अत्यधिक निर्माणात्मक कार्यों के कारण शिशु के लिए प्रोटीन लेना आवश्यक है।

3. वसा- 0-6 महीने का शिशु वसा को किसी भी आहारीय माध्यम से ग्रहण नहीं करता। माता के दूध का वसीय संगठन ही उसकी शारीरिक आवश्यकता पूर्ण कर देता है। 6-12 महीने के शिशु को 19 ग्राम वसा प्रतिदिन देनी चाहिए। अनुपूरक आहार के माध्यम से वह यह वसा प्राप्त कर सकता है।

4. कैल्शियम- जन्म से एक वर्ष तक शिशु को 500 मिलीग्राम कैल्शियम प्रतिदिन देना चाहिए। हड्डियों व दाँतों के विकास हेतु कैल्शियम अनिवार्य रूप से शिशु के आहार में शामिल करना चाहिए। शैशवावस्था में कैल्शियम की कमी से अस्थियाँ दुर्बल हो जाती हैं जिससे उसे रिकेट्स रोग हो सकता है।

5. लौह लवण- 0-6 महीने में शिशु को 46 माइक्रोग्राम/प्रतिकिलो/प्रतिदिन लौह लवण की आवश्यकता होती है। माता के दूध में लोहा अल्प मात्रा में होता है परन्तु गर्भकाल में शिशु के शरीर में संग्रहित लौह लवण उसकी प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम होता है। इसके लिए स्त्री का गर्भकाल में स्वस्थ व शरीर में लौह लवण की भरपूर मात्रा का होना आवश्यक है। यदि माता के आहार में पर्याप्त मात्रा में लौह तत्व उपस्थित नहीं होता है तो गर्भवती स्त्री व शिशु एनीमिया रोग के शिकार को जाते हैं। 6-12 महीने में शिशु को 5 मिलीग्राम/प्रतिदिन लौह लवण की आवश्कता होती है।

6. विटामिन ए- ICMR ने 0-6 महीने में विटामिन ए की कोई मात्रा प्रस्तावित नहीं की है क्योंकि शिशु माता के दूध एवं अपने शारीरिक संग्रहण द्वारा पर्याप्त विटामिन ए प्राप्त कर लेता है। 6-12 महीने में उसे 350 माइक्रोग्राम रेटिनॉल प्रतिदिन आवश्यक होता है। विटामिन ए शरीर की वृद्धि एवं आँखों के स्वास्थ्य के लिए बेहद जरूरी है। इसकी कमी से रतौंधी रोग हो जाता है।

7. विटामिन सी- उचित स्वास्थ्य एवं संक्रमण रोगों से बचाव के लिए विटामिन सी की आवश्यकता होती है। शरीर में प्रतिरक्षण क्षमता में वृद्धि के लिए भी विटामिन सी अत्यावश्यक है। पूरे शैशवकाल में शिशु को 25 मिलीग्राम विटामिन सी प्रतिदिन आवश्यक होता है।

8. मैग्नीशियम- शिशु को प्रथम 0-6 महीने में 30 मिलीग्राम प्रतिदिन व 6-12 महीने में 45 मिलीग्राम प्रतिदिन मैग्नीशियम की आवश्यकता होती है।

9. विटामिन बी- विटामिन बी समूह की विभिन्न आवश्यकताएं निम्न प्रकार हैं-

- **थायमिन-** थायमिन की आवश्यकता ऊर्जा ग्रहण पर निर्भर करती है। अतः धात्रीवस्था की बाद की अवस्था में थायमिन की अधिक आवश्यकता होती है। 0-6 महीने में 0.2 मिलीग्राम प्रतिदिन व 6-12 महीने में 0.3 मिलीग्राम प्रतिदिन थायमिन शिशु के लिए आवश्यक होता है।
- **राइबोफ्लेविन-** धात्रीवस्था के 0-6 महीने में 0.3 मिलीग्राम प्रतिदिन व 6-12 माह में 0.4 मिलीग्राम प्रतिदिन राइबोफ्लेविन की मात्रा शिशु के लिए प्रस्तावित की गयी है।
- **नियासिन-** धात्रीवस्था के प्रथम 0-6 माह में 710 माइक्रोग्राम/प्रतिकिलो/प्रतिदिन व 6-12 माह में 650 माइक्रोग्राम/प्रतिकिलो/प्रतिदिन नियासिन शिशु के लिए आवश्यक होता है।
- **विटामिन B6/पाइरीडॉक्सिन-** अध्ययनों में यह पाया गया है कि विटामिन बी6 शिशु को नगण्य मात्रा में आवश्यक होता है। माता के दूध द्वारा यह आवश्यकता पूर्ण नहीं होती है। गर्भस्थ अवस्था में यकृत द्वारा संग्रहित किया गया विटामिन बी6 शिशु अपनी शुरुआती शैशवावस्था में आवश्यकता पूर्ति के लिए उपभोग कर लेता है। बाद की अवस्था में यह जरूरत बढ़ जाती है। 0-6 माह में 0.1 मिलीग्राम प्रतिदिन व 6-12 माह में 0.4 मिलीग्राम प्रतिदिन विटामिन बी6 की आवश्यकता प्रस्तावित की गई है।
- **विटामिन बी12-** सम्पूर्ण शैशवकाल में शिशु को 0.2 माइक्रोग्राम विटामिन बी12 की आवश्यकता होती है।

- **फोलिक अम्ल-** शैशवावस्था की दोनों अवस्थाओं में शिशु को 25 माइक्रोग्राम फोलिक अम्ल प्रतिदिन आवश्यक होता है।

तालिका 3.1 शिशुओं के लिए पोषक तत्वों की दैनिक प्रस्तावित मात्रा

पोषक तत्व	शैशवावस्था	
	0-6 **माह**	6-12 **माह**
ऊर्जा	92 kcal/kg/d	80 kcal/kg/d
प्रोटीन	1.16 gm/ kg/d	1.69 gm/ kg/d
वसा (gm/d)	-	19
कैल्शियम (mg/d)	500	500
लौह लवण	46 µg/kg/d	5mg/d
मैग्नीशियम (mg/d)	30	45
विटामिन ए	-	रेटिनॉल 350 µg/d बीटा कैरोटीन 2800 µg/d
विटामिन सी (mg/d)	25	25
थायमिन (mg/d)	0.2	0.3
राइबोफ्लेविन (mg/d)	0.3	0.4
नियासिन	710 µg/kg	650 µg/kg
विटामिन बी6 (mg/d)	0.1	0.4
विटामिन बी 12 (mg/d)	0.2	0.2
फोलिक अम्ल (µg/d)	25	25

स्रोत: www. ninindia.org

3.5 शैशवावस्था के प्रारम्भिक महीनों में आहार

शैशवावस्था में शिशु प्रारम्भिक 4-5 महीनों तक माता के दूध पर ही निर्भर होता है। अगर किसी कारणवश उसे माता का दूध प्राप्त नहीं हो पाता तो उसे बोतल का दूध अथवा फॉर्मूला दूध दिया जाता है। अतः शिशु के प्रारम्भिक आहार को दो भागों में बाँटा जा सकता है-

1. स्तनपान/माता का दूध

2. बोतल का दूध

3.5.1 स्तनपान

माता का दूध शिशु के लिए अमृत समान है। यह दूध शिशु के लिए जितना पौष्टिक, लाभदायक, स्वास्थ्यवर्धक एवं सुपाच्य होता है, संसार की कोई भी वस्तु नहीं हो सकती। नवजात शिशु के पाचन अंग अत्यन्त ही अपरिपक्व दशा में होते हैं, जो केवल माता के दूध को ही सरलता व सुगमता से पचा पाते हैं।

3.5.2 माता के दूध का संगठन

माता के दूध में वे सभी पौष्टिक तत्व उचित अनुपात एवं आवश्यक मात्रा में विद्यमान रहते हैं जो शिशु के पोषण एवं उत्तम स्वास्थ्य के लिए नितान्त जरूरी होते हैं। माता के दूध में कार्बोहाइड्रेट, वसा, कैल्शियम आदि प्रचुर मात्रा में तो होते ही हैं साथ ही अत्यन्त सुपाच्य रूप में भी होते हैं। उदाहरण के लिए माता के दूध में पाया जाने वाला प्रोटीन उत्तम प्रकार का होता है। इसमें लैक्टएलब्यूमिन व लैक्टग्लोब्यूलिन की मात्रा अधिक होती है। इससे यह अधिक घुलनशील होने के कारण बेहद आसानी से शिशु द्वारा पचा लिया जाता है।

तालिका 3.2 शिशु को दिये जाने वाले विभिन्न प्रकार के दूध का संगठन

दूध	ऊर्जा	प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट	वसा	कैल्शियम
माता का दूध	65	1.1	7.4	3.4	28
गाय का दूध	67	3.2	4.4	4.1	120
भैंस का दूध	117	4.3	5.0	6.5	210

स्त्रोत: कुमुद खन्ना- टेक्स्टबुक ऑफ न्यूट्रीशन एण्ड डाइटेटिक्स

3.5.3 स्तनपान के लाभ

माता के दूध को शिशु के लिए सर्वश्रेष्ठ आहार माना जाता है। इसके अनेक लाभ हैं जिसका वर्णन निम्न है-

माता का दूध प्राकृतिक व सर्वोत्तम आहार है और आसानी से उपलब्ध है।

- माता का दूध अत्यन्त शुद्ध और जीवाणु रहित होता है।
- यह शिशु की पाचन क्षमता के अनुकुल होता है।
- इसे पीने से शिशु के जबड़ों का व्यायाम होता है।
- माँ का दूध सभी मौसम में उचित तापक्रम पर उपलब्ध होता है।

- माता के दूध में इम्यूनोग्लोब्यूलिन्स होते हैं जो शिशु को सूक्ष्मजीवों तथा रोगों से लड़ने की अद्भुत क्षमता प्रदान करते हैं।
- माता के दूध में लाइसोजाइम्स की मात्रा अन्य जानवरों के दूध की अपेक्षा अधिक होती है। यह जीवाणुओं से लड़ने व रोग-रोधक शक्ति प्रदान करते हैं।
- माता के दूध में लैक्टोफेरिन नामक प्रोटीन प्रचुर मात्रा में उपस्थित रहता है। इसमें लौह तत्व को बाँधने का अद्भुत गुण विद्यमान रहता है। अतः यह शिशु की रक्तअल्पता से रक्षा करता है।
- माता के दूध में लैक्टोबैसिलस बिफिडस फैक्टर (Lactobacillus bifidus factor) नामक जीवाणु उपस्थित होते हैं। यह शिशु की आँतों में जाकर विटामिन बी का निर्माण करते हैं। यह विटामिन बी भोजन के अवशोषण में मदद करता है।
- माता के स्तनों से प्रारम्भ के दो दिनों में गाढ़ा पीला रंग का तरल पदार्थ निकलता है जिसे 'कोलोस्ट्रम' कहते हैं। इसमें खनिज लवण, वसा एवं प्रोटीन का अनुपात अधिक होता है। यह शिशु के पोषण के लिए अत्यावश्यक होता है, क्योंकि इसमें वे सभी पौष्टिक तत्व उपस्थित होते हैं जो शिशु के पोषण में सहयोग देते हैं। यह पाचन शक्ति व रोग रोधक क्षमता बढ़ाता है।
- शिशु के पाचन तन्त्र के अनुसार ही माता के दूध का संगठन होता है। प्रारम्भ में यह पतला होता है, क्योंकि शिशु का पाचन तन्त्र अपरिपक्व होता है। किन्तु जैसे-जैसे शिशु का शरीर परिपक्व होता जाता है, दूध का रासायनिक संगठन एवं स्वरूप परिवर्तित होता रहता है।
- स्तनपान से माता और शिशु दोनों ही सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं और दोनों का भावनात्मक सम्बन्ध प्रगाढ़ होता है। माँ का वात्सल्य बढ़ता है और शिशु को माता से सुरक्षा और संरक्षण की अनुभुति होती है।
- नवजात शिशु के वृक्क (Kidney) कमजोर होते हैं। अन्य जानवरों की अपेक्षा माता के दूध में प्रोटीन की मात्रा कम होती है। इससे कम यूरिया का निर्माण होता है, जिससे वृक्क पर छनन प्रक्रिया में कम भार पड़ता है।
- माता के दूध में लिम्फॉइड कोशिकाएं अत्यधिक संख्या में उपस्थित होती हैं। ये कोशिकाएं इम्यूनोग्लोब्यूलिन्स का उत्पादन करती हैं जिससे कोषों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।
- माता के दूध से शिशु को किसी भी प्रकार की एलर्जी का खतरा नहीं होता। गाय के दूध में पाया जाने वाला लैक्टग्लोब्यूलिन व सीरम बोवाइन एलब्यूमिन कई शिशु में एलर्जी कारक सिद्ध होता है।
- गर्भावस्था में माता के शरीर में गर्भाशय व स्तन की माँसपेशियाँ जो बढ़ जाती हैं, दुग्धपान कराने से संकुचित होकर अपनी सही स्थिति में आ जाती हैं। सामान्यतः स्तनपान कराने के दौरान माताएं दोबारा गर्भधारण नहीं करती। अतः यह प्राकृतिक गर्भनिरोधक का भी कार्य करता है।

3.5.4 बोतल का दूध

इसे शिशु के लिए कृत्रिम आहार भी कहा जाता है। वह शिशु जिनको हम माता का दूध नहीं दे सकते तथा जो माताएं अपने शिशु को स्तनपान द्वारा पर्याप्त दूध नहीं दे पाती हैं, उन शिशुओं को बोतल द्वारा दूध देना आवश्यक हो जाता है। शिशु को बोतल द्वारा दो प्रकार का दूध दिया जाता है-

- पशु दूध
- पाउडर/ दुग्ध फार्मूला

पशु दूध

ज्यादातर माताएं अपने शिशु को भैंस या गाय का दूध पिलाना पसन्द करती हैं। कई जगह शिशुओं को बकरी का दूध भी दिया जाता है। माता के दूध के पश्चात् गाय का दूध शिशु के लिए सबसे उत्तम माना गया है। यद्यपि गाय का दूध शिशु की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं होता। इसमें पौष्टिक तत्व तो अनेक होते हैं लेकिन माता के दूध से अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इसलिए शिशु को गाय के दूध में शुद्ध पानी मिलाकर दिया जाना चाहिए जैसे- दो माह के शिशु को छः माह के शिशु की अपेक्षा पतला दूध दिया जाता है।

पशु दूध देने से पहले उसे अच्छी तरह उबाल लेना चाहिए। इससे दूध कीटाणु रहित हो जाता है व दूध में उपस्थित प्रोटीन भी सरल व सुपाच्य रूप में आ जाती है। आयु के अनुसार शिशु को गाय का दूध निम्नलिखित अनुपात में पानी मिलाकर दिया जा सकता है-

आयु	दुध व पानी का अनुपात
• 0 से 15 दिन	1 भाग दूध + 1 भाग पानी
• 2-6 सप्ताह	2 भाग दूध + 1 भाग पानी
• 1 1/2 से 3 माह	3 भाग दूध + 1 भाग पानी
• 3 माह से अधिक	बिना पानी वाला दूध

पाउडर दूध

इसे दुग्ध फार्मूला भी कहते हैं। पशु दूध की उपलब्धता न होने पर या शिशु द्वारा उसे पचा न पाने पर दुग्ध फार्मूला का उपयोग किया जाता है। शिशु की आयु व स्वास्थ्य के अनुसार ही शिशु रोग विशेषज्ञ डिब्बा बन्द पाउडर दूध की सलाह देते हैं।

पाउडर दूध की निम्न विशेषताएं होती हैं-

- फार्मूला दूध या पाउडर दूध की संरचना माता के दूध की संरचना के अनुपात में ही होती है।
- पाउडर दूध कीटाणु रहित होता है।
- शिशु द्वारा दुग्ध पाउडर में उपस्थित प्रोटीन को आसानी से पचाया जा सकता है।

- नवजात शिशुओं तथा अन्य शिशुओं के लिए अलग-अलग फार्मूले होते हैं।
- दुग्ध पाउडर को बनाना काफी आसान होता है तथा इसको तैयार करने की विधि डिब्बों पर ही लिखी होती है।
- शिशु को दुग्ध पाउडर देने की मात्रा शिशु की आयु तथा भार के अनुसार डिब्बों पर निदेर्शित होती है।
- फार्मूला दूध को लम्बी अवधि तक संग्रहित किया जा सकता है।

दुग्ध फार्मूला बनाने की विधि

दूध तैयार करने से पहले दूध की बोतल, निपिल, चम्मच व छलनी को उबालकर विसंक्रमित कर लें तथा निपिल को गर्म पानी में अच्छी तरह रगड़कर साफ कर लें। एक बर्तन में पानी उबाल लें। शिशु को दी जाने वाली आवश्यक दूध पाउडर की मात्रा बोतल में ले लें तथा डिब्बे पर दिये गये निर्देशों के अनुसार उसमें गुनगुना पानी मिला दें। फिर बोतल को ढक्कन सहित लगाकर अच्छी तरह हिलाएं। यदि आवश्यकता हो तो दूध को छलनी से छान लें। दूध को शरीर के तापक्रम तक ठण्डा होने दें और फिर शिशु को पिलायें।

तालिका 3.3 मानव, गाय, भैंस व बकरी के दूध का विस्तृत संगठन

पौष्टिक तत्व	मानव का दूध (100 ग्राम)	गाय का दूध (100 ग्राम)	भैंस का दूध (100 ग्राम)	बकरी का दूध (100 ग्राम)
प्रोटीन (ग्राम)	1.2	3.3	3.8	3.3
केसीन (ग्राम)	0.4	2.8	3.0	2.5
लैक्टएल्ब्यूमिन (ग्राम)	0.3	0.4	0.4	0.4
लैक्टग्लोब्यूलिन (ग्राम)	0.2	0.2	0.2	0.3
वसा (ग्राम)	3.8	3.7	7.5	4.1
लैक्टेज (ग्राम)	7.0	4.8	4.4	4.7
ऊर्जा (किलोकैलोरी)	71	69	100	76
कैल्शियम (मिलीग्राम)	33	125	210	130
फॉस्फोरस (मिलीग्राम)	15	96	130	106
मैग्नीशियम (मिलीग्राम)	4	12	15	16
सोडियम (मिलीग्राम)	15	58	65	41
लौह लवण (मिलीग्राम)	0.15	0.10	0.2	0.05

पौष्टिक तत्व	मानव का दूध (100 ग्राम)	गाय का दूध (100 ग्राम)	भैंस का दूध (100 ग्राम)	बकरी का दूध (100 ग्राम)
ताँबा (मिलीग्राम)	0.04	0.03	0.02	0.04
आयोडीन (मिलीग्राम)	0.007	0.021	0.004	-
मैग्नीज (मिलीग्राम)	0.7	2	-	8
जिंक (मिलीग्राम)	0.53	0.38	-	-
विटामिन ए (I.U.)	160	158	200	120
विटामिन डी (I.U.)	1.4	2.0	-	2.3
विटामिन सी (मिलीग्राम)	4.0	2.0	2.5	2.0
थायमिन (मिलीग्राम)	0.017	0.04	0.05	0.05
राइबोफ्लेविन (मिलीग्राम)	0.04	0.18	0.10	0.12
नियासिन (मिलीग्राम)	0.17	0.08	0.28	0.12
पेन्टोथेनिक अम्ल	0.20	0.35	-	-
विटामिन बी 6	0.001	0.035	-	-
फोलिक अम्ल	1.3	5.6	3.3	0.7
बायोटिन	0.4	2.0	-	1.5
विटामिन बी 12	0.03	0.50	0.30	0.10

स्रोत: डॉ0 एम0 स्वामीनाथन - एडवांस्ड बुक ऑन फूड एण्ड न्यूट्रिशन।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरें।

a. सामान्य शिशु पाँच माह की आयु में अपने जन्म के वजन से .... हो जाता है।

b. जन्म के समय शिशु के शरीर में .... प्रतिशत जल होता है।

c. माता के स्तनों से प्रारम्भ में गाढ़ा पीला पदार्थ निकलता है, जिसे .... कहते हैं।

d. माता के दूध में लैक्टाबैसिलस जीवाणु विटामिन .... का निर्माण करते हैं।

e. .... द्वारा माता के गर्भाशय व स्तन की माँसपेशियों का संकुचन होता है।

2. शिशु की पोषण आवश्यकता का मूल्य बताएं।
   a. 0-6 माह की ऊर्जा आवश्यकताएं...............................
   b. 0-1 वर्ष की कैल्शियम आवश्यकताएं................................
   c. 0-1 वर्ष की विटामिन सी आवश्यकताएं.....................................
   d. 0-6 माह व 6-12 माह की थायमिन आवश्यकताएं...................................
   e. 0-1 वर्ष की फोलिक एसिड आवश्यकताएं.................................

3.6 शिशु का शैशवावस्था मे मध्य एवं अन्तिम महीनों में आहार

शैशवावस्था के प्रथम चार महीनों में शिशु का आहार स्तनपान या बोतल द्वारा मिलने वाला दूध ही होता है। यह शुरू के महीनों में सभी पौष्टिक तत्वों की पूर्ति कर देता है, लेकिन जैसे-जैसे शिशु की आयु बढ़ती है, शिशु के लिए कैलोरी तथा पौष्टिक तत्वों की मात्रा भी बढ़ती जाती है। यह बढ़ी हुई मात्रा केवल माता या बोतल के दूध से पूरी नहीं हो पाती है। इसकी पूर्ति के लिए माता के दूध के अतिरिक्त कुछ तरल तथा अर्द्ध ठोस पदार्थ देने आवश्यक हो जाते हैं। इसे अनुपूरक आहार भी कहते हैं। इन्हें देने के लिए माता का दूध छुड़ाना पड़ता है जिसे स्तनत्याग या वीनिंग कहते हैं।

3.6.1 वीनिंग

माता का दूध शिशु के लिए 3 से 5 माह तक ही काफी रहता है। इसके उपरान्त शिशु को अन्य सहायक भोज्य पदार्थ भी देने शुरू करने चाहिए। स्तनत्याग या वीनिंग से तात्पर्य है शिशु को माँ का दूध छुड़ाना व साथ ही मिश्रित आहार की थोड़ी-थोड़ी मात्रा देना अर्थात् स्तनपान को कम करते हुये शिशु को ऊपरी आहार देना।

शिशु का स्तनपान छुड़ाना माता के लिए आसान कार्य नहीं है। यह भी एक प्रकार की कला है जिसके लिए काफी मेहनत करनी पड़ती है। कुछ माताएं समय से पहले शिशु का स्तनपान छुड़ा देती हैं। इससे शिशु के कमजोर व बीमार ग्रस्त होने की प्रबल संभावना रहती है। इसी प्रकार अगर शिशु को एकदम स्तनपान कराना बन्द कर दिया जाये तो शिशु चिड़चिड़ा हो जाता है। शिशु माता का दूध एकदम से नहीं छोड़ सकता है, इसलिए माता को अपने दूध को कम करते हुये बोतल के दूध को देना चाहिए तथा बोतल के दूध की मात्रा को धीरे-धीरे बढ़ाते रहना चाहिए। इस अवस्था में माँ को भी दुग्धस्राव धीरे-धीरे कम होने लगता है। बोतल के दूध के साथ माता को अन्य तरल भोज्य पदार्थों को शिशु को खिलाना शुरू करना चाहिए जैसे फलों का रस, दाल का पानी आदि। इन भोज्य पदार्थों से न केवल शिशु को अतिरिक्त पोषण मिलता है, बल्कि उसकी पाचन शक्ति का भी विकास होता है।

3.6.2 अनुपूरक आहार

पाँच से छः महीने के शिशु के लिए एक ओर तो माता के दूध की मात्रा अपर्याप्त होने लगती है तथा दूसरी ओर शिशु की पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं में वृद्धि हो जाती है। जिस कारण शिशु को ऊपरी दूध तथा भोज्य पदार्थों की भी आवश्यकता होती है जिससे पूर्ण पोषण प्राप्त हो सके। अतः शिशु को माता के दूध अथवा ऊपरी दूध पिलाने पर जो

पोषण सम्बन्धी कमियाँ रह जाती हैं, उनको कम करने के लिए दूध के अतिरिक्त जो आहार शिशु को दिया जाता है उसे अनुपूरक आहार कहते हैं।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से अनुपूरक आहार को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है-

- तरल पूरक आहार
- अर्द्ध ठोस पूरक आहार
- ठोस पूरक आहार

1. तरल पूरक आहार- विटामिन सी एवं खनिज लवणों की पूर्ति हेतु शिशु को ताजे फलों का रस पिलाना चाहिए। मौसम के अनुसार शिशुओं को संतरा, मौसमी, अनार, सेब, अंगूर, नींबू आदि फलों का रस देना चाहिए। विटामिन सी की पूर्ति के लिए संतरे का रस देना उत्तम रहता है क्योंकि इसका स्वाद खट्टा-मीठा होता है, जिसके कारण शिशु इसे रुचिपूर्वक पी लेता है। विटामिन सी दाँतों एवं मसूढ़ों की पुष्टता एवं स्वास्थ्य के लिए अत्यावश्यक होता है। इसमें रोग-रोधक क्षमता भी होती है।

प्रारम्भ में खट्टे फलों के रस में बराबर का पानी मिलाकर नमक व शक्कर के साथ देना चाहिए। उम्र बढ़ने के साथ-साथ पानी की मात्रा कम करके रस की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। फलों के रस को गर्म नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से विटामिन सी नष्ट हो जाता है।

सब्जियों एवं दाल का सूप- फलों के साथ शिशु को हरी पत्तेदार सब्जियों (पालक, बथुआ, चौलाई), टमाटर, गाजर, लौकी, चुकन्दर, परवल आदि सब्जियों का सूप बनाकर पिलाना चाहिए। 5-6 माह के शिशु को सब्जियों का सूप दिया जा सकता है। टमाटर का सूप स्वादिष्ट होता है तथा शिशु इसे रुचिपूर्वक पी लेता है। अन्य सब्जियों के सूप को स्वादिष्ट बनाने के लिए उसमें टमाटर भी डाल देना चाहिए। प्रारम्भ में सूप कम मात्रा में देना चाहिए। जैसे-जैसे शिशु इसे पचाने लगे, इसकी मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। सब्जियों में खनिज लवण एवं विटामिन भरपूर मात्रा में होते हैं जिससे शिशु की पोषण सम्बन्धी दैनिक आवश्यकताएं भली प्रकार से पूर्ण हो जाती हैं।

6 माह के शिशु को मिश्रित दालों जैसे मूँग, मसूर, अरहर, चना आदि दालों का सूप भी दिया जाता है। दालों में प्रोटीन के साथ विटामिन बी भी होता है। यदि शिशु दालों के सूप के प्रति अरुचि दिखाये तो जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। इसको बनाने की विधि में परिवर्तन करके शिशु को खाने के प्रति रुचि बढ़ायें।

2. अर्द्ध ठोस पूरक आहार- 6 माह के पश्चात् शिशु अर्द्ध ठोस पूरक आहार पूरक आहार खाने तथा पचाने में सक्षम होता है। अर्द्ध ठोस आहार खिलाने से उसके पाचक अंगों में वृद्धि और विकास भी होता है। घुटी खिचड़ी, पतली खिचड़ी, दलिया, उबला आलू, मसला हुआ केला, सूजी की खीर, साबुदाने की खीर, मसला हुआ फल, मसली सब्जियाँ आदि अर्द्ध ठोस भोज्य पदार्थ शिशु को दिये जा सकते हैं। आजकल बाजार में कई प्रकार के 'बेबी फूड' उपलब्ध हैं जिसे तुरन्त तैयार करके शिशु को खिलाया जा सकता है जैसे सेरेलेक, फैरक्स आदि। इनसे कैलोरी, प्रोटीन, वसा, विटामिन एवं खनिज लवण प्राप्त होते हैं जो शिशु के शारीरिक वृद्धि एवं मानसिक विकास में सहायक होते हैं।

3. ठोस पूरक आहार- 7-8 माह के शिशु को ठोस आहार खिलाया जा सकता है। ठोस आहार दो प्रकार के होते हैं-

मसला हुआ ठोस आहार- उबले अण्डे का पीला भाग, लौकी, गाजर, दाल- चावल मसलकर, दूध में रोटी या ब्रैड मसलकर, उबली मसली सब्जियाँ, उबला सेब या फल आदि शिशु को खिलाया जा सकता है। प्रारम्भ में शिशु को सिर्फ 1 चम्मच ही ठोस आहार दें। बाद में इसकी मात्रा बढ़ायें। शिशु को एक बार में एक ही आहार दें। जब वह एक नये आहार को खाने के प्रति अभ्यस्त हो जाये तभी दूसरा नया आहार प्रारम्भ करें। 10-11 माह के शिशु को उबले अण्डे का पीला भाग, पका हुआ माँस, मछली आदि कुछ मात्रा में खिला सकते हैं।

बिना मसला ठोस आहार- 9-10 माह के शिशु को बिना मसला ठोस आहार खिलाया जा सकता है। विशेषकर जब शिशु के दाँत निकलने लगते हैं तो मसूढ़े फूल जाते हैं व उनमें खुजली होती है। ऐसी स्थिति में कड़े फल व सब्जियाँ शिशु को खाने को देना चाहिए जैसे गाजर, अमरूद, सेब, ताजा नारियल, चीकू, खीरा, ककड़ी आदि। इसे चबाने से शिशु के दाँतों का व्यायाम को जाता है व दाँत निकलने में आसानी होती है। बिस्कुट, मठरी, ब्रैड, पाव, पराँठा आदि 10-12 माह का शिशु खा सकता है। माता को यह ध्यान रखना चाहिए कि शिशु इन्हें ठीक से खाये वरना कई बार यह गलें में अटक सकते हैं। 1 वर्ष का शिशु घर का खाना खाने लगता है पर ध्यान रहे भोजन बिना मिर्च-मसाले का हो। थोड़ी मात्रा में घी या मक्खन का प्रयोग किया जा सकता है।

3.7 शिशु को अनुपूरक आहार देते समय ध्यान रखने योग्य बातें

- पूरक आहार प्रारम्भ में थोड़ी मात्रा में देना चाहिए। यदि शिशु इसे आसानी से पचा लेता है तब धीरे-धीरे इसकी मात्रा बढ़ानी चाहिए।
- आहार प्रतिदिन बदल-बदल कर देना चाहिए। एक ही प्रकार का आहार खिलाने से शिशु का मन उस आहार के प्रति ऊब जाता है।
- शिशु के पूरक आहार में एक साथ, एक समय में कई नये आहार नहीं सम्मिलित करने चाहिए।
- जब शिशु भूखा हो तभी नया आहार खिलाना चाहिए अन्यथा वह उसे खाने में रुचि नहीं लेगा।
- आहार में तरल पदार्थों तथा जल का समावेश पर्याप्त मात्रा में करना चाहिए जिससे पाचन आसान हो व कब्ज न हो।
- दो आहारों के मध्य फलों का रस, सब्जियों का सूप व पानी शामिल करना चाहिए।
- शिशु को आरामदायक एवं शान्त वातावरण में भोजन खिलाना चाहिए।
- शिशु के आहार में अधिक मिर्च-मसाले, घी और तेल का प्रयोग नहीं करना चाहिए। थोड़ी मात्रा में स्वादानुसार नमक व शक्कर सम्मिलित किया जा सकता है।
- बासी भोजन शिशु को कदापि नहीं खिलाना चाहिए। हमेशा ताजा भोजन खिलायें।

- यदि किसी भोजन को शिशु पचा नहीं पाता है तो वह आहार कुछ दिनों तक नहीं खिलाना चाहिए। कुछ दिनों बाद उस आहार को प्रारम्भ करें व प्रारम्भ में बहुत ही कम मात्रा में खिलायें।
- अलग-अलग खाद्य पदार्थों की तुलना में मिश्रित भोजन को अधिक सम्मिलित करना चाहिए जैसे- खिचड़ी, दूध-दलिया, मिश्रित सब्जियाँ, खीर, घुटा हुआ दाल -चावल, दूध-अण्डा, इडली आदि।
- यदि शिशु किसी विशेष आहार के प्रति अरुचि दिखाये तो उसे कुछ समय के लिए बन्द करके उसके स्थान पर समान पौष्टिक वाला व्यन्जन खिलायें अर्थात् उसका रूप परिवर्तित कर दें।
- शिशु को मीठा एवं नमकीन दोनों प्रकार का आहार खिलाना चाहिए ताकि वह सभी प्रकार के भोजन खाने का अभ्यस्त हो जाये।
- यदि शिशु भोजन के प्रति अरुचि दिखाता है और मुँह से भोजन बाहर निकालता है तो इसका अर्थ यह नहीं कि उसे भोजन पसन्द नहीं आया। कई बार जीभ का प्रयोग सही से न कर पाने के कारण भी ऐसा होता है।
- बाजार में उपलब्ध 'बेबी फूड' के स्थान पर घर का बना भोजन खिलाएं। यह स्वास्थ्यवर्धक, स्वादिष्ट व हानिरहित होता है।
- शिशु को अधिक खाने के लिए बाध्य नहीं करना चाहिए। वह जितना स्वेच्छा से ले उतना ही देना चाहिए।

तालिका 3.4 शिशु का पूरक आहार

शिशु की उम्र	**पूरक आहार का प्रकार**	**खाद्य**	**खाद्य का रूप**	**मात्रा**
4-6 माह	तरल तरल	फलों का रस हरी पत्तेदार सब्जियाँ	फलों के रस में थोड़ी चीनी दूध में सब्जियों का सूप	1 से 2 चम्मच से शुरूआत करें व इसे 30-50 मिली लीटर तक बढ़ाएं। 1 से 2 चम्मच से शुरूआत करें व यह मात्रा 50 मिली लीटर तक बढ़ाएं।
5-6 माह	अर्द्धठोस	अनाज	पानी या दूध के साथ पके हुए	लगभग 2 चम्मच अनाज 1 कप पानी या दूध के साथ पकाएं जैसे सूजी की खीर

				आदि।
6-7 माह	अर्द्धठोस अर्द्धठोस	अण्डे का पीला भाग स्टार्च वाले फल व सब्जियां	आंशिक उबला अण्डे का पीला भाग उबला, मसला आलू, मक्खन या दूध के साथ, दूध में मसला केला	1/2 चम्मच से शुरू करें व इसे बढ़ाकर पूरा पीला भाग दें। कम मात्रा से शुरूआत करें व 40-50 ग्राम तक मात्रा बढ़ाएं।
7-8 माह	अर्द्धठोस	सब्जियाँ व दालें	अच्छी तरह पकी हुयी सब्जियाँ व पतली खिचड़ी	कम मात्रा से शुरू करें व शिशु की पाचन शक्ति के अनुसार मात्रा बढ़ाएं।
10-12 माह	अर्द्धठोस ठोस	पूरा अण्डा जिसमें अण्डे की सफेदी भी हो माँस, सब्जियाँ, फल, अनाज	मुलायम उबला अण्डा, हाफ बॉइल अण्डा अच्छी तरह से पकाया या बारीक चूरा किया हुआ	एक अण्डा कम मात्रा में शुरू करें व शिशु की पाचन शक्ति के अनुसार बढ़ायें

स्रोतः टेक्स्टबुक ऑफ न्यूट्रीशन एण्ड डाइटेटिक्स, कुमुद खन्ना।

अभ्यास प्रश्न 2

1. सही अथवा गलत बताएं।
   a. शिशु का स्तनपान छुड़ाना वीनिंग कहलाता है।
   b. फलों का रस व सब्जियों का सूप अर्द्ध ठोस पूरक आहार के अन्तर्गत आता है।
   c. 3 माह के शिशु को पतली खिचड़ी दी जा सकती है।

d. शिशु को मिर्च- मसाले युक्त भोजन देना उचित होता है।

e. दाँत निकलने के दौरान शिशु को ठोस आहार चबाने को देने चाहिए।

2. निम्नलिखित भोज्य पदार्थ किस प्रकार का अनुपूरक आहार है, नाम बताएं:

a. उबला आलू

b. फलों का रस

c. मसले हुए दाल चावल

d. दालों का सूप

e. बिस्कुट

3.8 सारांश

शैशवावस्था वृद्धि एवं विकास के दृष्टिकोण से जीवन की बहुत महत्वपूर्ण अवस्था होती है। इसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं जैसे आकार, भार, अनुपात आदि। यह परिवर्तन अति तीव्र गति से होते हैं। अतः शैशवावस्था में उचित पोषण अत्यावश्यक है। शैशवावस्था दो भागों (0-6 माह व 6-12 माह) में बाँटी गयी है। दोनों अवस्थाओं में शिशु की पोषण आवश्यताएं भिन्न होती हैं। प्रारम्भ में नवजात शिशु का सम्पूर्ण आहार माता का दूध ही होता है। यह शिशु के लिए अमृत समान माना गया है। माता के दूध की सुलभता न होने पर शिशु को पशु जैसे गाय, भैंस व बकरी का दूध भी दिया जा सकता है। पशु के दूध की जगह बाजार में उपलब्ध फार्मूला दूध भी दिया जा सकता है। 5-6 माह के पश्चात् शिशु की पोषण आवश्यकताएं बढ़ जाती हैं किन्तु माता का दुग्ध उत्पादन घट जाता है अतः इस अवस्था में स्तनत्याग (वीनिंग) की प्रक्रिया द्वारा शिशु को अनुपूरक आहार देना शुरू किया जाता है। अनुपूरक आहार द्वारा शिशु सभी खाद्य पदार्थों को खाना सीखता है। इससे उसकी बढ़ती हुई पोषण आवश्यकताएं भी पूर्ण हो जाती हैं व पाचन प्रक्रिया का भी विकास होता है।

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

- **रिकेट्स:** कैल्शियम की कमी से उत्पन्न रोग जिसमें हड्डियाँ मुलायम हो जाती हैं व उनके सामर्थ्य में कमी आ जाती है।
- **रतौंधी:** विटामिन ए की कमी से होने वाला रोग जिसमें कम रोशनी में ठीक तरह से दिखाई नहीं देता है।

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरें।

a. दोगुना

b. 75

c. कोलोस्ट्रम

d. विटामिन बी

e. स्तनपान

2. शिशु की पोषण आवश्यकता का मूल्य बताएं।

a. 90 किलोकैलोरी/प्रतिकिलो/प्रतिदिन

b. 500 मिलीग्राम

c. 25 मिलीग्राम

d. 0-6 माह- 0.2 मिलीग्राम/प्रतिदिन व 6-12 माह- 0.3 मिलीग्राम/प्रतिदिन

e. 25 माइक्रोग्राम

अभ्यास प्रश्न 2

1. सही अथवा गलत बताएं।

a. सही

b. गलत

c. गलत

d. गलत

e. सही

2. निम्नलिखित भोज्य पदार्थ किस प्रकार का अनुपूरक आहार है, नाम बताएं:

a. उबला आलू- अर्द्ध ठोस पूरक आहार

b. फलों का रस- तरल पूरक आहार

c. मसले हुए दाल चावल- ठोस पूरक आहार

d. दालों का सूप- तरल पूरक आहार

e. बिस्कुट- ठोस पूरक आहार

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. खन्ना कुमुद: टेक्स्टबुक ऑफ न्यूट्रीशन एन्ड डाइटेटिक्स, ऐलीट पब्लीशिंग।
2. श्रीलक्ष्मी बी0: डाइटेटिक्स, न्यू एज इन्टरनेशनल पब्लिकेशन (पाँचवा संस्करण)।
3. स्वामिनाथन एम0: फूड एण्ड न्यूट्रीशन, बैपको पब्लिकेशन।

4. बक्शी बी0के0: आहार एवं पोषण के मूल सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
5. एन्शिया एफ0 पी0 एण्ड फिलिप्स एब्राहम: क्लीनिकल न्यूट्रीशन एण्ड डाइटेटिक्स ऑक्सफोर्ड पब्लिकेशन (चौथा संस्करण)।

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. शैशवावस्था की विशेषताएं बताइए।
2. शैशवावस्था में पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता पर प्रकाश डालें।
3. शैशवावस्था के प्रारम्भिक महीनों के आहार के बारे में टिप्पणी कीजिए।
4. माता के दूध का संगठन व स्तनपान के लाभ लिखें।
5. वीनिंग क्या होती है? अनुपूरक आहार के प्रकार व इसे देते समय सावधानियाँ बताएं।

इकाई 4: शालापूर्व तथा विद्यालयी आयु में पोषण

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 शालापूर्व बालक
    4.3.1 विशेषताएं व शारीरिक परिवर्तन
    4.3.2 पोषक तत्वों की मांग
    4.3.3 पोषण संबंधी समस्याएं
    4.3.4 भोजन संबंधी आदतें
4.4 विद्यालयी बालक
    4.4.1 विशेषताएं व शारीरिक परिवर्तन
    4.4.2 पोषक तत्वों की मांग
    4.4.3 पोषण संबंधी समस्याएं
    4.4.4 भोजन संबंधी आदतें
4.5 सारांश
4.6 पारिभाषिक शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत अध्याय में आप शालापूर्व बालकों एवं विद्यालयी बालकों की पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं के बारे में जानेंगे। 1-5 वर्ष के बालकों को शालापूर्व बालकों की श्रेणी में रखा जाता है जिसे पूर्व बाल्यावस्था या प्रारम्भिक बाल्यावस्था के नाम से भी जाना जाता है। कुछ विशेषज्ञों के द्वारा 3-6 वर्ष की अवस्था को शालापूर्व अवस्था में लिया जाता है। इसलिए इस अध्याय में हमने 1-6 वर्ष के बालकों को शालापूर्व अवस्था में लिया है, जबकि 6-12 वर्ष के बालकों को विद्यालयी बालकों की श्रेणी में लिया है। इस अवस्था को उत्तर बाल्यावस्था भी कहा जाता है। शालापूर्व अवस्था में बालक नर्सरी कक्षा में पाठशाला पढ़ने जाता है या घर पर ही माता पिता से खेल के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करता है, किन्तु विद्यालयी अवस्था में बालक औपचारिक रूप से शिक्षा ग्रहण करने लगता है।

शालापूर्व अवस्था में उत्तम एवं पौष्टिक आहार की बहुत अहम भूमिका है क्योंकि इस आयु के बच्चे अत्यधिक भेद्य अवस्था में होते हैं। निम्न स्तर के पोषक आहार से वे शीघ्र ही प्रभावित हो जाते हैं जिससे उनका शारीरिक, मानसिक,

बौद्धिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास बाधित हो जाता है। इस आयु के बच्चों में संक्रामक रोगों से लड़ने की क्षमता का भी अभाव होता है जिसके कारण वे शीघ्र ही बीमार पड़ जाते हैं। 1-6 वर्ष की अवस्था में लसिका, रक्त वाहिनियों एवं नाड़ी तन्तुओं का विकास तीव्र गति से होता है। केन्द्रीय नाड़ी संस्थान एवं मस्तिष्क के नाड़ी तन्तुओं का विकास भी इसी आयु में होता है। इस आयु में यदि पूर्ण पौष्टिक आहार नहीं मिलता है तब मस्तिष्क तथा नाड़ी तन्तुओं की कोशिकाओं का निर्माण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है तथा दोष पूर्ण तन्तुओं का निर्माण होता है जिससे इनकी रचना एवं कार्यों में विकार एवं विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिसका प्रभाव बालक के मानसिक एवं बौद्धिक विकास पर पड़ता है। विद्यालयी अवस्था के दौरान बालकों की विकास दर धीमी एवं नियमित होती है परन्तु जो कुछ विकास पूर्व अवस्था में हो जाता है उसे एक स्थायी रूप व आकार मिल जाता है। अत: इस अवस्था में शारीरिक एवं मानसिक क्षमताएं परिपक्व होने लगती हैं। इसलिए बालकों की इस आयु को "मिथ्या परिपक्वता की अवस्था" (Stage of pseudo maturity) भी कहते हैं। बच्चों के समग्र विकास के लिए पौष्टिक एवं उच्च प्रोटीन युक्त आहार खिलाना नितान्त आवश्यक होता है। इस अध्याय में आप शालापूर्व एवं विद्यालयी बालकों में होने वाले शारीरिक परिवर्तन, पोषक तत्वों की माँग एवं उनकी पोषण समस्याओं के बारे में जानेंगे।

4. 2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत शिक्षार्थी;

- शालापूर्व एवं विद्यालयी बालकों की विशेषताएं एवं उनमें होने वाले शारीरिक परिवर्तनों के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- शालापूर्व एवं विद्यालयी बालकों में विभिन्न पोषक तत्वों की माँगों के विषय में जानेंगे;
- शालापूर्व बालकों में कुपोषण एवं बचाव के उपाय के बारे में जानकारी ले पाएंगे;
- विद्यालयी बालकों में भोजन की समस्याएं एवं उनके निदान के बारे में जान पाएंगे; तथा
- शालापूर्व एवं विद्यालयी बालकों में भोजन संबंधी अच्छी आदतों के निर्माण सम्बंधी जानकारी ले पाएंगे।

4.3 शालापूर्व बालक

4.3.1 विशेषताएं एवं शारीरिक परिवर्तन

शैशवावस्था के बाद इसी अवस्था में शिशु का शारीरिक एवं मानसिक विकास तीव्र गति से होता है। शारीरिक एवं मानसिक विकास तीव्र होने के कारण बालक की क्रियाशीलता में वृद्धि हो जाती है। फलत: वह अपनी सभी क्रियाओं को स्वतंत्रतापूर्वक स्वयं ही करने का प्रयास करता है। इस अवस्था में बालक 2-2.5 किलो वजन में तथा 6-7 से0मी00 लम्बाई में प्रति वर्ष बढ़ता है। इस आयु का बालक बहुत ही जिज्ञासु व नटखट प्रकृति का होता है इसलिए वह अपने आसपास के वातावरण को जानने के प्रयास में कभी-कभी दुर्घटना का भी शिकार हो जाता है। इस आयु के बालक अपनी नटखट हरकतों से सभी के आकर्षण का केन्द्र बने रहते हैं। वह नर्सरी या किन्डर-गार्टन स्कूलों में जाने

लगते हैं जहाँ उन्हें खेल खेल में निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कार्य करना सिखाया जाता है व विद्यालय जाने वाली अवस्था के लिए तैयार किया जाता है। सुपोषित बालकों के वजन एवं लम्बाई में सतत् एवं नियमित वृद्धि होती रहती है। वजन एवं लम्बाई के आधार पर शारीरिक वृद्धि को नापा जाता है। वातावरण के साथ समायोजन की क्षमता, मांसपेशियों के निर्माण, उनकी दृढ़ता एवं शारीरिक शक्ति तथा मानसिक स्वास्थ्य के लक्षणों द्वारा भी बच्चे की गति को जाना जा सकता है। वैज्ञानिक शोधों के परिणाम बताते हैं कि 4 वर्ष की आयु तक 90 प्रतिशत केन्द्रीय नाड़ी संस्थान एवं मस्तिष्क की तन्तुएं पूर्ण आकार एवं रूप ग्रहण कर लेते हैं। मस्तिष्क के समग्र विकास के लिए प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज लवण अति आवश्यक होते हैं। आहार में जरूरी पोषक तत्वों की कमी से बालक के मस्तिष्क पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। बच्चों के समग्र विकास के लिए पौष्टिक आहार बहुत ही आवश्यक है और बच्चों के समग्र विकास को जानने के लिए निम्नांकित लक्षणों का नियमित निरीक्षण करते रहना चाहिए:

1. वजन एवं लम्बाई: विश्व स्वास्थ्य संगठन (2006) द्वारा दी गई शालापूर्व बालक एवं बालिकाओं की लम्बाई एवं वजन तालिका 4.1 में दर्शाया गया है। आयु के अनुसार वजन में वृद्धि होनी चाहिए। 1-2 वर्ष के बालकों में 2.6 किलो, 2-3 वर्ष के बालकों में 2.1 किलो, 3-4 तथा 4-5 वर्ष के बालकों में 2.0 किलो और 5-6 वर्ष के बालकों में 1.8 किलो वजन में बढ़ोत्तरी होनी चाहिए। जबकि बालिकाओं में 1-2 वर्ष में 2.6 किलो, 2-3 वर्ष में 2.4 किलो, 3-4 वर्ष में 2.2 किलो, 4-5 वर्ष में 2.1 किलो और 5-6 वर्ष में 2.0 किलो की बढ़ोत्तरी वजन में होनी चाहिए।

वजन की भाँति ही शिशु की लम्बाई में निरन्तर वृद्धि होनी चाहिए। हालांकि शिशु की लम्बाई आनुवांशिकता पर भी निर्भर करती है। परन्तु खान पान से शिशु की लम्बाई में निरन्तर वृद्धि होती है। बालकों में 1-2 वर्ष में 12.1 से0मी0, 2-3 वर्ष में 8.3 से0मी0, 3-4 वर्ष में 7.2 से0मी0, 4-5 वर्ष में 6.7 से0मी0 और 5-6 वर्ष में 6 से0मी0 लम्बाई में वृद्धि होनी चाहिए जबकि बालिकाओं में 1-2 वर्ष में 12.4 से0मी0, 2-3 वर्ष में 8.7 से0मी0, 3-4 वर्ष में 7.6 से0मी0, 4-5 वर्ष में 6.7 से0मी0 और 5-6 वर्ष में 5.7 से0मी0 की वृद्धि लम्बाई में होनी चाहिए।

तालिका 4.1: शालापूर्व बालकों की औसत लम्बाई एवं वजन (WHO, 2006)

आयु (वर्षों में)	लम्बाई (से.मी.)		वजन (कि.ग्रा.)	
	बालक	बालिकाएं	बालक	बालिकाएं
1	75.7	74.0	9.6	8.9
2	87.8	86.4	12.2	11.5
3	96.1	95.1	14.3	13.9
4	103.3	102.7	16.3	16.1
5	110.0	109.4	18.3	18.2

6	116.0	115.1	20.5	20.2

2. बच्चों की मांसपेशियाँ सख्त, गठीली एवं मजबूत होनी चाहिए। बच्चों की छाती बाहर की तरफ, पेट अन्दर की ओर, शरीर सीधा तथा हाथ पैर सीधे होने चाहिए जिससे बच्चे की संस्थिति सही दिखे।

3. बच्चों के दाँत सीधे, चमकदार, मजबूत एवं सामान्य आकृति के होने चाहिए। उनके मसूढ़े सख्त, मजबूत एवं गुलाबी रंग के होने चाहिए। मसूढ़ों से खून नहीं आना चाहिए।

4. बच्चों की त्वचा चिकनी, चमकदार, मुलायम, आकर्षक एवं स्वस्थ होनी चाहिए। त्वचा के नीचे वसा का जमाव होना चाहिए किन्तु इन पर फोड़े, फुंसियाँ, दाग, धब्बे आदि नहीं होनी चाहिए।

5. बच्चों के बाल घने, काले, चमकदार, मुलायम एवं जीवंत होने चाहिए। उनके सिर पर दो मुँहे बाल नहीं होने चाहिए और न ही बाल झड़ने चाहिए।

6. बच्चे की पाचन क्रिया सही हो अर्थात बच्चे को खुलकर भूख लगती हो, कब्ज नहीं रहती हो तथा वह नियमित रूप से मल विसर्जन करता हो।

7. बच्चा चिड़चिड़ा, क्रोधी, आलसी एवं जल्दी थकने वाला न हो। वह सन्तुष्ट, प्रसन्न, चुस्त एवं तृप्त दिखे। वह दूसरे के साथ अच्छा व्यवहार करे और अपने व्यवहार पर नियंत्रण रखने की क्षमता रखता हो।

8. बच्चा रात को गहरी निद्रा में सोये, थकान से शीघ्र मुक्त हो तथा उसमें सहनशीलता हो।

9. बच्चा फुर्तीला एवं चंचल हो तथा उसमें चीजों को याद रखने की क्षमता हो।

10. बच्चा हँसता, मुस्कुराता, प्रसन्नचित, उत्साहित, सजग एवं सक्रिय हो। वह अपनी आयु के अनुसार व्यवहार करे तथा सभी कार्यकलापों में रुचि ले।

4.3.2 पोषक तत्वों की माँग

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में गलत आहार पद्धतियाँ सामाजिक आर्थिक विकास के लिए एक बड़ा खतरा हैं। बच्चों को पोषक तत्वों को उनकी जरूरत के अनुसार देने से उनकी बढ़त अच्छी होती है, दिमाग का विकास होता है और उन्हें बीमारियों से लड़ने की शक्ति मिलती है। बच्चों में सही पोषण का असर उनके जीवन पर दिखाई देता है। शालापूर्व बालकों की पोषक तत्वों की दैनिक प्रस्तावित मात्रा आई0 सी0 एम0 आर0 द्वारा निर्धारित की गई है जो कि तालिका 4.2 में दर्शाई गई है।

तालिका 4.2 शालापूर्व बालकों के लिए पोषक तत्वों की दैनिक प्रस्तावित मात्रा (ICMR, 2010)

पोषक तत्व	1 – 3 वर्ष	4 – 6 वर्ष
ऊर्जा (किलो कैलोरी)	1060	1350

प्रोटीन (ग्राम)	16.7	20.1
वसा (ग्राम)	27.0	25.0
कैल्शियम (मि0ग्रा0)	600	600
लौह तत्व (मि0ग्रा0)	09	13
विटामिन 'ए' (माइक्रो ग्राम)	400	400
थायमिन (मि0 ग्रा0)	0.5	0.7
राइबोफ्लेविन (मि0ग्रा0)	0.6	0.8
नियासिन (मि0ग्रा0)	8	11
पाइरीडॉक्सिन (मि0ग्रा0)	0.9	0.9
विटामिन सी (मि0ग्रा0)	40	40
फोलिक एसिड (माइक्रो ग्राम)	80	100
विटामिन B_{12} (माइक्रो ग्राम)	0.2-1.0	0.2-1.0
मैग्नीशियम (मि0ग्रा0)	50	70
जिंक (मि0ग्रा0)	5	7

ऊर्जा: शालापूर्व बच्चे सक्रिय और ऊर्जावान होते हैं। अपनी वृद्धि और विकास तथा अपनी दैनिक गतिविधियों के लिए उन्हें पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। 1-3 वर्ष के बच्चों को प्रतिदिन 1060 किलो कैलोरी की आवश्यकता होती है जबकि 4-5 वर्ष के बच्चों के लिए यह माँग बढ़कर 1350 किलो कैलोरी हो जाती है। चीनी, तेल, गुड़, घी आदि ऊर्जा के संकेद्रित स्रोत हैं अत: इन्हें बच्चों के आहार में सम्मिलित कर ऊर्जा में भरपूर वृद्धि की जा सकती है। किन्तु इन खाद्य उत्पादों को आवश्यकता से अधिक आहार में देने से बच्चों में मोटापे की स्थिति हो सकती है जो आज के युग में एक बड़ी समस्या के रूप में सामने आ रही है। बच्चों में मोटापा जीवनभर के लिए खतरनाक विकार भी उत्पन्न कर सकता है जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, यौवन का जल्दी आना, बालिकाओं में मासिक धर्म का जल्दी शुरू होना, आहार विकार जैसे एनोरेस्क्सिया और बुलीमिया, अस्थमा और श्वसन से संबंधित अन्य समस्याएं आदि। अध्ययनों से पता चला है कि अधिक वजन वाले बच्चों में वयस्क होने पर भी अधिक वजन बने रहने की संभावना अधिक होती है।

प्रोटीन: शालापूर्व बच्चों में शारीरिक वृद्धि एवं मानसिक विकास तीव्रता से होता है। नई कोशिकाओं एवं तन्तुओं के निर्माण की प्रक्रिया चलती रहती है। इस आयु में अस्थियाँ, दाँतों, माँसपेशियाँ, ऊतक आदि की निर्माण प्रक्रिया शीघ्रता से होती है। चार वर्ष की आयु तक 90 प्रतिशत मस्तिष्क तथा केन्द्रीय नाड़ी संस्थान के तन्तु पूर्ण रूप ले लेते हैं। अत: इस आयु में प्रोटीन की दैनिक माँग बढ़ जाती है। बच्चों के आहार में पूर्ण प्रोटीन के स्रोत, जिसमें सभी अमीनो अम्ल विद्यमान हों, सम्मिलित करने चाहिए। प्राणिज स्रोत से प्राप्त भोज्य पदार्थों में जैसे दूध, अण्डा, माँस, मछली आदि उच्च कोटि के प्रोटीन विद्यमान होते हैं। अत: इन्हें आहार में अवश्य ही सम्मिलित करना चाहिए। जो बच्चे शाकाहारी है, उन्हें पर्याप्त मात्रा में दूध पिलाना चाहिए।

वसा: वसा ऊर्जा का अच्छा स्रोत होने के साथ-साथ वसा घुलनशील विटामिनों के अवशोषण के लिए भी जरूरी है। घी, तेल, मक्खन आदि के रूप में वसा को बच्चों के आहार में दिया जा सकता है किन्तु यह ध्यान रहे कि आहार में जरूरत से ज्यादा वसा मोटापे का कारण बन सकती है।

कैल्शियम: अस्थियों एवं दाँतों के निर्माण एवं विकास के लिए कैल्शियम अत्यावश्यक होता है। नवजात शिशु के शरीर मे उपस्थियाँ ही अधिक होती हैं। आयु बढ़ने के साथ-साथ ये उपास्थियाँ अस्थियों में परिवर्तित होने लगती हैं। परन्तु इसके लिए कैल्शियम अत्यावश्यक होता है। कैल्शियम अस्थियों को मजबूती, दृढ़ता एवं परिपक्वता प्रदान करता है। दूध कैल्शियम का मुख्य स्रोत है इसलिए इस आयु के बच्चों को दूध एवं दूध से बने व्यंजन पर्याप्त मात्रा में खिलाने चाहिए।

लौह लवण: लौह तत्व की कमी से रक्ताल्पता होने का खतरा रहता है। अत: बालकों के आहार में पर्याप्त मात्रा में लौह तत्व विद्यमान होना चाहिए। लौह तत्व की पूर्ति हेतु बच्चों के आहार में भरपूर मात्रा में पालक, बथुआ व अन्य हरी पत्तेदार सब्जियाँ, यकृत ,माँस, अंडा आदि सम्मिलित करने चाहिए।

विटामिन ए: यदि इस आयु के बच्चों के आहार में विटामिन 'ए' की कमी होती है तो इसका असर उनकी आँखों पर पड़ता है जिससे पहले वो रतौंधी के शिकार होते हैं और बाद में पूर्ण अंधता के भी शिकार हो जाते हैं। विटामिन 'ए' की पूर्ति के लिए बच्चों को दूध, दूध से बने व्यंजन, पनीर, मक्खन, पीले फल एवं हरी पत्तेदार सब्जियों को खिलाना चाहिए। इसके अलावा गाजर विटामिन 'ए' का सबसे सस्ता एवं अच्छा स्रोत है। अत: इसे अवश्य ही बच्चों के आहार में सम्मिलित करना चाहिए।

विटामिन 'बी' समूह: थायमिन, राइबोफ्लेविन और नियासिन की दैनिक आवश्यकता बच्चों की आवश्यक कैलोरी की माँग पर निर्भर करती है। बच्चों को बेरी बेरी रोग से बचाव के लिए थायमिन बहुत ही जरूरी है। बेरी बेरी रोग इस आयु के बच्चों के लिए जानलेवा भी हो सकता है। थायमिन की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण अनाज, चोकर सहित आटा, छिल्केयुक्त दाल आदि का प्रयोग बच्चों के भोजन के अवश्य करना चाहिए। इसके अलावा खमीरीयुक्त भोजन जैसे इडली, डोसा, ढोकला आदि भी थायमिन के अच्छे स्रोत हैं।

बच्चों के आहार में राइबोफ्लेविन की कमी से होठों के दोनों किनारे फट जाते हैं और होठों का रंग बैंगनी रंग का हो जाता है। राइबोफ्लेविन की पूर्ति हेतु आहार में अंकुरित अनाज, चोकर सहित आटा, सूखा खमीर व हरी पत्तेदार सब्जियों को अवश्य ही आहार में सम्मिलित करना चाहिए।

नियासिन की कमी से बच्चों में पेलाग्रा नामक रोग होने का खतरा होता है जिससे उनकी मृत्यु भी हो सकती है। पेलाग्रा रोग 3 'D' disease के नाम से जाना जाता है जिसका अर्थ होता है; Diarrhoea (अतिसार), Dermatitis (चर्मरोग) एवं Dementia (पागलपन)। नियासिन की पूर्ति हेतु बच्चों को मूंगफली, यकृत , माँस, मछली और खमीर युक्त भोजन जैसे इडली, डोसा, ढोकला आदि खिलाना चाहिए।

बच्चों के उत्तम स्वास्थ्य के लिए पाइरीडॉक्सिन, विटामिन बी$_{12}$ और फोलिक अम्ल भी बहुत जरूरी है। अत: बच्चों का आहार नियोजन करते समय इनकी आवश्यकता का भी ध्यान रखना चाहिए। पाइरीडॉक्सिन साबुत अनाज, चोकर युक्त आटा आदि में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहता है जबकि यकृत, माँस, मछली, दूध, पनीर, अंडा आदि विटामिन बी$_{12}$ के अच्छे स्रोत हैं।

विटामिन सी: विटामिन सी बच्चों में रोग प्रतिरोधक क्षमता को विकसित करता है जिसके कारण बच्चे जल्दी बीमार नहीं पड़ते। यह दाँतों, मसूढ़ों एवं रक्तवाहिनियों को स्वस्थ रखता है। शरीर में लौह लवण के अवशोषण के लिए भी विटामिन सी नितान्त आवश्यक है। आहार में विटामिन सी की कमी से बच्चों में स्कर्वी रोग होने का खतरा हो जाता है। आँवला, अमरूद, संतरा, मौसम्बी, नींबू एवं अन्य खट्टे फल विटामिन सी के अच्छे स्रोत हैं। अत: इन्हें बच्चों को अवश्य खिलाना चाहिए।

मैग्नीशियम: मैग्नीशियम एक खनिज लवण है जो विभिन्न प्रकार की चयापचय प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप से शामिल होता है। यह हड्डी के ऊतकों के निर्माण के लिए आवश्यक है क्योंकि यह कैल्शियम के अवशोषण में सुधार करता है। मैग्नीशियम की कमी होने के कारण बच्चा थका हुआ सा महसूस करता है। उसके मूड में अचानक परिवर्तन होता है, बिना किसी कारण अवसाद का शिकार हो जाता है। बच्चे की त्वचा शुष्क हो जाती है, नाखून आसानी से टूट जाते हैं, बाल झड़ने लगते हैं। बच्चों में मैग्नीशियम की कमी से बचने के लिए उनके भोजन में गेहूँ के बीजांकुर, सोयाबीन, कुटु, दलिया, चावल, सेम आदि सम्मिलित करने चाहिए।

जिंक: बच्चों में जिंक की कमी होने से दस्त, निमोनिया, मलेरिया होने का खतरा बढ़ जाता है क्योंकि जिंक की कमी से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है, शरीर की वृद्धि कम हो जाती है एवं बच्चे कुपोषित हो जाते हैं। दस्त से पीड़ित बच्चों को जिंक देने से दस्त जल्दी ठीक हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।
   a. शालापूर्व बालक का एक वर्ष में .... किलो वजन बढ़ता है।

b. 4 वर्ष की आयु तक बच्चों में .... प्रतिशत केन्द्रीय नाड़ी संस्थान एवं मस्तिष्क के तन्तु पूर्ण आकार एवं यप ग्रहण कर लेती हैं।
c. 1-5 वर्ष की आयु के बच्चों को आहार में .... मि0ग्रा0 कैल्शियम प्रतिदिन देना चाहिए।
d. बच्चों में विटामिन 'ए' की कमी से .... रोग होता है।
e. आई0सी0एम0आर0 द्वारा 1-3 वर्ष के बच्चों के लिए .... मि0ग्रा0 लौह लवण की दैनिक मात्रा प्रस्तावित की गई है।

4.3.3 पोषण संबंधी समस्याएं

भारत जैसे विकासशील देशों में शालापूर्व बच्चों में कुपोषण बहुत अधिक व्याप्त है। इसका मुख्य कारण पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक आहार नहीं मिल पाना है। साथ ही इनका आहार गुणवत्ता एवं गुणात्मकता दोनों में कम होता है। फलत: बच्चे अपेक्षित लम्बाई एवं वजन नहीं प्राप्त कर पाते। भारतीय शालापूर्व बच्चों में निम्न पोषण संबंधी समस्याएं पाई जाती हैं:

1. विटामिन 'ए' हीनता के रोग: इस आयु के बालक विटामिन 'ए' हीनता के रोगों से ग्रस्त रहते हैं। बालक को रतौंधी रोग हो जाता है जिसमें वह कम प्रकाश या रात के समय देख नहीं पाता। यदि शुरूआत में इसका उपचार नहीं किया जाता तो बालक अंधा भी हो सकता है। गरीब परिवार के बच्चों में यह रोग अधिक देखने को मिलता है किन्तु कई बार सम्पन्न परिवारों के बच्चों में यह रोग अज्ञानता, अंधविश्वास, गलत पाक विधि एवं संक्रमण के कारण भी देखने को मिलता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (1963) , एम0 लॉरेन (1966) तथा जेलिफ (1966) ने सर्वेक्षणों से यह निष्कर्ष निकाला है कि:

- 1 वर्ष के बालकों के यकृत में विटामिन 'ए' को संग्रह करने की क्षमता बहुत अधिक नहीं होती, इसलिए वे विटामिन 'ए' हीनता के जल्दी शिकार हो जाते हैं।
- 1 वर्ष के बालकों को स्तनपान छुड़ाने के पश्चात यदि विटामिन 'ए' से पूर्ण आहार नहीं दिया जाता तो भी वो विटामिन 'ए' हीनता के जल्दी शिकार हो जाते हैं।
- यदि बालक सिर्फ माँ के दूध पर आश्रित है और माँ के दूध में विटामिन 'ए' की कमी है।
- स्तनपान से वंचित बालकों में प्रोटीन कैलोरी कुपोषण हो जाता है जिसके कारण उन्हें विटामिन 'ए' की कमी हो जाती है।

- 2-3 वर्ष के बालकों में जब विटामिन 'ए' की न्यूनता से संबंधित लक्षण जैसे कैरोटोमलेशिया, जेरोफथैलमिया तथा बीटॉट स्पॉट के लक्षण दिखाई देते हैं और उनका उपचार नहीं किया जाता तो यह रोग बढ़ने पर बालक की आँखों के कॉर्निया व रेटिना को नष्ट कर देता है और अंतत: बालक अंधा हो जाता है।

2. प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण: अधिकांश विकसित एवं विकासशील देशों में प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण एक गंभीर समस्या है। शालापूर्व बालकों में यह रोग अधिक व्याप्त है हालांकि इस रोग की शुरूआत तभी हो जाती है जब शिशु का स्तनपान छुड़ाकर उसे ठोस आहार देना शुरू किया जाता है। प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण के कारण बालकों में क्वाशियोरकर और मरास्मस रोग हो जाता है। प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण विशेषकर उन बालकों में देखा जाता है जिन्हें स्तनपान छुड़ाने के बाद ऐसा आहार दिया जाता है जिससे ऊर्जा की पूर्ति तो होती है परन्तु प्रोटीन की पूर्ति नहीं हो पाती। परिणामवश बालक देखने में मोटा एवं तंदरूस्त लगता है जबकि वह क्वाशियोरकर रोग से ग्रसित होता है। जब बालकों के आहार में प्रोटीन एवं कैलोरी दोनों की ही कमी होती है तब मरास्मस रोग होता है। इसमें बच्चे की शारीरिक वृद्धि रुक जाती है तथा वजन में अत्यधिक कमी हो जाती है। कम आहार लेना तथा आहार में कम प्रोटीन लेने के अलावा, संक्रमण भी प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का एक मुख्य कारण है। संक्रमण के कारण बालक बीमार पड़ता है और ठीक प्रकार से भोजन नहीं कर पाता। प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण के कारण बच्चे की बढ़वार रुक जाती है, माँसपेशियों का क्षय हो जाता है, त्वचा शुष्क, खुरदरी, चमकहीन एवं आकर्षणहीन हो जाती है। बालक को रक्ताल्पता एवं अन्य पोषणहीनता सम्बन्धित रोग हो जाते हैं। प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण से बचाव हेतु बालकों के आहार में पर्याप्त मात्रा में अनाज, दाल, सोयाबीन, मूंगफली, हरी पत्तेदार सब्जियों तथा फलों का समावेश किया जाना चाहिए।

3. रक्ताल्पता: जिन बालकों के आहार में लौह तत्व, फोलिक अम्ल तथा विटामिन बी$_{12}$ की कमी होती है उनमें रक्ताल्पता की समस्या होती है। इसके अलावा जिन बालकों के पेट में कीड़े होते हैं उनमें लौह तत्व का अवशोषण न होने के कारण भी रक्ताल्पता होने की संभावना अधिक होती है। स्त्रियों तथा बालकों को रक्ताल्पता से बचाव के लिए भारत सरकार ने "राष्ट्रीय पोषण रक्ताल्पता रोगनिरोधक कार्यक्रम" चलाया है, जिसमें लौह लवण तथा फोलिक अम्ल को गोली के रूप में रक्ताल्पता से ग्रसित 1-2 वर्ष के बच्चों एवं माताओं को मुफ्त में वितरित किया जाता है। बच्चों को प्रतिदिन 1 गोली दी जाती है जिसमें 20 मि0ग्रा0 लौह लवण (60 मि0ग्रा0 फेरस सल्फेट) तथा 0.1 मि0ग्रा0 फोलिक अम्ल होता है। रक्ताल्पता से बचाव हेतु उनके आहार में लौह तत्व के अच्छे स्रोत जैसे माँस, यकृत, हरी पत्तेदार सब्जियाँ आदि को सम्मिलित करना चाहिए और शरीर में लौह लवण के अच्छे अवशोषण के लिए विटामिन सी के स्रोत जैसे आँवला, संतरा, नींबू और अन्य खट्टे फलों का समावेश भी होना चाहिए। इसके साथ ही इन बच्चों को पेट के कीड़े के निवारण के लिए भी हर 6 महीने पर दवा देनी चाहिए।

4. रिकेट्स: 6 माह से 2 वर्ष के बालकों में विटामिन 'डी' की कमी के कारण रिकेट्स रोग देखा जाता है। विटामिन डी के अभाव में अस्थियों में कैल्शियम का जमाव नहीं हो पाता है जिसके कारण अस्थियाँ मृदु, कमजोर, निर्बल एवं मुलायम हो जाती हैं। बालक का शारीरिक विकास रुक जाता है। सूरज की किरणें विटामिन 'डी' का प्राकृतिक स्रोत हैं।

इसलिए इस आयु के बच्चों को कुछ देर सुबह की धूप दिखानी चाहिए जिससे उनके शरीर में विटामिन डी का निर्माण हो सके। यदि किसी कारणवश बच्चे को धूप नहीं दिखाई जा सकती हो, जैसे महानगरों में बहुमंजिल इमारतें होने के कारण सभी घरों में पर्याप्त मात्रा में धूप नहीं मिल पाती है, उस स्थिति में बालक को विटामिन 'डी' की पूर्ति हेतु एक चम्मच कॉड लिवर ऑयल प्रतिदिन पिलाना चाहिए।

5. आयोडीन हीनता जन्य रोग: आयोडीन बालक के मानसिक और शारीरिक विकास के लिए बहुत जरूरी होता है। आयोडीन की कमी से ग्रस्त व्यक्ति बहरे, गूंगेपन, भेंगापन, समय पूर्व जन्म, गर्भपात, किसी भी आयु में गण्डमाला / घेंघा, तंत्रिका तंत्र एवं मानसिक और शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त रहते हैं। सामान्य रूप से जन्म लेने वाले बच्चे भी आयोडीन की कमी वाले भोजन से मतिमंदता और उदासीनता के शिकार हो जाते हैं। बच्चों को आयोडीन हीनता से बचाव के लिए खाने में आयोडीन युक्त नमक का प्रयोग करना चाहिए। देश में आयोडीन हीनता की समस्या को देखते हुए सरकार ने सिर्फ आयोडीन युक्त नमक बेचने को अनिवार्य कर दिया है।

4.3.4 भोजन संबंधी आदतें

शालापूर्व बालकों का स्वभाव चंचल होने की वजह से उनका मन हर समय खेल कूद में लगा रहता है। उन्हें एक जगह स्थिर रखकर खाना खिलाना माता पिता के लिए एक चुनौती के समान होता है। किन्तु इस आयु में बालक जो सीखता है वह जीवनपर्यन्त उसके साथ रहता है। अत: इस आयु के बालों के खान पान एवं व्यवहार पर माताओं को विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता होती है। निम्नलिखित बातों को अपनाकर इस आयु के बालकों में अच्छी भोजन संबंधी आदतों का विकास किया जा सकता है:

- इस आयु के बच्चे दूसरों की नकल करना पसंद करते हैं। अत: जरूरी है कि आप उनके सामने वही व्यवहार करें जो आप उनको सिखाना चाहते हैं।
- बच्चे को नियमित समय पर भोजन और नाश्ता कराएं।
- बच्चों को पहले कम मात्रा में भोजन परोसें। जब वह उसे खा ले तभी और भोजन परोसें। उन्हें पूरा खाना खत्म करने पर जोर न दें।
- बच्चों को खाने के लिए खुशनुमा माहौल दें। उनहें खाना खिलाने के लिए खिलौने, टेलीविजन और मोबाइल जैसी ध्यान भटकाने वाली चीजों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- बच्चों को विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों को आहार में दें ताकि उन्हें प्रत्येक खाद्य समूह से जरूरी पोषक तत्व पाने में मदद मिलें। प्रत्येक भोजन में कम से कम 3-4 खाद्य समूहों से आहार दें।
- बच्चों को भोजन आकर्षक ढंग से परोसकर दें जिससे उनकी भूख बढ़े और भोजन को खाने के प्रति रुचि जागृत हो।
- इस आयु के बच्चों को पर्याप्त मात्रा (कम से कम आधा किलो) में दूध दें। यदि वह दूध नहीं पीना चाहता तो दूध को खीर, सेवइयाँ, आइसक्रीम,कस्टर्ड, पनीर आदि के रूप में दें।

- यदि बच्चे को कोई सब्जी पसन्द नहीं है तो उसे अलग तरह से बनाकर दें। जैसे पालक की सब्जी देने की बजाय पालक के पराठे, पूरी या सूप के रूप में दें।
- बच्चों को अधिक मिर्च मसाले युक्त, अत्यधिक मीठा, तला हुआ या मैदे से बनी वस्तुएं देने से बचे क्योंकि उसका पाचक तंत्र बिगाड़ सकते हैं।
- बच्चों को कोल्ड ड्रिंक, चॉकलेट, पेस्ट्री, केक, टॉफी, पिज्जा, बर्गर, मैगी जैसे जंक फूड देने की बजाय उन्हें घर पर बने व्यंजन खाने की आदत डालें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. सत्य अथवा असत्य बताइये।
   a. शालापूर्व बालकों में रतौंधी रोग विटामिन सी की कमी से होता है।
   b. बालकों में रक्ताल्पता का मुख्य कारण उनके आहार में लौह लवण की कमी है।
   c. सूर्य की किरणें विटामिन 'डी' का अच्छा स्रोत हैं।
   d. बच्चों को जंक फूड आहार में देने चाहिए।

4.4 विद्यालयी बालक

4.4.1 विशेषताएं व शारीरिक परिवर्तन

इस आयु में अपनाई गई आदतें व व्यवहार, किशोरावस्था की नींव बनती हैं। इस आयु में बच्चे समूह गतिविधियों में रुचि लेना आरम्भ कर देते हैं और उनका लगाव दोस्तों के प्रति बढ़ने लगता है। इस अवस्था के दौरान शारीरिक विकास की दर धीमी और स्थिर होती है। 5-8 वर्ष की आयु के दौरान बच्चे बड़ी माँसपेशियों को छोटी माँसपेशियों की तुलना में ज्यादा अच्छे से नियंत्रित कर पाते हैं और 8-12 वर्ष की आयु में छोटी माँसपेशियों का विकास भी तेजी से होता है। किशोरावस्था तक पहुँचने पर बालक शारीरिक वृद्धि, मानसिक विकास तथा संवेगात्मक विशेषताओं से प्रभावित होने लगता है। साथ ही उसे परिवार तथा अपने साथियों के साथ सामंजस्य भी स्थापित करना पड़ता है जिसमें उसकी बहुत सी ऊर्जा व्यय होती है। यदि इस आयु में बालक को पौष्टिक आहार नहीं मिलता तो उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं संवेगात्मक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

1. वजन एवं लम्बाई: इस आयु सीमा के बच्चों के बीच लम्बाई, वजन और निर्माण में काफी अंतर देखने को मिलता है। इसका कारण है कि आनुवंशिक पृष्ठभूमि, पोषण और व्यायाम बच्चे के विकास को प्रभावित कर सकते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (2006) द्वारा दी गई विद्यालयी बालक एवं बालिकाओं की लम्बाई एवं वजन तालिका 4.3 में दर्शाया गया है। बालकों की ऊँचाई में 7 से 12 वर्ष तक की आयु में 5.2 से लेकर 6.0 से0मी0 तक की वृद्धि होती है जबकि बालिकाओं में इस दौरान 5.8 से लेकर 6.4 से0मी0 तक की वृद्धि होती है। वजन के मामले में बालकों में 7 से

8 वर्ष में 2.5 किलो, 8 से 9 वर्ष में 2.7 किलो, 9 से 10 वर्ष में 3.1 किलो की वृद्धि होती है जबकि बालिकाओं में 7 से 8 वर्ष में 2.6 किलो, 8से 9 वर्ष में 3.2 किलो और 9 से 10 वर्ष में 3.7 किलो की बढ़ोतरी होती है।

तालिका 4.3: विद्यालयी बालकों की औसतन लम्बाई व वजन (WHO, 2006)

आयु (वर्षों में)	लम्बाई (से0मी0)		वजन (कि0ग्रा0)	
	बालक	बालिकाएं	बालक	बालिकाएं
7	121.7	120.8	22.9	22.4
8	127.3	126.6	25.4	25.0
9	132.6	132.5	28.1	28.2
10	137.8	138.6	31.2	31.9
11	143.1	145.0	--	--
12	149.1	151.2	--	--

2. इस आयु में बालकों में क्रियाशीलता और आत्मनिर्भरता दोनों ही बढ़ जाती है। वे अपना हर कार्य स्वयं करना चाहते हैं जैसे नहाना, वस्त्र पहनना, भोजन करना, अपनी वस्तुओं को यथा स्थान रखना आदि। दूसरों का हस्तक्षेप उन्हें पसन्द नहीं आता।

3. विद्यालयी बालकों में समूह भावना बहुत प्रबल होती है। वे अधिकांश समय अपने दोस्तों के साथ बिताना चाहते हैं जिसके कारण वो अपने भोजन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते। समूह में रहकर बालक सामाजिक मान्यताओं एवं आचरणों को सीखता है।

4. बाल्यावस्था में बालक के हाथ पैरों का विकास शरीर की तुलना में अधिक तीव्रता से होता है जिससे उनकी टाँगें लम्बी प्रतीत होती हैं। अत: इस आयु को सारस अवस्था भी कहा जाता है।

5. इस आयु में बालक पर स्कूल की पढ़ाई, कक्षा में प्रतिस्पर्धा की भावना, सहपाठियों के साथ समायोजन में समस्या आदि कई तरह के दबाव होते हैं जिससे बालक तनाव में रहता है। यद्यपि इस आयु में बालक को अधिक भूख लगती है किन्तु विद्यालय के काम की अधिकता, गृहकार्य, खेलने से थकान आदि कारणों से वो भरपेट भोजन नहीं कर पाते।

6. इस आयु के बालक बहुत जिज्ञासु प्रवृत्ति के होते हैं। वे अपने सम्पर्क में आने वाली हर वस्तु के बारे में समुचित जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं।

7. इस आयु में नैतिकता की भावना का विकास होने लगता है। फलत: वह परिवार, समूह, साथियों तथा विद्यालय व समाज के नियमों के अनुसार आचरण करने लगता है।

8. इस अवस्था के बालकों में किसी विशेष भोजन के प्रति रुचि बन जाती है और कुछ भोजन को वो बिल्कुल नहीं करना चाहते।

10. इस आयु में हड्डियाँ परिपक्व हो जाती हैं। दूध के दाँत गिर जाते हैं और स्थायी दाँत आ जाते हैं। शरीर की वृद्धि के साथ खून की मात्रा का भी विस्तार होता है।

4.4.2 पोषक तत्वों की माँग

इस आयु के बच्चों के लिए पोषक तत्व बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। दिन भर के खेल कूद और विकास के लिए उन्हें पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्वों की जरूरत होती है। इस आयु में उन्हें जितना अधिक पौष्टिक आहार मिलेगा उनका विकास उतना ही अच्छा होगा। आई0 सी0 एम0 आर0 द्वारा विद्यालयी बालकों के लिए पोषक तत्वों की दैनिक प्रस्तावित मात्रा निर्धारित करते समय इन्हें 2 वर्गों '7 से 9 वर्ष' एवं '10 से 12 वर्ष' में विभाजित किया गया है। पोषक तत्वों की दैनिक प्रस्तावित मात्रा 7 से 9 वर्षो के दौरान बालक और बालिकाओं में समान है जबकि 10 से 12 वर्षो के दौरान यह मात्रा बालक और बालिकाओं में थोड़ी भिन्न है जो कि तालिका 4.4 में दर्शाई गई है।

तालिका 4.4: विद्यालयी बालकों के लिए पोषक तत्वों की दैनिक प्रस्तावित मात्रा

पोषक तत्व	7 – 9 वर्ष	10 – 12 वर्ष	
		बालक	बालिकाएं
ऊर्जा (किलो कैलोरी)	1690	2190	2010
प्रोटीन (ग्राम)	29.5	39.9	40.4
वसा (ग्राम)	30	35	35
कैल्शियम (मि0ग्रा0)	600	800	800
लौह तत्व (मि0ग्रा0)	16	21	27
विटामिन ए (माइक्रो ग्राम)	600	600	600
थायमिन (मि0ग्रा0)	0.8	1.1	1.0
राइबोफ्लेविन (मि0ग्रा0)	1.0	1.3	1.2
नियासिन (मिग्रा0)	13	15	13
पाइरीडॉक्सिन (मि0ग्रा0)	1.6	1.6	1.3
विटामिन सी (मि0ग्रा0)	40	40	40

फोलिक अम्ल (माइक्रो ग्राम0)	120	140	140
विटामिन बी$_{12}$ (माइक्रो ग्राम)	0.2 - 1.0	0.2 - 1.0	0.2 - 1.0
मैग्नीशियम (मि0ग्रा0)	100	120	160
जिंक (मि0ग्रा0)	8	9	9

ऊर्जा: विद्यालयी बालक अत्यधिक क्रियाशील होते हैं जिसके कारण उन्हें अच्छी भूख लगती है। अधिक क्रियाशील होने की वजह से इन बच्चों को कैलोरीयुक्त आहार पर्याप्त मात्रा में देना अत्यावश्यक है अन्यथा उनका शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरूद्ध हो सकता है। बढ़ती आयु के साथ बच्चों में ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ती है। 10 वर्ष के पश्चात बालिकाओं में यह आवश्यकता बालकों की अपेक्षा में थोड़ी कम होती है।

प्रोटीन: विद्यालयी बच्चों में वृद्धि, शक्ति और मांसपेशियों के रखरखाव के लिए प्रोटीन बहुत महत्वपूर्ण है। साथ ही नवीन कोशिकाओं के निर्माण तथा टूटी फूटी कोशिकाओं एवं तन्तुओं के निर्माण के लिए प्रोटीन युक्त भोजन लेना आवश्यक होता है। प्रोटीन की पूर्ति हेतु बच्चों के आहार में पर्याप्त मात्रा में दूध, अंडा, मांस, मछली, सोयाबीन एवं दालों को सम्मिलित करें।

वसा: बच्चों में वसा, विशेष रूप से ओमेगा- 3 वसीय अम्ल संज्ञानात्मक विकास के लिए बहत महत्वपूर्ण है। बच्चों को प्रत्यक्ष वसा तेल, घी, मक्खन आदि के रूप में दी जा सकती है। इसके अलावा वसा घुलनशील विटामिनों जैसे विटामिन 'ए', 'डी', 'ई' एवं 'के' के संचरण के लिए भी आहारीय वसा आवश्यक है।

कैल्शियम: इस आयु के बच्चों में भी दाँतों एवं अस्थियों के विकास के लिए कैल्शियम आवश्यक है। इस आयु में बच्चों के दाँत टूट जाते हैं और उनके स्थान पर स्थायी दाँत उगते हैं। ऐसी परिस्थिति में उनके आहार में कैल्शियम पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए। इसलिए इस आयु के बच्चों को दूध एवं दूध से बने उत्पाद अधिक मात्रा में खिलाने चाहिए। कैल्शियम के अवशोषण के लिए विटामिन 'डी' भी आवश्यक होता है। इस आयु में विटामिन 'डी' की माँग भोजन के माध्यम से कम हो जाती है क्योंकि बालक अपना अधिक समय घर से बाहर धूप में बिता लेता है। अत: विटामिन 'डी' की पूर्ति सूर्य की रोशनी से पूरी हो जाती है।

लौह लवण: लौह लवण की कमी होने पर रक्ताल्पता, थकान और कमजोरी होने लगती है जिसकी वजह से बच्चे की शारीरिक क्रियाएं प्रभावित हो जाती हैं। इसके अलावा लोहे की कमी की वजह से बच्चे को ध्यान केन्द्रित करने में समस्या हो सकती है और उसका शैक्षणिक प्रदर्शन खराब हो सकता है। इसकी पूर्ति के लिए बच्चों के आहार में साबुत अनाज, फलियाँ, हरी पत्तेदार सब्जियाँ जैसे पालक, मेथी, बथुआ आदि को सम्मिलित करना चाहिए। इस आयु के बच्चे हरी सब्जियाँ खाना पसन्द नहीं करते। ऐसे में उन्हें सब्जी की बजाय मेथी की पूरी, बथुआ के पराठे, पालक का

सूप आदि बनाकर खिलाया जा सकता है। लौह लवण के अच्छे अवशोषण के लिए विटामिन सी से सम्पन्न स्रोतों जैसे खट्टे फल को भी आहार में शामिल करना चाहिए।

विटामिन 'ए': विटामिन 'ए' आँखों की रोशनी के लिए बहुत जरूरी है। साथ ही विटामिन 'ए' की कमी बच्चों में संक्रमण से लड़ने की क्षमता को भी कम कर देती है। अत: बच्चे के आहार में पर्याप्त मात्रा में गाजर, पपीता, आम एवं अन्य पीले फलों का समावेश करना चाहिए।

विटामिन 'बी' समूह: जैसे कि पहले भी बताया गया है कि थायमिन, राइबोफ्लेविन और नियासिन की दैनिक आवश्यकता बच्चों की आवश्यक कैलोरी की मांग पर निर्भर करती है। इसके अलावा शालापूर्व बच्चों की विटामिन बी समूह की दैनिक प्रस्तावति माँग की चर्चा करते समय सभी विटामिनों की कमी से होने वाली समस्याओं तथा स्रोतों के बारे में हम पहले ही बता चुके हैं। विद्यालयी बालकों में इन विटामिनों की मांग बढ़ती आयु के साथ बढ़ती है और बालिकाओं की अपेक्षा में बालकों में अधिक होती है। हालांकि पाइरीडॉक्सिन और फोलिक अम्ल की दैनिक माँग 10-12 वर्ष के दौरान बालक और बालिकाओं में समान होती है।

विटामिन 'सी': बच्चों को विभिन्न रोगों से बचाव तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए पर्याप्त मात्रा में विटामिन 'सी' की आवश्यकता होती है। इसके नियमिन सेवन से सर्दी, खांसी व अन्य तरह के संक्रमण का खतरा कम हो जाता है। साथ ही यह शरीर में विटामिन ई की आपूर्ति को पुनर्जीवित करता है और शरीर में लोहे की अवशोषण क्षमता को भी बढ़ाता है। यह एक ऐंटिएलर्जिक और एंटीआक्सिडेंट के रूप में भी काम करता है और दांत, मसूढ़ों व आँखों को भी स्वस्थ रखता है।

मैग्नीशियम एवं जिंक: मैग्नीशियम और जिंक दोनों की आवश्यकताएं बढ़ती आयु के साथ बढ़ती हैं। 10-12 वर्षों के दौरान मैग्नीशियम की आवश्यकता बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में अधिक होती है जबकि जिंक की आवश्यकता दोनों में समान होती है। बच्चों में मैग्नीशियम और जिंक की कमी से होने वाले रोगों एवं इनके स्रोतों के बारे में विद्यालयी पूर्व बच्चों में "पोषक तत्वों की माँग" के अंतर्गत बताया जा चुका है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।
   a. विद्यालयी बालकों की अवस्था को .... अवस्था भी कहा जाता है।
   b. 7 से 9 वर्ष के बच्चे के दाँतों एवं अस्थियों के विकास के लिए प्रतिदिन .... मि0ग्रा0 कैल्शियम की आवश्यकता होती है।
   c. विद्यालयी बालकों में .... भावना प्रबल होती है।
   d. 10 से 12 वर्ष के दौरान प्रोटीन की आवश्यकता बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में .... होती है।
   e. 10 वर्ष के बालक को प्रतिदिन .... किलो कैलोरी अपने आहार में लेनी चाहिए।

4.4 पोषण संबंधी समस्याएं

आज के बच्चे ही कल के युवा बनते हैं और देश की प्रगति, सुरक्षा और संरक्षण का दायित्व इनके कंधों पर होता है। इसके लिए आवश्यक है कि ये बच्चे शारीरिक और मानसिक स्तर पर स्वस्थ व मजबूत हों। विद्यालयी बालकों की पोषण सम्बन्धी समस्याओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। नये तन्तुओं के निर्माण, ऊर्जा उत्पादन, क्षीण तन्तुओं की मरम्मत, संक्रमण से बचाव आदि के लिए पोषक तत्व आवश्यक होते हैं। अत: विद्यालयी बालकों का आहार नियोजन इस तरह होना चाहिए कि उन्हें सभी आवश्यक पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में मिल सकें। आमतौर पर विद्यालयी बालकों में निम्नलिखित पोषण या भोजन संबंधी समस्याएं देखने को मिलती हैं:

1. भोजन से इनकार: इस आयु के बालक कोई विशेष भोजन में रुचि दिखाते हैं और उन्हें खाना पसन्द करते हैं। जो भोजन उन्हें पसन्द नहीं होता उसे वो छूते तक नहीं हैं। इस आयु के बच्चे हरी पत्तेदार सब्जियाँ और अन्य सब्जियाँ जैसे लौकी, तोरई, टिंडे, करेला, कद्दू आदि खाना कम पसन्द करते हैं। कई बार वो खेलने में इतने व्यस्त होते हैं कि भोजन को प्राथमिकता नहीं देते। इसी वजह से वो कई बार स्कूल में अपना टिफिन भी नहीं खोलते। इन सब का असर बालक के पोषण स्तर पर पड़ता है। उसमें एक या एक से अधिक पोषक तत्व की कमी हो जाती है। ऐसे में हर संभव कोशिश करनी चाहिए कि बालक हर तरह का भोजन ग्रहण करे, चाहे वह थोड़ी मात्रा में ले।

2. एलर्जी और खाद्य असहिष्णुता (Food Intolerance): विद्यालयी बालकों में अक्सर कुछ खाद्य पदार्थों खासकर अंडा, दूध और मूंगफली के प्रति एलर्जी देखी जाती है। इसके अलावा कुछ बालकों में गेहूँ में पाये जाने वाला प्रोटीन (ग्लूटन) और दूध में पाई जाने वाली लैक्टोस शर्करा के प्रति असहनीयता देखने को मिलती है। ऐसे में इन बालकों के आहार से इन भोज्य पदार्थों को पूरी तरह से हटाना पड़ता है जो उनके पोषण स्तर को प्रभावित कर सकता है। इस स्थिति में जरूरी है कि बालक को जिस खाद्य पदार्थ से बालक को एलर्जी हो उसका खाद्य विकल्प बालक को दिया जाए या डॉक्टर से पूछकर बालक को पूरक दिये जाएं।

3. रक्ताल्पता: इस आयु के बालकों में लौह लवण की कमी से होने वाली रक्ताल्पता एक आम समस्या है। यह ज्यादातर 2 से 9 वर्ष के बालकों में देखने को मिलता है जिनका आहार ज्यादातर दूध व दूध से बने व्यंजन पर आधारित होता है और लौह लवण के स्रोत बहुत कम या न के बराबर आहार में सम्मिलित होते हैं। रक्ताल्पता से पीड़ित बच्चे स्कूल में अच्छा शैक्षणिक प्रदर्शन नहीं कर पाते और अक्सर कमजोरी और थकान महसूस करते हैं। रक्ताल्पता से बचाव के लिए जरूरी है कि उनके आहार में लौह लवण के उत्तम स्रोत जैसे माँस, कलेजी, साबुत अनाज, हरी पत्तेदार सब्जियाँ आदि सम्मिलित किये जाएं।

4. मोटापा: वर्तमान युग में विद्यालयी बालकों में मोटापा एक आम समस्या होती जा रही है। जब से हमारी जीवन शैली में टीवी, इंटरनेट, मोबाइल ने अपनी जगह बनाई है, धीरे-धीरे यह साधन बच्चों के जीवन में शारीरिक खेल कूद की जगह लेते जा रहे हैं। साथ ही अगर बालक जंक भोजन जैसे नूडल्स, बर्गर, पिज्जा, कोल्ड ड्रिंक आदि का शौकीन है तो वह बहुत ही कम आयु में मोटापे से ग्रस्त हो जाता है। बाल्यावस्था में मोटापा, वयस्क अवस्था में होने वाली कई

बीमारियों जैसे मधुमेह, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप आदि का कारण बनता है। मोटापे से बचाव के लिए जरूरी है कि बच्चों को जंक फूड के स्थान पर घर का बना साफ, स्वच्छ व पौष्टिक भोजन दिया जाए और उन्हें टीवी, इंटरनेट, मोबाइल के साथ अधिक वक्त बिताने की बजाय शारीरिक खेल कूद के लिए प्रेरित किया जाए।

5. आहार विकार: इस आयु में कुछ बालकों में ऐनोरक्सिया नर्वोसा, बुलीमिया नर्वोसा और बिंज ईटिंग विकार देखने को मिलते हैं। एनोरेक्सिया नर्वोसा से ग्रस्त बालक अपने शरीर के वजन व आकृति को लेकर संतुष्ट नहीं होते हैं और वजन घटाने के लिए भूखे रहते हैं जो स्वास्थ्य के लिए गंभीर समस्याएं पैदा कर देता है। बुलीनिया नर्वोसा से ग्रस्त बालक थोड़े समय में अधिक और बार-बार खाते हैं और फिर जबरदस्ती उल्टी करते हैं या अत्यधिक व्यायाम करते हैं। बिंज इंटीग विकार से ग्रस्त बालक रोजाना अधिक खाते हैं और भोजन पर नियंत्रण नहीं कर पाते। इसमें बालक भूख न होने पर भी खाते हैं और तब तक खाते रहते हैं जब तक उनको पेट भरने के बाद बेचैनी न महसूस हो। यह समस्याएँ बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में ज्यादा देखी जाती हैं। बच्चों में आहार विकार की रोकथाम के लिए बच्चों के आस- पास डाइटिंग या आहार नियंत्रण की बात न करें और उनमें स्वस्थ शरीर की भावना पैदा करें।

6. दाँतों में सड़न: इस आयु के बच्चों में अक्सर दाँतों की सड़न की समस्या देखी जाती है जिसका मुख्य कारण अधिक मीठे व्यंजन, टॉफी, चॉकलेट, कोल्ड ड्रिंक आदि का सेवन है। इस तरह के भोजन अक्सर दाँतों में चिपक जाते हैं और दाँतों में सड़न को आमंत्रित करते हैं। अगर बच्चा नियमित रूप से अपने दाँतों की सफाई नहीं करता तो उसके दाँत सड़ जाते हैं। इसलिए जरूरी है कि बच्चों को इस तरह के भोज्य पदार्थ सीमित मात्रा में दें तथा अपने दाँतों की साफ सफाई के प्रति सचेते रहने के लिए प्रेरित करें।

4.4.4 भोजन सम्बन्धी आदतें

विद्यालयी बालकों में काफी मनोवैज्ञानिक व मानसिक तनाव होता है जिसकी वजह से उनके आहार की आवश्यकताएं बदल जाती हैं। बालक के आहार में विविधता लाने के लिए उसकी थाली में कम से कम एक प्रकार का दुग्ध उत्पाद, एक प्रकार की सब्जी, 1 प्रकार का मांस/मछली/दाल, एक प्रकार का फल और एक प्रकार का अनाज होना चाहिए। बालक को हर तरह का भोजन लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इसके अलावा बालक में भोजन सम्बन्धी अच्छी आदतों का निर्माण करने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:

- बालक को खाद्य पदार्थों के स्वास्थ्य लाभ और पोषण के महत्व के बारे में बताएं क्योंकि यह उसे किसी भोजन को पूर्ण रूप से अपनाने और खुश होकर खाने के लिए तैयार करेगा।
- रात का खाना खाने के बाद सुबह के नाश्ते के लिए एक लंबा अंतराल होता है, इसलिए बच्चे के अधिक भूखा होने की संभावना रहती है। किन्तु समय कम होने के कारण कई बार वो नाश्ता नहीं करते और धीरे-धीरे ये उनकी आदत बन जाती है। नाश्ता न करना स्कूल में उनके प्रदर्शन को नकारात्मक तरीके से प्रभावित कर सकता है। इसलिए बच्चों को नाश्ता करने के लिए जरूर प्रोत्साहित करें।

- बच्चे को सुबह जल्दी स्कूल जाना होता है। इसलिए सुबह का नाश्ता पूर्ण व पौष्टिक होना चाहिए जिसे खाने में कम समय लगे। अत: उन्हें दूध, अंडा या इनसे बना कोई व्यंजन दे सकते हैं।
- दोपहर का खाना बालक विद्यालय में अपने साथियों के साथ खाता है इसलिए जरूरी है कि उसका भोजन देखने में आकर्षक, खाने में स्वादिष्ट व पोषण से भरपूर हो।
- बच्चों के आहार में फल व सब्जी अवश्य सम्मिलित करें ताकि उनकी विटामिन और खनिज लवण की जरूरत पूरी हो सकें।
- भोजन में नवीन भोज्य पदार्थों का समावेश इस तरह से करें कि बच्चे उस भोजन को उत्सुकता एवं प्रसन्नता से ग्रहण करें।
- यदि बालक कोई विशेष आहार को पसन्द नहीं करता तो उसके रूप, आकार एवं पकाने की विधि में परिवर्तन कर उसके सामने प्रस्तुत करें।
- स्नैक्स सक्रिय बच्चों के लिए एक स्वस्थ आहार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसलिए पौष्टिकता के साथ-साथ उच्च ऊर्जा वाले नाश्ता बच्चे को दें।
- बच्चों को भोजन बनाने व भोजन बनाने की योजना में शामिल करें जिससे उनकी रुचि भोजन में बनी रहे।
- बच्चों को भोजन करने के लिए शांत, मधुर व प्रेम भरा वातावरण दें और उनको परिवार के साथ बैठकर भोजन करने के लिए प्रेरित करें।

अभ्यास प्रश्न 4

1. सत्य अथवा असत्य बताइए।
   a. बच्चों को लेक्टोज असहिष्णुता होने पर भी दूध देना बंद नहीं करना चाहिए अन्यथा उनमें कैल्शियम की कमी हो जाएगी।
   b. विद्यालयी बालकों में रक्ताल्पता लौह लवण की कमी से होती है।
   c. बुलीमिया से पीड़ित बच्चा वजन कम करने के लिए अपने को भूखा रखता है।
   d. बाल्यावस्था में मोटापे का कारण अपने आहार में आवश्यकता से अधिक कैलोरी लेना है।

4.5 सारांश

स्वस्थ रहने के लिए बच्चों को वयस्कों के समान पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है किन्तु विभिन्न मात्रा में। अधिक सक्रिय होने की वजह से बच्चे के शरीर को अधिक ईंधन की आवश्यकता होती है। बाल्यावस्था के दौरान बच्चों की लम्बाई एवं वजन में भी वृद्धि होती है जिसके लिए उन्हें अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है। इसके

साथ ही उन्हें विटामिन और खनिज लवण भी पर्याप्त मात्रा आवश्यक होते हैं क्योंकि इसी अवस्था में उनका मानसिक विकास, रोग प्रतिरोधक क्षमता, रक्त वाहिनियों एवं नाड़ी तन्तुओं आदि का विकास भी होता है। आयु बढ़ने के साथ इन पोषक तत्वों की जरूरत भी बढ़ती है। यदि आवश्यकता के अनुसार बच्चों को यह पोषक तत्व नहीं मिल पाते तो उनका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व संवेगात्मक विकास प्रभावित हो सकता है। उनमें पोषक तत्वों की हीनता से संबंधित रोग जैसे रतौंधी, रक्ताल्पता, घेंघा, प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण आदि होने की संभावना बढ़ जाती है। इसलिए बच्चों को सभी पोषक तत्वों से भरपूर आहार देना चाहिए। बाल्यावस्था के दौरान, बच्चों का भोजन पौष्टिक होने के साथ साथ स्वादिष्ट एवं आकर्षक भी होना चाहिए ताकि वो भोजन सहर्ष स्वीकार करें।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

- **रक्ताल्पता:** खून में स्वस्थ लाल रक्त कोशिकाएं कम होने की स्थिति।
- **स्कर्वी:** विटामिन 'सी' की कमी से होने वाला रोग जिसमें मसूड़ों से खून आने लगता है व दाँत गिर जाते हैं।
- **घेंघा:** थायरॉइड के नीचे तितली के आकार की ग्रंथि की असमान्य वृद्धि।
- **बुलीनिया नर्वोसा:** बालक थोड़े समय में अधिक और बार-बार खाते हैं और फिर जबरदस्ती उल्टी करते हैं या अत्यधिक व्यायाम करते हैं।
- **बिंज इंटीग विकार:** बालक रोजाना अधिक खाते हैं और भोजन पर नियंत्रण नहीं कर पाते।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थानों की पूति करें।
   a. 2-2.5
   b. 90 प्रतिशत
   c. 600
   d. रतौंधी
   e. 9

अभ्यास प्रश्न 2

1. सत्य अथवा असत्य बताइए।
   a. असत्य
   b. सत्य

c. सत्य
d. असत्य

अभ्यास प्रश्न 3

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।
   a. सारस
   b. 800
   c. समूह
   d. अधिक
   e. 2010

अभ्यास प्रश्न 4

1. सत्य अथवा असत्य बताइए।
   a. असत्य
   b. सत्य
   c. असत्य
   d. सत्य
   e. सत्य

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Dietary Guidelines for Indians- A manual, National Institute of Nutrition, Indian Council of Medical Research, Hyderabad, India, Second Edition, 2011.
2. सिंह वृंदा, आहार एवं पोषण विज्ञान (2016), चौदहवाँ संस्करण, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
3. WHO 2006. WHO Child Growth Standards. Length/Height for age, Weight for age, weight for length, weight for height and body mass index for age. Methods and development. WHO press Geneva.
4. इंटेर्नेट स्रोत: https://www.who.int>growthref.

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. शालापूर्व एवं विद्यालयी बालकों में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों के बारे में विस्तार से चर्चा करें।

2. शालापूर्व बालकों की पोषक आवश्यकताओं के बारे में बताइए व उनकी कमी व अधिकता से होने वाले रोगों की चर्चा कीजिए।
3. विद्यालयी बालकों की पोषक आवश्यकताओं के बारे में चर्चा करें।
4. विद्यालयी बालकों में किस तरह की पोषण संबंधी समस्याएं देखने को मिलती हैं, चर्चा कीजिए।

इकाई 5: किशोरावस्था एवं प्रौढ़ावस्था में पोषण

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 किशोरावस्था
    5.3.1 विशेषताएं एवं शारीरिक परिवर्तन
    5.3.2 किशोरावस्था में पोषक तत्वों की माँग
    5.3.3 किशोरावस्था में आहार नियोजन
    5.3.4 किशोरावस्था में पोषण सम्बंधी समस्याएं
5.4 प्रौढ़ावस्था
    5.4.1 विशेषताएं एवं शारीरिक परिवर्तन
    5.4.2 प्रौढ़ावस्था में पोषक तत्वों की माँग
    5.4.3 प्रौढ़ावस्था में आहार नियोजन
    5.4.4 प्रौढ़ावस्था में पोषण सम्बंधी समस्याएं
5.5 सारांश
5.6 पारिभाषिक शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

13-18 वर्ष की अवस्था को किशोरावस्था कहा जाता है। यह परिवर्तन की अवस्था होती है। इस आयु में व्यक्ति के शरीर में कई शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक परिवर्तन होते हैं। 18 वर्ष की आयु तक पहुँचने पर बच्चे का वजन दोगुना हो जाता है। बालक अपनी पूर्ण लम्बाई प्राप्त कर लेता है तथा बालक और बालिकाओं के मध्य स्पष्ट शारीरिक परिवर्तन दिखाई देने शुरु हो जाते हैं। दोनों ही लिंगों में पूर्ण यौन परिपक्वता देखी जाती है। इस अवस्था में शारीरिक वृद्धि की गति अत्यंत तीव्र होती है जिसके अंतर्गत अस्थियों का बढ़ना, मांसपेशियों में वृद्धि, लड़कों में कंधों का चौड़ा होना, शरीर में बालों का उगना, आवाज में भारीपन, लड़कियों में स्तनों का विकास, नितम्बों का बढ़ना, मासिक धर्म की शुरुआत आदि परिवर्तन दिखाई देते हैं। इस आयु में तेजी से हो रहे शारीरिक परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए किशोरों के पोषण पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास इसी अवस्था में होता है।

प्रौढ़ावस्था किशोरावस्था के पश्चात शुरु होने वाली अवस्था है। यह अवस्था शारीरिक वृद्धि की दृष्टि से जीवन की स्थाई अवस्था है जिसमें शरीर की पूर्ण वृद्धि हो गई होती है। इसलिए इस अवस्था में पोषक तत्वों की आवश्यकता शारीरिक वृद्धि के लिए न होकर शरीर की गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने के लिए होती है। यह अवस्था परिश्रम और व्यस्तता की अवस्था होती है। प्रस्तुत इकाई में आप किशोरावस्था एवं प्रौढ़ावस्था में पोषण आवश्यकताओं तथा आहार नियोजन के विषय में जानेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत शिक्षार्थी;

- किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था की विशेषताएं तथा शारीरिक परिवर्तनों की जानकारी ले पाएंगे;
- किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था की पोषण आवश्यकताओं को जान पाएंगे; तथा
- किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था में आहार नियोजन की जानकारी ग्रहण करेंगे।

5.3 किशोरावस्था

5.3.1 विशेषताएं एवं शारीरिक परिवर्तन

किशोरावस्था तीव्र वृद्धि तथा परिवर्तनों की अवस्था है। इस अवस्था में किशोरों में कई विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं जो संक्षिप्त में निम्न वर्णित हैं।

शारीरिक परिवर्तन: इस अवस्था में मांसपेशियों तथा हड्डियों का आकार एवं कार्य करने की क्षमता बढ़ जाती है। किशोरावस्था वृद्धि स्फुरण (Growth Spurt) की अवस्था है जिसके दौरान हृदय, फेफड़े, आमाशय, गुर्दे अपने पूर्ण आकार एवं क्रियाशीलता के स्तर पर पहुँच जाते हैं। इस अवस्था में किशोरों में कई लैंगिक यौन परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं:

लड़के पूर्ण लम्बाई प्राप्त कर लेते हैं, उनमें दाड़ी-मूँछ आना, आवाज में भारीपन, मांसपेशियों में दृढ़ता, अस्थियों का पूर्ण विकास, वृद्धिकारक हार्मोन द्वारा पुरुषोचित लैंगिक विकास देखा जाता है। सामान्यत: लड़कों की लम्बाई 12 से 13 वर्ष की आयु में शुरु होकर 18 से 19 वर्ष की आयु तक पूर्ण हो जाती है। शारीरिक भार में लम्बाई के अनुरूप वृद्धि होती है जो औसतन 18 से 22 किलो ग्राम तक होती है।

लड़कियों में मासिकधर्म का आरम्भ किशोरावस्था का प्रथम एवं अति महत्वपूर्ण लक्षण है। इसके अतिरिक्त लम्बाई में वृद्धि, वक्षस्थल का विकास, नितम्बों का चौड़ापन, शारीरिक सौंदर्य में वृद्धि आदि देखे जाते हैं। सामान्यत: लड़कियों की लम्बाई 10 से 11 वर्ष की आयु में शुरु होकर 17 से 18 वर्ष की आयु तक पूर्ण हो जाती है। लड़कियों के वजन में वृद्धि समान ही होती है। शरीर के कुछ भागों जैसे नितम्बों आदि पर अधिक वसा संग्रहित होती है।

मानसिक परिवर्तन: किशोरावस्था में शारीरिक विकास के साथ मानसिक विकास भी अपने चरम पर होता है। किशोर इस अवस्था में अपने निर्णय स्वयं लेना पसंद करते हैं तथा किसी का दखल नहीं पसंद करते। उन पर अपने

साथियों का अत्यधिक प्रभाव होता है। उनके सभी निर्णय तथा भोजन सम्बंधी सभी आदतें साथियों से प्रभावित होती हैं। किशोरावस्था के मानसिक विकास का एक मुख्य लक्षण है- मानसिक स्वतन्त्रता। वह रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, अन्धविश्वासों और पुरानी परम्पराओं को अस्वीकार करके स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने का प्रयास करता है। किशोरावस्था में मानसिक योग्यताओं का स्वरूप निश्चित हो जाता है। उसमें सोचने, समझने, विचार करने, अन्तर करने और समस्या का समाधान करने की योग्यताएं उत्पन्न हो जाती हैं। इस अवस्था में ध्यान केन्द्रित तथा तर्क करने की क्षमता का पर्याप्त विकास हो जाता है। वह तर्क किए बिना किसी बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता है।

कल्पना प्रचुरता की अवस्था: किशोर वास्तविक जगत में रहते हुए भी कल्पना के संसार में विचरण करता है। कल्पना के बाहुल्य के कारण उसमें दिन में ही स्वप्न देखने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में कल्पना-शक्ति अधिक होती है। काल्पनिक संसार में वे उन सब बातों को साकार कर लेते हैं जो वास्तविक संसार में सम्भव नहीं है। इस कारण से वे शांत और अंतर्मुखी हो जाते हैं।

भावनात्मक अस्थिरता: हार्मोनल परिवर्तनों के कारण किशोरों में मिजाज परिवर्तित होता रहता है और अक्सर उनका स्वभाव बदल जाता है। वे बच्चों या वयस्कों की तुलना में अधिक तीव्र और व्यापक भावनाएं रखते हैं और इसी कारण वे अपनी समस्याओं को भी बढ़ाते हैं। भावनात्मक अस्थिरता भूख या असामान्य अथवा लंबी नींद का कारण भी बन सकती है। भावनात्मक रूप से अस्थिर किशोर के अवसादग्रस्त होने की सम्भावना भी अधिक होती है।

किशोर लैंगिकता: यह मानव विकास का एक चरण है जिसमें किशोर यौन भावनाओं का अनुभव करते हैं और उनका अन्वेषण करते हैं। तरुणावस्था की शुरुआत में लैंगिकता/कामुकता में रुचि तेज हो जाती है। किशोरों में यौन रुचि बहुत भिन्न हो सकती है जो सांस्कृतिक मानदंडों, यौन शिक्षा, यौन अभिविन्यास और सामाजिक नियंत्रण से प्रभावित होती है।

5.3.2 किशोरावस्था में पोषक तत्वों की माँग

किशोरावस्था में तीव्र परिवर्तनों तथा संगत के प्रभाव से गलत आहार पद्धतियाँ विकसित हो सकती हैं। किशोरावस्था में उचित पोषण का असर उनके भावी जीवन पर दिखाई देता है। इस अवस्था में किशोर अपने शरीर के प्रति अत्यंत सजग रहते हैं तथा आकर्षक दिखना उनके लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। किशोरियों में दुबला एवं छरहरा दिखने के प्रति अधिक रुझान रहता है जिस कारण वे अपने आहार में कमी करना शुरु कर देते हैं। यह उनके पोषण स्तर को विपरीत रूप से प्रभावित करता है। किशोरों की पोषक तत्वों की दैनिक प्रस्तावित मात्रा आई0 सी0 एम0 आर0 द्वारा निर्धारित की गई है जो कि तालिका 5.1 में दर्शाई गई है।

तालिका 5.1: किशोरावस्था में अनुशंसित पोषक तत्वों की आवश्यकता
(भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद, 2010)

पोषक तत्व	लड़के			लड़कियाँ		
	10-12 वर्ष	13-15 वर्ष	16-17 वर्ष	10-12 वर्ष	13-15 वर्ष	16-17 वर्ष

शारीरिक भार (कि0ग्रा0)	34.3	47.6	55.4	35.0	46.6	52.1
ऊर्जा (किलोकैलोरी)	2190	2750	3020	2010	2330	2440
प्रोटीन (ग्राम)	39.9	54.3	61.5	40.4	51.9	55.5
वसा (ग्राम)	35	45	50	35	40	55
कैल्शियम (मि0ग्रा0)	800	800	800	800	800	800
लौह लवण (मि0ग्रा0)	21	32	28	27	27	26
विटामिन ए (रेटीनॉल) बीटा कैरोटीन	600 4800	600 4800	600 4800	600 4800	600 4800	600 4800
थायमिन (मि0ग्रा0)	1.1	1.4	1.5	1.0	1.2	1.0
राइबोफ्लविन (मि0ग्रा0)	1.3	1.6	1.8	1.2	1.4	1.2
नियासिन (मि0ग्रा0)	15	16	17	13	14	14
पाइरिडॉक्सिन (मि0ग्रा0)	1.6	2.0	2.0	1.6	2.0	2.0
एस्कॉर्बिक अम्ल (मि0ग्रा0)	40	40	40	40	40	40
फोलिक अम्ल (माइक्रोग्रा0)	140	150	200	140	150	200
मैग्नीशियम (मि0ग्रा0)	120	165	195	160	210	235
जिंक (मि0ग्रा0)	9	11	12	9	11	12

ऊर्जा: किशोरावस्था में शारीरिक लम्बाई, भार, क्रियाशीलता एवं आधारीय चयापचय दर में वृद्धि होने के कारण ऊर्जा की माँग बढ़ जाती है। किशोरों में यह माँग किशोरियों से अधिक होती है क्योंकि उनकी रुचि बाह्य खेलों, व्यायामों आदि में अधिक रहती है।

प्रोटीन: इस अवस्था में शारीरिक विकास की गति अत्यंत तीव्र होने, मांसपेशियों के निर्माण, कोशिकाओं के क्षय तथा नई कोशिकाओं के निर्माण, हार्मोनों के निर्माण हेतु प्रोटीनयुक्त भोज्य पदार्थों का सेवन आवश्यक है। आहार में दालों, सोयाबीन, अण्डे, मांस, मछली,दूध एवं दुग्ध उत्पाद आवश्यक रूप से सम्मिलित करने चाहिए।

वसा: शारीरिक क्रियाशीलता अधिक होने के कारण इस अवस्था में अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है जिस कारण आहार में वसा का होना अनिवार्य है। परंतु इसके अधिक सेवन से मोटापा होने का भी खतरा रहता है, साथ ही कई अपक्षयी रोगों जैसे हृदय रोग तथा मधुमेह के होने की सम्भावना भी बढ़ जाती है।

लौह लवण: यद्यपि किशोरों एवं किशोरियों दोनों को ही आहारीय लौह लवण की आवश्यकता होती है। परंतु किशोरियों में इस अवस्था में मासिक धर्म की शुरुआत होने के कारण शरीर से रक्त की हानि अधिक होती है जिस कारण उन्हें रक्ताल्पता/एनीमिया रोग हो सकता है। इसलिए किशोरावस्था में आहार में लौह लवण के प्रचुर स्रोत जैसे हरी पत्तेदार सब्जियाँ, अण्डा, गुड़ आदि होने चाहिए। भारत में किशोरियों में एनीमिया की समस्या आम है जो एक चिंतनीय विषय है।

कैल्शियम: इस खनिज लवण की आवश्यकता हड्डियों एवं दाँतों के निर्माण एवं विकास हेतु आवश्यक है जो हमें आहारीय स्रोत जैसे दूध, दुग्ध उत्पादों, हरी पत्तेदार सब्जियाँ आदि से मिलता है।

विटामिन: आँखों के उत्तम स्वास्थ्य हेतु आहार में विटामिन ए के स्रोत जैसे हरी सब्जियाँ, पीले फल, गाजर, अण्डा, दूध आदि सम्मिलित करने चाहिए। थायमिन, राइबोफ्लेविन तथा नियासिन की दैनिक अनुशंसित मात्रा ऊर्जा की आवश्यकता पर आधारित होती है। इसलिए ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ने पर बी-विटामिनों की आवश्यकता भी बढ़ जाती है। विटामिन सी शरीर की त्वचा के उत्तम स्वास्थ्य, घावों के शीघ्र भरने तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता के विकास के लिए आवश्यक है। इसके लिए आहार में खट्टे फलों, आँवला, अमरूद आदि का समावेश होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त भोजन में आयोडीन भी पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए। आयोडीन थायरॉक्सिन हार्मोन का अवयव है जो शरीर में आधारीय चयापचय दर को नियंत्रित करता है। साथ ही यह शारीरिक तथा मानसिक विकास हेतु भी अत्यावश्यक है। इसलिए आहार में आयोडीनयुक्त नमक का प्रयोग करना चाहिए।

5.3.3 किशोरावस्था में आहार नियोजन

इस अवस्था में आहार बहुत विविधतापूर्ण होता है। घर के अतिरिक्त किशोर अपना अधिकांश समय स्कूल तथा दोस्तों के साथ बिताते हैं जो उनकी आहार सम्बंधी आदतों को प्रभावित करता है। किशोर अक्सर अपना नियमित आहार छोड़कर ऐसे खाद्य पदार्थ खाना पसंद करते हैं जिनमें ऊर्जा की मात्रा अधिक तथा पोषक तत्व कम होते हैं जैसे नूडल्स, मोमो, पिज्जा, कोल्ड ड्रिंक्स, चॉकलेट आदि। ऐसी स्थिति में घर का आहार पौष्टिक तत्वों से भरपूर तथा संतुलित होना चाहिए। किशोरों के लिए आहार नियोजन करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए:

- आहार में प्रत्येक खाद्य वर्ग से खाद्य पदार्थ सम्मिलित करने चाहिए।
- ऊर्जा, प्रोटीन, लौह लवण तथा कैल्शियम सम्पन्न स्रोतों पर विशेष बल देना चाहिए।
- किशोरों को अपनी शारीरिक दिखावट की सदैव चिंता रहती है। विशेषकर किशोरियाँ दुबला तथा आकर्षक दिखने की चाह में आहार बहुत कम या नहीं लेतीं तथा वजन कम करने के नित नए और आसान उपाय ढूँढती हैं। ऐसे

भ्रामक कथनों तथा उपायों से किशोरों को बचना चाहिए तथा एक स्वस्थ जीवनशैली तथा संतुलित आहार लेना चाहिए।

- त्वरित वजन कम करने वाले तथा मांसपेशियों को उन्नत करने वाले आहारों से बचना चाहिए।
- वसा, शर्करा तथा परिष्कृत कार्बोहाइड्रेट युक्त तैयार एवं संसाधित भोजन से बचना चाहिए क्योंकि ऐसे भोज्य पदार्थ आवश्यक पोषक तत्व प्रदान नहीं करते। संतुलित भोजन को अधिक महत्व देना चाहिए।
- किशोरों को लोकप्रिय तथा अधिक स्वीकार्य भोजन घर पर ही तैयार कर खाने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

5.3.4 किशोरावस्था में पोषण सम्बंधी समस्याएं

- **मोटापा:** इस अवस्था में अधिक ऊर्जायुक्त भोजन लेने से मोटापे की समस्या हो सकती है जिससे शरीर में वसा का संग्रहण होने लगता है। फलत: किशोर अन्य चयापचयी समस्याओं से ग्रस्त हो सकता है। किशोरावस्था में विकसित मोटापा जीवन के आगामी वर्षों में हृदय रोगों, मधुमेह आदि का कारण भी बन सकता है।
- **एनीमिया:** किशोरावस्था में मासिक धर्म की शुरुआत होने के कारण शरीर से हर माह रक्त विसर्जित होता है जिससे रक्ताल्पता की समस्या हो सकती है। साथ ही किशोरियाँ पतला दिखने की चाह में उचित पौष्टिक भोजन ग्रहन नहीं करती हैं जिससे शरीर में कई पोषक तत्वों की कमी हो जाती है।

किशोरों के लिए एक दिन की आहार तालिका

आहार का समय	भोजन सूची	मात्रा
प्रात: काल	चाय	1 कप
सुबह का नाश्ता	ब्रेड/ऑमलेट भरवाँ पराठा दूध भीगे हुए बादाम, खजूर	2 स्लाइस / एक 2 1 कप 4, 4
11 बजे	फल (सेब/केला) अथवा फलों का रस	1 (मौसम अनुसार) 1 गिलास
1 बजे दोपहर का खाना	चावल/रोटी मिश्रित दाल	1 कटोरी / 2 या 3 1 कटोरी

	आलू पालक की सब्जी दही अथवा रायता सलाद	1 कटोरी 1 कटोरी 1 प्लेट
5 बजे शाम को	वेजीटेबल सैंडविच लस्सी	2 1 गिलास
7 बजे शाम को	टमाटर का सूप	1 बड़ी कटोरी
9 बजे रात्रि में	रोटी सब्जी (मटर पनीर) दाल (अरहर/ मूंग) मखाना खीर सलाद	2 1 कटोरी 1 कटोरी 1 कटोरी 1 प्लेट
10 बजे सोने से पहले	दूध (किसी स्वास्थ्यवर्धक पेय जैसे बॉर्नवीटा आदि के साथ)	1 गिलास

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही अथवा गलत बताइए।

a. किशोरावस्था में वृद्धि एवं परिवर्तन बहुत धीमी गति से होते हैं।
b. किशोरावस्था वृद्धि स्फुरण (Growth Spurt) की अवस्था है।
c. किशोरावस्था के मानसिक विकास का मुख्य लक्षण मानसिक स्वतन्त्रता है।
d. बच्चों या वयस्कों की तुलना में किशोर भावनात्मक रूप से अधिक स्थिर होते हैं।
e. किशोरियों में किशोरावस्था में मासिक धर्म की शुरुआत होने के कारण रक्ताल्पता/एनीमिया रोग हो सकता है।

5.4 प्रौढ़ावस्था

5.4.1 विशेषताएं एवं शारीरिक परिवर्तन

प्रौढ़ावस्था या वयस्कावस्था किशोरावस्था के बाद आने वाली जीवन अवस्था है जिसमें शारीरिक तथा मानसिक स्थिति में ठहराव आ जाता है। वयस्क व्यक्ति व्यवसाय में लिप्त होने तथा पारिवारिक, सामाजिक तथा अन्य दायित्वों

के कारण दबाव की स्थिति का अनुभव करता है। इस अवस्था में शारीरिक आकार में पूर्ण वृद्धि हो चुकी होती है। अत: पोषक तत्वों की आवश्यकता केवल शारीरिक क्रियाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए होती है। आयु बढ़ने के साथ-साथ शरीर के ऊतकों की नवीनीकरण की क्षमता उनके टूट-फूट की अपेक्षा कम होती है।

इस अवस्था को दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है:

1. **प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था (20-25 वर्ष):** इस अवस्था में ऊतकों की टूट-फूट अधिक नहीं होती तथा शरीर में उनके क्षय की आपूर्ति की पर्याप्त क्षमता होती है।
2. **वृद्ध प्रौढ़ावस्था (25-45 वर्ष):** यह वयस्कावस्था का अंतिम चरण तथा वृद्धावस्था के शुरुआती चरण के निकट होता है। इसलिए इस चरण में शरीर के ऊतकों का क्षय अधिक होता है तथा इसकी आपूर्ति कम हो पाती है।

वयस्कावस्था में शारीरिक वृद्धि पूर्ण हो जाने पर लम्बाई तथा वजन में कोई बदलाव नहीं होता हालांकि शारीरिक वजन व्यक्ति की खान-पान सम्बंधी आदतों तथा शारीरिक क्रियाशीलता पर निर्भर करता है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद द्वारा वयस्कों के लिए पोषक तत्वों की अनुशंसित मात्रा को शारीरिक क्रियाशीलता के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित किया गया है:

कम क्रियाशील: इस श्रेणी में अधिक मानसिक कार्य करने वाले वयस्क सम्मिलित हैं जैसे ऑफिस में काम करने वाले व्यक्ति, शिक्षक, सेवानिवृत्त व्यक्ति, गृहणी आदि।

मध्यम क्रियाशील: इस श्रेणी में मध्यम शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति जैसे किसान, बढ़ई, कुली, औद्योगिक श्रमिक, घर पर काम करने वाले नौकर आदि सम्मिलित हैं।

अधिक क्रियाशील: इस श्रेणी में अत्यधिक शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति सम्मिलित होते हैं जैसे रिक्शा चालक, पत्थर तोड़ने वाले व्यक्ति, खदानों के श्रमिक, मजदूर आदि।

5.4.2 प्रौढ़ावस्था में पोषक तत्वों की माँग

जैसा कि उपरोक्त बताया गया है कि वयस्क के कार्य का स्वरूप उसकी पोषक तत्वों की माँग को प्रभावित करता है। आई0सी0एम0आर0 द्वारा दी गई पोषक तत्वों की दैनिक अनुशंसित मात्राएं संदर्भ पुरुष तथा संदर्भ महिला के आधार पर निर्धारित की जाती हैं। आइए जानें कि भारतीय संदर्भ पुरुष तथा संदर्भ स्त्री की परिभाषा क्या है?

भारतीय संदर्भ पुरुष 20-39 आयु वर्ग का होता है जिसका शारीरिक भार 60 किलो होता है। वह पूर्ण रूप से स्वस्थ, रोग-मुक्त तथा शारीरिक कार्यों को करने में सक्षम होता है। वह 8 घण्टे का मध्यम श्रम, 8 घण्टे की नींद, 4-6 घण्टे बैठकर तथा 2 घण्टे चलने, सक्रिय मनोरंजन तथा गृह कार्य में बिताता है।

भारतीय संदर्भ स्त्री 20-39 आयु वर्ग की होती है जिसका शारीरिक भार 55 किलो होता है। वह पूर्ण रूप से स्वस्थ, रोग-मुक्त तथा शारीरिक कार्यों को करने में सक्षम होती है। वह 8 घण्टे का मध्यम श्रम अथवा घर के सामान्य कार्यों में, 8 घण्टे की नींद, 4-6 घण्टे बैठकर तथा 2 घण्टे चलने, सक्रिय मनोरंजन तथा गृह कार्य में बिताती है।

वयस्कावस्था में पोषक तत्वों की दैनिक प्रस्तावित मात्रा आई0 सी0 एम0 आर0 द्वारा निर्धारित की गई है जो कि तालिका 5.2 में दर्शाई गई है।

तालिका 5.2: वयस्कावस्था में अनुशंसित पोषक तत्वों की आवश्यकता
(भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद, 2010)

पोषक तत्व	**वयस्क पुरुष**			**वयस्क महिला**		
	कम क्रियाशील	**मध्यम क्रियाशील**	**अधिक क्रियाशील**	**कम क्रियाशील**	**मध्यम क्रियाशील**	**अधिक क्रियाशील**
शारीरिक भार (कि0ग्रा0)	60	60	60	55	55	55
ऊर्जा (किलोकैलोरी)	2320	2730	3490	1900	2230	2850
प्रोटीन (ग्राम)	60	60	60	55	55	55
वसा (ग्राम)	25	30	40	20	25	30
कैल्शियम (मि0ग्रा0)	600	600	600	600	600	600
लौह लवण (मि0ग्रा0)	17	17	17	21	21	21
विटामिन ए (रेटीनॉल) बीटा कैरोटीन	600 4800	600 4800	600 4800	600 4800	600 4800	600 4800
थायमिन (मि0ग्रा0)	1.2	1.4	1.7	1.0	1.1	1.4
राइबोफ्लविन (मि0ग्रा0)	1.4	1.6	2.1	1.1	1.3	1.7

नियासिन (मि0ग्रा0)	16	18	21	12	14	16
पाइरिडॉक्सिन (मि0ग्रा0)	2.0	2.0	2.0	2.0	2.0	2.0
एस्कॉर्बिक अम्ल (मि0ग्रा0)	40	40	40	40	40	40
फोलिक अम्ल (माइक्रोग्रा0)	200	200	200	200	200	200
मैग्नीशियम (मि0ग्रा0)	340	340	340	310	310	310
जिंक (मि0ग्रा0)	12	12	12	10	10	10

5.4.3 प्रौढ़ावस्था में आहार नियोजन

प्रौढ़ावस्था में आहार नियोजन से पूर्व निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए:

- इस अवस्था में आहार नियोजन आयु, लिंग तथा सक्रियता के आधार पर किया जाता है। इसलिए यह आवश्यक कि आहार नियोजन से पूर्व इन बातों को ध्यान में रखा जाए।
- आहार नियोजन प्रौढ़ावस्था के चरण पर आधारित होना चाहिए क्योंकि वृद्ध प्रौढ़ावस्था में शरीर के ऊतकों का क्षय अधिक होने के कारण प्रोटीन की आवश्यकता अधिक होती है।
- कम तथा मध्यम क्रियाशील वयस्क को आहार में वसा की मात्रा सीमित रखनी चाहिए। संतृप्त वसा के स्थान पर सम्भव हो तो असंतृप्त वसा का सेवन करना चाहिए। अधिक मात्रा में वसा मोटापे, मधुमेह तथा हृदय रोगों का प्रमुख कारण बन सकता है।
- आहार में फलों तथा सब्जियों का पर्याप्त समावेश होना चाहिए।
- आहारीय रेशा व्यक्ति के पाचन स्वास्थ्य हेतु लाभकारी है। अत: आहार में रेशे के उचित स्रोत जैसे साबुत अनाज, साबुत दालें, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, फल इत्यादि प्रचुर मात्रा में लेने चाहिए।
- पानी का समुचित मात्रा में सेवन करना चाहिए।

एक मध्यम क्रियाशील वयस्क पुरुष के लिए एक दिन की आहार तालिका

आहार का समय	भोजन सूची	मात्रा
प्रात: काल 6 बजे	चाय	1 कप
सुबह का नाश्ता 9:30 बजे	मिश्रित अनाज की रोटी हरी सब्जी दूध	2 1 कटोरी 1 कप
11 बजे	मौसमी फल अथवा फलों का रस	1 1 गिलास
1 बजे दोपहर का खाना	चावल/मक्का रोटी सोयाबीन दाल आलू भिंडी की सब्जी दही अथवा रायता सलाद पापड़	1 कटोरी / 2 या 3 1 कटोरी 1 कटोरी 1 कटोरी 1 प्लेट 1
6 बजे शाम को	चाय बिस्कुट/रस	1 कप 2
9:30 बजे रात्रि में	रोटी सब्जी (लौकी आलू) दाल (अरहर/ मूंग) फ्रूट कस्टर्ड सलाद	2 1 कटोरी 1 कटोरी 1 कटोरी 1 प्लेट
10 बजे सोने से पहले	दूध	1 गिलास

5.4.4 प्रौढ़ावस्था में पोषण सम्बंधी समस्याएं

इस अवस्था में कम क्रियाशीलता तथा अधिक ऊर्जा अंतर्ग्रहण के कारण मोटापा एक गम्भीर समस्या बन सकती है जो कई अपक्षयी रोगों जैसे मधुमेह, ह्रदय रोगों का कारण हो सकता है। प्रौढ़ावस्था के दूसरे चरण में शरीर के ऊतकों का अधिक क्षय होने लगता है तथा शरीर के विभिन्न तंत्रों की क्रियाशीलता में कमी आ जाती है। इस आयु में शरीर की हड्डियों की सघनता में कमी आने लगती है जिस कारण ऑस्टियोपोरोसिस और गठिया रोगों के होने की सम्भावना होती है। इस स्थिति में आहार में कैल्शियम एवं फॉस्फोरस की मात्रा में वृद्धि करनी चाहिए। व्यक्ति का पाचन तन्त्र भी धीरे-धीरे प्रभावितहोनेलगता है। इसलिए आहार संतुलित तथा रेशे से युक्त होना चाहिए। इस अवस्था में व्यक्तिके आय सृजन में अत्यधिक व्यस्त होने के कारण शारीरिक क्रियाशीलता कम हो जाती है विशेषकर कम क्रियाशील व्यक्तियों में। ऐसी स्थिति में नियमित रूप से व्यायाम किया जाना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. .... में ऊतकों की टूट-फूट अधिक नहीं होती तथा शरीर में उनके क्षय की आपूर्ति की पर्याप्त क्षमता होती है।
   b. रिक्शा चालक .... व्यक्तियों की श्रेणी में आते हैं।
   c. .... व्यक्ति के पाचन स्वास्थ्य हेतु लाभकारी है।
   d. प्रौढ़ावस्था में शरीर की हड्डियों की सघनता में कमी आने लगती है जिस कारण .... रोगों के होने की सम्भावना होती है।

5.5 सारांश

किशोरावस्था परिवर्तन की अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति के शरीर में कई शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक परिवर्तन होते हैं। इस अवस्था में शारीरिक वृद्धि की गति अत्यंत तीव्र होती है जिसके अंतर्गत अस्थियों का बढ़ना, मांसपेशियों में वृद्धि, लड़कों में कंधों का चौड़ा होना, शरीर में बालों का उगना, आवाज में भारीपन, लड़कियों में स्तनों का विकास, नितम्बों का बढ़ना, मासिक धर्म की शुरुआत आदि परिवर्तन दिखाई देते हैं। इस आयु में तेजी से हो रहे शारीरिक परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए किशोरों के पोषण पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास इसी अवस्था में होता है। किशोरावस्था में शारीरिक विकास के साथ मानसिक विकास भी अपने चरम पर होता है। किशोर इस अवस्था में अपने निर्णय स्वयं लेना पसंद करते हैं तथा किसी का दखल नहीं पसंद करते। उन पर अपने साथियों का अत्यधिक प्रभाव होता है। किशोर वास्तविक जगत में रहते हुए भी कल्पना के संसार में विचरण करता है। कल्पना के बाहुल्य के कारण उसमें दिन में ही स्वप्न देखने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। किशोरावस्था में तीव्र परिवर्तनों तथा संगत के प्रभाव से गलत आहार पद्धतियाँ विकसित हो सकती हैं। घर के अतिरिक्त किशोर अपना अधिकांश समय स्कूल तथा दोस्तों के साथ बिताते हैं जो उनकी आहार सम्बंधी आदतों को प्रभावित करता है। किशोर अक्सर अपना नियमित आहार छोड़कर ऐसे खाद्य पदार्थ खाना पसंद करते हैं जिनमें ऊर्जा

की मात्रा अधिक तथा पोषक तत्व कम होते हैं। ऐसे स्थिति में घर का आहार पौष्टिक तत्वों से भरपूर तथा संतुलित होना चाहिए। किशोरावस्था में मोटापा तथा एनीमिया जैसी पोषण सम्बंधी समस्याएं देखी जाती हैं।

प्रौढ़ावस्था किशोरावस्था के पश्चात शुरु होने वाली अवस्था है। यह अवस्था शारीरिक वृद्धि की दृष्टि से जीवन की स्थाई अवस्था है जिसमें शरीर की पूर्ण वृद्धि हो गई होती है। इसलिए इस अवस्था में पोषक तत्वों की आवश्यकता शारीरिक वृद्धि के लिए न होकर शरीर की गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने के लिए होती है। यह अवस्था परिश्रम और व्यस्तता की अवस्था होती है। इस अवस्था को दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है: प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था तथा वृद्ध प्रौढ़ावस्था। इस अवस्था में आहार नियोजन आयु, लिंग तथा सक्रियता के आधार पर किया जाता है। कम तथा मध्यम क्रियाशील वयस्क को आहार में वसा की मात्रा सीमित रखनी चाहिए। आहार में फलों तथा सब्जियों का पर्याप्त समावेश होना चाहिए तथा पानी का समुचित मात्रा में सेवन करना चाहिए।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

- **वृद्धि स्फुरण (Growth Spurt):** कम समय में तीव्र एवं अचानक वृद्धि होना।
- **रक्तात्पता/एनीमिया (Anaemia):** रक्त में हीमोग्लोबिन का स्तर कम होने की स्थिति।
- **ऑस्टियोपोरोसिस (Osteoporosis):** एक स्थिति जिसमें हड्डियां कमजोर और भंगुर हो जाती हैं।
- **गठिया (Arthritis):** हड्डियों के जोड़ों की सूजन जिसमें दर्द और कठोरता हो सकती है। ये स्थिति आयु के साथ गम्भीर हो सकती है।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही अथवा गलत बताइए।
   a. गलत
   b. सही
   c. सही
   d. गलत
   e. सही

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था
   b. अधिक क्रियाशील

c. आहारीय रेशा

d. ऑस्टियोपोरोसिस और गठिया

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5. Dietary Guidelines for Indians- A manual, National Institute of Nutrition, Indian Council of Medical Research, Hyderabad, India, Second Edition, 2011.
6. वृंदा सिंह, आहार एवं पोषण विज्ञान (2016), चौदहवाँ संस्करण, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
7. डॉ0 रीना खनूजा, आहार एवं पोषण विज्ञान (2016/17), अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों की व्याख्या कीजिए।
2. किशोरावस्था में पोषक तत्वों की माँगों के बारे में चर्चा कीजिए।
3. किशोरों हेतु आहार नियोजन से पूर्व किन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है?
4. प्रौढ़ावस्था में पोषक तत्वों की माँगों का उल्लेख कीजिए।

इकाई 6: वृद्धावस्था में पोषण

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 वृद्धावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तन
6.4 वृद्धावस्था में पोषक तत्वों की मांग
6.5 वृद्ध व्यक्तियों के आहार में संशोधन
6.6 वृद्धावस्था के दौरान पोषण संबंधी समस्याएं
6.7 सारांश
6.8 पारिभाषिक शब्दावली
6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत अध्याय में आप वृद्धावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक परिवर्तनों एवं पोषक तत्वों की मांग के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। वृद्धावस्था जीवन का सबसे आखिरी पड़ाव है जो प्रौढ़ावस्था के बाद आता है। भारत में वृद्धावस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के पश्चात माना जाता है। इस अवस्था तक आते-आते मानव शरीर थकने लगता है। शारीरिक क्रियाएं आयु के साथ शरीर को शिथिल करने लगती हैं जो झुर्रियों के रूप में स्पष्ट होने लगती हैं। अधेड़ अवस्था आने तक व्यक्ति अनेक बीमारियों से ग्रसित हो जाता है। वृद्धावस्था में स्वास्थ्य बहुत हद तक प्रौढ़ावस्था के स्वास्थ्य, भोजन, व्यायाम, क्रियाशीलता आदि पर निर्भर करता है। यदि व्यक्ति प्रौढ़ावस्था में चुस्त, फुर्तीला एवं स्वस्थ रहता है तो निश्चित ही वह व्यक्ति वृद्धावस्था में भी स्वस्थ रहेगा। अर्थात एक स्वस्थ प्रौढ़ ही एक स्वस्थ वृद्ध बनता है। वृद्धावस्था में स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले केवल शारीरिक कारक ही नहीं बल्कि आर्थिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि कारकों के द्वारा भी वृद्ध का स्वास्थ्य प्रभावित होता है। इस अध्याय में हम वृद्धावस्था के दौरान होने वाले परिवर्तन के बारे में जानेंगे और ये जानेंगे कि कैसे वो व्यक्ति के पोषण स्तर को प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त वृद्धावस्था के दौरान विभिन्न पोषक तत्वों की मांग और आहार में जरूरी संसोधनों के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के निम्न उद्देश्य हैं:

- वृद्धावस्था के दौरान होने वाले परिवर्तनों के बारे में जानकारी प्राप्त करना;

- वृद्धावस्था में पोषक तत्वों की मांग के बारे में जानना;
- वृद्ध व्यक्तियों के आहार में संसोधनों के तरीके जानना; तथा
- वृद्धावस्था के दौरान होने वाली पोषण संबंधी समस्याओं की जानकारी प्राप्त करना।

6.3 वृद्धावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तन

वृद्धावस्था में शरीर में निम्न परिवर्तन देखे जाते हैं:

1. आधारीय चयापचय दर में कमी होना: वृद्धावस्था में शरीर में निर्माणात्मक कार्य नहीं होता है और न ही नये कोषों एवं तन्तुओं का निर्माण होता है। साथ ही वृद्धावस्था में शारीरिक क्रियाशीलता में भी कमी हो जाती है। इन सभी कारणों से आधारीय चयापचय दर में कमी हो जाती है। परिणामवश वृद्धावस्था में ऊर्जा की मांग अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा कम होती है।

2. अन्त: स्रावी ग्रंथियों से कम मात्रा में हार्मोन का स्रावण: वृद्धावस्था में अन्त: स्रावी ग्रंथियों से निकलने वाले हार्मोन की क्रियाशीलता में कमी होने के कारण शरीर में हार्मोन असंतुलन हो जाता है। स्त्रियों में 45-50 वर्ष की आयु में मासिक धर्म रूक जाता है तथा रजोनिवृत्ति हो जाती है। जिसके कारण शरीर में शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होते हैं जैसे चित्त में निरूत्साह, शरीर की शिथिलता, निद्रा न आना, सिर में तथा शरीर के अन्य भागों में दर्द रहना, बेचैनी होना, मानसिक तनाव, पाचन शक्ति कमजोर होना, स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाना आदि। थाइरॉइड तथा पैराथाइरॉइड ग्रंथियों से निकलने वाले हार्मोन के असन्तुलन से कैल्शियम का चयापचय ठीक से नहीं हो पाता जिसके कारण वृद्धों में अस्थि विकृति रोग (ऑस्टोपोरोसिस) हो जाता है जिसमें हड्डियां कमजोर और नाजुक हो जाती हैं। शरीर लगातार हड्डी के ऊतकों का अवशोषण कर उनको बदलता रहता है। किन्तु ऑस्टोपोरोसिस में नई हड्डी उतनी तेजी से नहीं बन पाती जितनी तेजी से पुरानी नष्ट हो जाती है। थाइरॉइड ग्रंथि की क्रियाशीलता में कमी के कारण भी वृद्धावस्था में कैलोरी की मांग में कमी हो जाती है।

3. नाड़ी संस्थान में परिवर्तन: आयु बढ़ने के साथ मस्तिष्क एवं नाड़ी संस्थान प्राकृतिक परिवर्तनों से गुजरता है। तंत्रिका कोशिकाएं कमजोर हो जाती हैं जो इंद्रियों को प्रभावित करती हैं जिसके कारण दृष्टि क्षमता, श्रवण क्षमता और सूंघने की क्षमता में कमी आ जाती है। सोचने और सीखनेकी क्षमता में काफी कमी आ जाती है जिसके कारण वृद्ध नई चीजों को सीखने से कतराते हैं।

4. स्वभाव में परिवर्तन: वृद्धावस्था में स्वभाव में भी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। अधिकांश वृद्ध चिड़चिड़े, क्रोधी, एवं गुस्सैल हो जाते हैं। वे बात बात पर रूठ जाते हैं तथा मनाने की अपेक्षा रखते हैं। उनका व्यवहार जिद्दी बालकों की भांति हो जाता है। इसका प्रमुख कारण तंत्रिका तंत्र में अव्यवस्था, हार्मोन असन्तुलन, आर्थिक विपन्नता, संवेगात्मक तनाव, सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आदि हो सकते हैं। साथ ही उनके स्वाद और सूंघने की शक्ति कम हो जाती है

जिसकी वजह से उन्हें भोजन के प्रति अरूचि हो जाती है। उनकी चाल में अन्तर आ जाता है और वो धीरे-धीरे चलने लगते हैं। पीठ वक्र हो जाती है और वे थोड़ा आगे की ओर झुककर चलने लगते हैं।

सेवानिवृत्ति के बाद अधिकांश वृद्धों के मन में निराशा भर जाती है। वे स्वयं को अकेला महसूस करने लगते हैं क्योंकि उनके बच्चों की शादी हो जाती है और वे अपना अपना घर बसा लेते हैं। एकाकी परिवार होने के कारण वृद्धों का जीवन घुटन भरा हो जाता है। इन सबके बावजूद यदि उनके जीवन साथी की मृत्यु हो जाती है तो स्थिति और भी भयावह हो जाती है। विशेषकर वृद्ध स्त्री दु:ख, अवसाद, निराशा, उदासी तथा अकेलापन से घिर जाती है। उसके मन में जीवन जीने की लालसा, खुशी, उल्लास एवं उत्साह सब समाप्त हो जाता है। वह स्वयं को परिवार तथा समाज से अपेक्षित एवं तिरस्कृत महसूस करने लगती है। इन कारणों से उसे भूख कम लगती है। कभी-कभी वह भोजन करने से इंकार कर देती है। इन सबका प्रतिकूल प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर पड़ता है।

5. कंकाल तंत्र तथा दांतों में परिवर्तन: वृद्धावस्था में अस्थि विकृति रोग (ऑस्टोपोरोसिस) हो जाता है। इस रोग में अस्थियों से कैल्शियम एवं फॉस्फोरस लवण निकलने लगते हैं। परिणामत: अस्थियाँ कमजोर और भंगुर हो जाती हैं और जरा सा गिरने अथवा चोट लगने से टूट जाती हैं। वृद्धावस्था में टूटी हुई हड्डियाँ आसानी से जुड़ती भी नहीं हैं। इन्हीं सब कारणों से वृद्धावस्था में कैल्शियम लवण की माँग बढ़ जाती है।

साथ ही वृद्धावस्था में दाँत और मसूढ़े कमजोर हो जाते हैं। मसूढ़ों के कमजोर होने से दाँत गिरने लगते हैं। दाँत टूटने से भोजन चबाने एवं निगलने में काफी परेशानी होती है। इसलिए वृद्ध लोग मुलायम या कुचला खाना व तरल भोजन ज्यादा पसंद करते हैं।

6. पाचन अंगों में परिवर्तन: वृद्धावस्था में पाचन तंत्र में काफी बदलाव आते हैं जैसे उदर पहले के मुकाबले आकार में छोटा हो जाता है। भोजन को ड्यूडेनम में पहुँचने में अधिक समय लगता है जिससे पेट में एक भारीपन का अहसास और असुविधा सी महसूस होती है। आमाशय से आमाशयिक रस का स्रावण कम होने लगता है। जिसके कारण भोजन का पाचन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। पाचक रसों के सही से काम न कर पाने के कारण कैल्शियम तथा लौह लवण का अवशोषण भी उचित प्रकार से नहीं हो पाता है। आँतों की क्रमानुकुंचन गति में शिथिलता आ जाती है जिस कारण से कब्ज की शिकायत रहने लगती है। छोटी आँतों की दीवारें क्षयग्रस्त और कमजोर हो जाती हैं जिसके कारण भोजन का अवशोषण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। अत: शरीर में आवश्यक पौष्टिक तत्व नहीं पहुँच पाते हैं तथा कई पौष्टिक तत्वों की शरीर में कमी हो जाती है।

7. हृदय एवं रक्त परिसंचरण तंत्र में परिवर्तन: वृद्धावस्था में हृदय तथ रक्त परिसंचरण तंत्र में भी परिवर्तन हो जाता है। बढ़ती आयु के साथ हृदय और रक्त तथा कोशिकाओं से जुड़े कुछ भाग जैसे शिराएं और धमनी में रेशेदार ऊतक तथा वसा जमा हो जाते हैं जिसकी वजह से धमनियाँ कठोर हो जाती हैं। जब इनके माध्यम से अधिक रक्त पंप किया जाता है तो वे इसके अनुरूप फैल नहीं पातीं। परिणामस्वरूप, युवावस्था की तुलना में दिल बहुत धीमी गति से रक्त भर पाता है। वृद्धावस्था में दूसरे अंगों की तरह हृदय की कुछ कोशिकाएं भी नष्ट होने लगती हैं जिसकी वजह से हृदय इस समय युवावस्था की भांति रक्त पंप नहीं कर पाता। रक्त नलिकाओं की दीवारों में वसा जमा होने के कारण इसका ल्यूमेन छोटा हो जाता है जिसकी वजह से ऐथेरोस्केलेरोसिस एवं हृदय से संबंधित अन्य रोग भी व्यक्ति को घेर लेते हैं।

8. त्वचा में परिवर्तन: वृद्धावस्था में त्वचा, बालों एवं नाखूनों में भी परिवर्तन हो जाता है। त्वचा रूखी सूखी, बेजान, कांतिहीन एवं झुर्रीदार हो जाती है क्योंकि कोशिकाओं के जीवद्रव्य के संगठन में अन्तर आ जाता है। कोशिकाओं का विनाश अधिक होने लगता है। त्वचा मांसपेशियों और अस्थियों से अलग होकर झुर्रियों के रूप में लटकती हुई नजर आने लगती है। त्वचा का लचीलापन समाप्त हो जाता है। वृद्धावस्था में सेबेशियस ग्रंथियां कम तेल का उत्पादन करती हैं जो त्वचा को नम रखने के लिए कठिन बना सकता है जिसके परिणामस्वरूप सूखापन और खुजली हो सकती है। आयु बढ़ने के साथ, त्वचा अधिक पतली और नाजुक हो जाती है और उसके नीचे की सुरक्षात्मक वसा परत खो जाती है जिससे त्वचा पर चोट लगने का खतरा बढ़ जाता है और स्पर्श, दबाव, कंपन, गर्मी और ठंड का एहसास करने की क्षमता कम हो जाती है। बाल सफेद हो जाते हैं। नाखून कड़े एवं चमकहीन हो जाते हैं।

9. उत्सर्जी संस्थान में परिवर्तन: वृद्धावस्था में उत्सर्जी संस्थान में भी परिवर्तन हो जाता है। गुर्दे मूत्र प्रणाली का हिस्सा हैं जिसमें मूत्रवाहिनी, मूत्राशय और मूत्रमार्ग भी शामिल हैं। वृद्धावस्था में गुर्दों में उतकों की मात्रा में कमी आ जाती है। नेफ्रॉन की संख्या घट जाती है जो रक्त से अपशिष्ट पदार्थ को छानने का कार्य करते हैं और गुर्दे की आपूर्ति करने वाली रक्त वाहिकाएं कठोर हो जाती हैं जिसकी वजह से गुर्दे, धीरे-धीरे रक्त को छानते हैं। मूत्राशय की दीवार में बदलाव आते हैं जैसे लोचदार ऊतक कठोर हो जाते हैं और मूत्राशय कम खिंचाव वाला हो जाता है जिसकी वजह से मूत्राशय पहले की तरह अधिक मूत्र संचय नहीं रख सकता। मूत्राशय की मांसपेशियां कमजोर हो जाती हैं। इस वजह से वृद्ध व्यक्तियों को रिसाव या मूत्र असंयम (मूत्र को रोकने में सक्षम नहीं होना) या मूत्र प्रतिधारण (मूत्राशय को पूरी तरह से खाली करने में सक्षम नहीं होना) जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

10. सक्रिय तन्तुओं की संख्या में कमी: वृद्धावस्था में सक्रिय कोषों, तन्तुओं एवं ऊतकों की संख्या में काफी कमी हो जाती है। विशेषकर हृदय, मस्तिष्क, गुर्दे तथा अस्थिपेशियों के कोषों की काफी कमी हो जाती है और इनका पुन: निर्माण भी नहीं होता।

11. रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी: वृद्धावस्था में बीटा लिम्फोसाइट्स की संख्या में कमी होने के कारण, रोगों से लड़ने की शक्ति का ह्रास हो जाता है। इस कारण वृद्ध व्यक्ति सर्दी, जुकाम तथा अन्य संक्रामक बीमारियों से जल्दी ग्रस्त हो जाते हैं। प्रतिरक्षा प्रणाली की कोशिका दोषों का पता लगाने और सही करने की क्षमता भी कम हो जाती है। इससे कैंसर का खतरा भी बढ़ जाता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. सत्य अथवा असत्य बताइए।

   a. वृद्धावस्था में ऊर्जा की मांग अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा अधिक होती है।

   b. वृद्धावस्था में ऑस्टोपोरोसिस रोगों से बचाव हेतु कैल्शियम लवण की मांग बढ़ जाती है।

   c. मूत्राशय को पूरी तरह से खाली करने में सक्षम नहीं होने की स्थिति को 'मूत्रअसंयम' कहा जाता है।

d. वृद्धावस्था में रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी होने का कारण बीटा लिम्फोसाइट्स की संख्या में कमी है।

e. वृद्धावस्था में सेबेशियस ग्रंथियों से तेल के कम उत्पादन के कारण बाल सफेद होने लगते हैं।

6.4 वृद्धावस्था में पोषक तत्वों की मांग

वृद्धावस्था में शारीरिक, मानसिक तथा हार्मोन सम्बन्धी कई परिवर्तन होते हैं। वृद्धावस्था में शारीरिक क्रियाशीलता के कम होने के कारण कैलोरी की मांग 20 से 30 प्रतिशत तक कम हो जाती है। परन्तु प्रोटीन, लौह लवण, कैल्शियम एवं अन्य विटामिनों की माँग बढ़ जाती है। आई0सी0एम0आर0 द्वारा पोषक तत्वों की दैनिक प्रस्तावित मात्रा निर्धारित करने के लिए वृद्धावस्था को दो भागों में वर्गीकृत किया गया है जो तालिका 6.1 में दिखाया गया है।

तालिका 6.1: वृद्धों के लिए पोषक तत्वों की दैनिक प्रस्तावित मात्रा (आई0सी0एम0आर, 2000)

पोषण तत्व	पुरुष		महिलाएं	
	60-69 वर्ष	70 से अधिक वर्ष	60 – 69 वर्ष	70 से अधिक वर्ष
ऊर्जा (किलो कैलोरी)	1940	1697	1500	1312
प्रोटीन (ग्राम)	60	60	50	50
कैल्शियम (मि0ग्रा0)	400	400	400	400
लौह लवण(मि0ग्रा0)	28	28	30	30
विटामिन ए (माइक्रोग्राम)	600	600	600	600
थायमिन (मि0ग्रा0)	0.9	0.8	0.7	0.6
राइबोफ्लेविन (मि0ग्रा0)	1.1	0.9	0.8	0.7
नायसिन (मि0ग्रा0)	16	16	12	12
पाइरिडॉक्सिन (मि0ग्रा0)	2.0	2.0	2.0	2.0
विटामिन सी	40	40	40	40

(मि0ग्रा0)				
फोलिक अम्ल (माइक्रो ग्राम)	100	100	100	100
विटामिन बी$_{12}$ (माइक्रोग्राम)	1	1	1	1

कैलोरी: वृद्धावस्था में शरीर के कोषों, तन्तुओं एवं ऊतकों की क्षति अधिक होती है तथा निर्माण कार्य नहीं के बराबर होता है। आधारीय चयापचय व शारीरिक क्रियाशीलता में भी काफी कमी हो जाती है। इसलिए कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अत: वृद्धावस्था में साधारण परिश्रम करने वाले प्रौढ़ व्यक्तियों की कैलोरी मांग की तुलना में 20 से 30 प्रतिशत कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। आहार में कैलोरी की मात्रा बढ़ने से वजन बढ़ता है जो इस आयु के व्यक्ति के लिए बहुत नुकसानदायक होता है क्योंकि मोटापा स्वयं में एक बीमारी होने के साथ साथ कई अन्य बीमारियों को भी जन्म देता है।

प्रोटीन: वृद्धावस्था में शरीर के तन्तुओं में टूट फूट की क्रिया अधिक होती है। अत: तन्तुओं की टूट फूट की मरम्मत हेतु आहार में प्रोटीन का होना अत्यन्त आवश्यक है। इस आयु में पाचन तन्त्र में विकार उत्पन्न हो जाते हैं और मांस जैसे भोजन को पचाने में काफी मुश्किल होती है। इसलिए वृद्ध व्यक्तियों द्वारा प्रोटीन यदि प्राणिज स्रोत जैसे दाल, सोयाबीन आदि से लिया जाए तो बेहतर होता है। इस आयु में व्यक्ति अधिक भोजन ग्रहण नहीं कर पाता है किन्तु दूध एक ऐसा आहार है जिसको आसानी से लिया जा सकता है। दूध के सेवन से प्रोटीन के साथ ही कैल्शियम,फॉस्फोरस, विटामिन ए तथा विटामिन डी की भी पूर्ति हो जाती है।

वसा: वृद्धावस्था में वसा का प्रयोग कम किया जाना चाहिए क्योंकि वसा के अधिक सेवन से मोटापा बढ़ता है। मोटापे से कई बीमारियाँ जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप आदि उत्पन्न होते हैं। अधिक वसा के सेवन से अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है जो शरीर में वसीय ऊतकों के रूप में जमा होकर वजन बढ़ाती है। वृद्धावस्था में पाचन तंत्र कमजोर होने की वजह से वसायुक्त भोजन देर से पचता है जिससे बदहजमी, गैस, उल्टी, खट्टी डकारें आदि परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

कैल्शियम: वृद्धावस्था में आमाशय से जठर रस का स्रावण कम होता है जिसके कारण लौह लवण एवं कैल्शियम का अवशोषण कम हो पाता है तथा ये पोषक तत्व बिना अवशोषित हुए ही शरीर से निष्कासित हो जाते हैं। वृद्धावस्था में अस्थियाँ भी कमजोर एवं भुरभुरी हो जाती हैं जिससे अस्थि विकृति रोग हो जाता है। अत: वृद्ध व्यक्तियों के आहार में पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम अत्यन्त आवश्यक है। दूध, दही, छाछ, पनीर, हरी पत्तेदार सब्जियाँ कैलिशयम के अच्छे स्रोत हैं इसलिए इन्हें वृद्ध व्यक्तियों के आहार में इन्हें अवश्य सम्मिलित किया जाना चाहिए।

लौह लवण: वृद्धावस्था में लौह लवण का अवशोषण प्रभावित होने की वजह से व्यक्ति में लौह तत्व की कमी हो जाती है जिसे रक्त अल्पता/एनीमिया कहा जाता है। अत: आहार में लौह लवण युक्त भोजय पदार्थों को अवश्य ही सम्मिलित किया जाना चाहिए।

विटामिन ए: वृद्धावस्था में आँखों की रोशनी कम हो जाती है जिसकी वजह से वृद्ध व्यक्तियों को धुंधला दिखाई देता है। स्वस्थ आँखों व स्वस्थ त्वचा के लिए आहार में पर्याप्त मात्रा में विटामिन ए लेना बहुत आवश्यक है। विटामिन ए की पर्याप्त मात्रा लेने के लिए आहार में पत्तेदार सब्जियाँ, पीले फल, दूध, अंडा, मक्खन आदि शामिल किया जाना चाहिए।

विटामिन बी समूह: वृद्धावस्था में नाड़ी संस्थान कमजोर हो जाता है। इस कारण वृद्ध व्यक्तियों की ध्राण क्षमता, दृश्य क्षमता, श्रवण क्षमता तथा स्वाद क्षमता में कमी आ जाती है और साथ ही भूलने की बीमारी भी हो जाती है। वृद्धावस्था में इन समस्याओं से बचने के लिए आहार में पर्याप्त मात्रा में विटामिन बी समूह लेने चाहिए। तालिका 6.1 में देखा जा सकता है कि पाइरिडॉक्सिन, फोलिक अम्ल तथा विटामिन बी$_{12}$ की दैनिक माँग वृद्ध पुरूषों एवं महिलाओं के दोनों वर्गों के लिए समान है जबकि नायसिन की दैनिक माँग पर आयु का प्रभाव नहीं है किन्तु पुरूषों और महिलाओं में इसकी आवश्यकता में थोड़ा अंतर है। थायमिन और राइबोफलेविन की दैनिक आवश्यकता वृद्ध पुरूषों एवं महिलाओं के लिए भिन्न है और 70 वर्ष के पश्चात इनकी दैनिक मांग भी पुरूषों एवं महिलाओं में कम होती है।

विटामिन सी: मसूढ़ों एवं दाँतों के स्वास्थ्य, त्वचा के स्वास्थ्य तथा रोग रोधक क्षमता में वृद्धि के लिए आहार में विटामिन सी का होना अति आवश्यक है। विटामिन सी के अभाव में वृद्धों की रोगरोधक क्षमता में कमी आ जाती है जिसकी वजह से उन्हें सर्दी, जुकाम, बुखार और संक्रमण से होने वाली बीमारियाँ जल्दी घेर लेती हैं। इस कारण पोषक तत्वों का अवशोषण ठीक से नहीं हो पाता और व्यक्ति का पोषण स्तर और अधिक गिर जाता है। इसलिए इन बीमारियों से बचाव के लिए आहार में विटामिन सी का पर्याप्त मात्रा में होना अति आवश्यक है। इसकी पूर्ति के लिए आहार में नींबू, संतरा, अमरूद, आँवला आदि फलों का समावेश करना चाहिए।

विटामिन डी: कैल्शियम एवं फॉस्फोरस के अवशोषण हेतु आहार में पर्याप्त मात्रा में विटामिन डी होना चाहिए। सूर्य की प्राय: कालीन किरणें विटामिन डी का अच्छा स्त्रोत हैं किन्तु यदि वृद्ध व्यक्ति चलने में असमर्थ है तो आहार के माध्यम से पर्याप्त विटामिन डी दिया जाना चाहिए।

जल: वृद्धावस्था में जल भी अत्यन्त आवश्यक है। शरीर की विभिन्न क्रियाओं के समुचित सम्पादन के लिए जल की जरूरत होती है। अत: जल पर्याप्त मात्रा में लेना चाहिए। जल की पूर्ति हेतु आहार में दूध, फलों का रस, सब्जियों का सूप, शिकंजी आदि का समावेश करना चाहिए।

आहारीय रेशा: वृद्धावस्था में आँतों की पेशियाँ कमजोर होने की वजह से प्राय: कब्ज की शिकायत रहती है। कब्ज की स्थिति से बचने के लिए वृद्ध व्यक्तियों के आहार में रेशा पर्याप्त मात्रा में सम्मिलित करना चाहिए। यद्यपि रेशे का कोई पोषक मूल्य नहीं होता है फिर भी आहार में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। कब्ज के अलावा, अन्य बीमारियों जैसे

मोटापा, मधुमेह, हृदय संबंधित रोग आदि से बचाव में भी रेशे का महत्वपूर्ण योगदान है। फल, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, भिंडी, पत्तागोभी, मूली, गाजर, चुकन्दर, खीरा,ककड़ी, तोरई आदि में रेशा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहता है। वृद्ध व्यक्ति की आँतों की श्लैष्मिक झिल्लियाँ कठोर छिल्के वाली सब्जियाँ, आटे का चोकर, सहजन की फलियाँ आदि को सहन करने की क्षमता नहीं रखती। अत: इनसे बचना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   a. वृद्धावस्था में आमाशय से जठर रस का स्रावण घटने की वजह से .... एवं .... का अवशोषण कम हो जाता है।
   b. वृद्ध व्यक्तियों में प्रतिदिन .... माइक्रो ग्राम विटामिन ए की आवश्यकता होती है।
   c. वृद्धावस्था में संक्रमित बीमारियों से दूर रहने के लिए प्रतिदिन .... मि0ग्रा0 विटामिन सी का सेवन करना चाहिए।
   d. आई0 सी0 एम0 आर0 के अनुसार 70 से अधिक वर्ष के पुरूषों को आहार में .... किलो कैलोरी लेनी चाहिए।
   e. वृद्धावस्था में कब्ज की परेशानी से बचने के लिए आहार में .... को सम्मिलित करना चाहिए।

6.5 वृद्ध व्यक्तियों के आहार में संशोधन

वृद्धावस्था में शारीरिक व मानसिक विकास थम जाता है एवं शारीरिक क्रियाएं धीमी पड़ जाती हैं। बुढ़ापे में कम मात्रा में किन्तु पौष्टिकता से परिपूर्ण भोजन उनकी धीमी शारीरिक क्रियाओं को निष्पादित करने में सहायक सिद्ध होता है। वृद्ध व्यक्तियों के लिए आहार नियोजन करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:

- वृद्धों का भोजन आसानी से चबाने योग्य होना चाहिए ताकि वे उसे अच्छी तरह चबाकर खा सकें और साथ ही भोजन सुपाच्य हो जिससे उन्हें खाना खाने के पश्चात बदहजमी की शिकायत न रहे। उसके लिए जरूरी है कि उनका भोजन तला भुना व अधिक मिर्च मसालेदार न हो।
- आहार नियोजन करते समय कैलोरी मूल्य पर विशेष ध्यान दिए जाना चाहिए। अत: आहार नियोजन इस तरह का हो जिससे वृद्ध को उतनी ही कैलोरी मिले जितने की उन्हें आवश्यकता हो। अतएव तले हुए या ज्यादा तेल से बने हुए खाद्य पदार्थ कम लेने चाहिए। इसके अलावा मिठाई, गुड़ व शक्कर के सेवन में कमी करनी चाहिए ताकि शरीर का भार न बढ़े। किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रहे कि उस भोजन से बाकी पौष्टिक तत्वों की पूर्ति हो रही हो।
- वृद्धों में कब्ज की शिकायत न हो इसके लिए रेशेदार भोज्य पदार्थों जैसे नरम सब्जियों और फलों का प्रयोग किया जाना चाहिए। ये रक्त में शर्करा के स्तर को तेजी से बढ़ने नहीं देते और कोलेस्ट्रॉल को भी नियंत्रित रखते हैं। इसके

साथ ही तरल तथा अर्ध ठोस भोज्य पदार्थों जैसे सूप, फलों का रस, दलिया, खिचड़ी आदि को भी आहार में सम्मिलित करना चाहिए।

- वृद्धावस्था में अस्थि विकृति व रक्ताल्पता होने की अधिक संभावना होती है। अत: उनके आहार में पर्याप्त मात्रा में दूध, दूध से बने व्यंजन, यकृत, मांस एवं हरी पत्तेदार सब्जियाँ होनी चाहिए।
- वृद्धों में प्रोटीन की पूर्ति हेतु आहार में पर्याप्त मात्रा में प्राणिज भोज्य पदार्थ जैसे दूध, मांस, मछली, अंडा तथा दालों का समावेश होना चाहिए। यह प्रोटीन कोशिकाओं की टूट फूट की मरम्मत करता है।
- विटामिन सी की पूर्ति हेतु आहार में नींबू, संतरा, अमरूद, आँवला तथा अन्य खट्टे फलों को सम्मिलित करना चाहिए।
- वृद्धों की रूचि को ध्यान में रखते हुए उनके लिए आहार नियोजन करना चाहिए ताकि वो प्रसन्नतापूर्वक अपने भोजन का आनन्द ले सकें। उनके आहार में विविधता लाने के लिए, बदल बदलकर व्यंजन देने चाहिए। इससे उनकी खाने में रुचि भी बनी रहती है।
- वृद्धों में प्राय: कई प्रकार के विटामिनों की कमी हो जाती है। इसलिए यह सुनिश्चित करें कि उनके भोजन में सभी आवश्यक विटामिनों की समुचित मात्रा रहे। यदि उनके भोजन में सभी विटामिन की समुचित मात्रा न हो तो उन्हें मल्टी विटामिन की गोली प्रतिदिन देनी चाहिए।
- यदि एक समय में वृद्ध व्यक्ति पूरा आहार नहीं ले पाता है। इसलिए छोटे आहार कम समय के अन्तराल पर दिये जाने चाहिए।

6.6 वृद्धावस्था के दौरान पोषण संबंधी समस्याएं

वृद्धावस्था के दौरान व्यक्ति को कई तरह की बीमारियाँ घेर लेती हैं। कुछ बीमारियाँ खराब पोषण की वजह से होती हैं जबकि कुछ बीमारियों की वजह से पोषण स्तर खराब हो जाता है। एक बार रोग हो जाने पर स्वस्थ होने में बहुत समय लगता है और अनावश्यक रूप से खर्च और तनाव होता है। इसलिए कहा जाता है कि परहेज सबसे अच्छा उपचार है। तो आइए वृद्धावस्था में होने वाली बीमारियों और उनके निवारण के बारे में जानते हैं।

1) गठिया और अस्थिविकृति: 55 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति में गठिया (जोड़ों का दर्द) की शिकायत अक्सर देखी जाती है और इसकी वजह से उन्हें चलने फिरने में परेशानी का सामना करना पड़ता है। कई बार अपने भोजन के लिए उन्हें दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है जिसकी वजह में उनका पोषण स्तर काफी गिर जाता है। अस्थि विकृति में हड्डियों से कैल्शियम तथा फॉस्फोरस खुरचकर निकलने लगता है जिसकी वजह से हडडियाँ कमजोर और भंगुर हो जाती हैं। इसलिए वृद्ध व्यक्तियों के आहार में पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम शामिल किया जाना चाहिए। शरीर में कैल्शियम के अवशोषण में विटामिन डी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है इसलिए उनके आहार में विटामिन डी की भी पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए।

2) मधुमेह: वृद्धावस्था में मधुमेह एक आम समस्या होती है। खासतौर पर यदि परिवार में कोई इस बीमारी से ग्रसित होता है तो इसके होने की संभावना और भी बढ़ जाती है। मधुमेह में रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है। मधुमेह रोग को साइलेंट किलर के नाम से भी जाना जाता है। इससे हृदय, आँख, गुर्दे और पैरों को नुकसान सहित कई जटिलताएं हो सकती हैं। वृद्धावस्था में मधुमेह को नियंत्रण में रखने के लिए पूरे दिन नियमित समय पर सही आाहर लेना आवश्यक है। आहार में वसा, चीनी, मीठी चीजें आदि न लें। कम कैलोरी युक्त किन्तु पौष्टिक आहार लें। आहार में रेशा युक्त तथा कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स वाला भोजन सम्मिलित करें। किसी भोज्य पदार्थ का ग्लाइसेमिक इंडेक्स वह माप है जो बताता है कि उसे खाने से कितनी देर में रक्त में शर्करा का स्तर बढ़ता है। उदाहरण के लिए ज्यादातर ताजे फल और सब्जियाँ (आलू और तरबूज को छोड़कर), चोकर समेत गेहूँ की रोटियाँ, मोटे अनाज, साबुत दालें, दूध, दही, फलियाँ आदि कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स वाले खाद्य पदार्थ मधुमेह रोगियों को दिये जा सकते हैं। संतुलित आहार के साथ, वृद्धों को हल्का फुल्का व्यायाम या सैर को भी अपनी दिनचर्या में शामिल करना चाहिए।

3) रक्तचाप एवं हृदय संबंधी रोग: रक्त के परिसंचरण से रक्त वाहिकाओं की दीवारों पर पड़ने वाले दबाव को रक्तचाप कहते हैं जो सामान्य अवस्था में 120/80 mm Hg होता है। वृद्धावस्था में रक्तचाप के स्तरों में भारी उतार चढ़ाव देखा जाता है जो कई बार उनके लिए घातक साबित हो सकता है। उक्त रक्तचाप जिसे साइलेंट किलर कहा जाता है, वृद्ध लोगों में एक बड़ी स्वास्थ्य समस्या है। यदि उच्च रक्तचाप को जीवनशैली में बदलाव व दवाइयों से नियंत्रित नहीं किया जाता है तो इससे हृदय रोग, स्ट्रोक, आँखों की समस्याएं, गुर्दे की विफलता जैसी स्वास्थ्य समस्याएं हो सकती हैं। अल्प रक्तचाप की स्थिति में व्यक्ति को ज्यादा से ज्यादा पानी, लाभदायक फलों के रस व अल्कोहॉल रहित पेय पदार्थों का सेवन करना चाहिए। वृद्धावस्था में ज्यादातर उच्च रक्तचाप की समस्या देखी जाती है पर कभी कभी वो अल्प रक्तचाप से भी पीड़ित हो सकते हैं जिसकी वजह से कमजोरी, चक्कर या बेहोशी हो सकती है। इसका मुख्य कारण खून की कमी या पर्याप्त तरल पदार्थ न लेना या कभी कभी कोई चिकित्सीय स्थिति हो सकती है।

जैसे कि पहले भी बताया गया है कि बढ़ती आयु के साथ, हृदय संबंधित रोग होने की संभावनाएं भी बढ़ जाती हैं। वृद्धावस्था में इन सभी समस्याओं को नियंत्रित करने के लिए जरूरी है कि उच्च रक्तचाप और रक्त कोलेस्ट्रॉल स्तरों को रोकने अथवा कम करने के लिए संतुलित आहार लें जिसमें रेशेयुक्त फल एवं सब्जियाँ, जल, अल्प वसा दूध एवं दूध से बने खाद्य पदार्थों पर जोर दिया जाए। नमक, शर्करा, वसा का उपयोग न के बराबर करें। अल्कोहॉल व धूम्रपान से बचें और शरीर के वजन को कम करने के लिए नियमित सैर व व्यायाम करें।

4) अल्जाइमर रोग: अल्जाइमर धीरे धीरे पनपने वाला रोग है जो मस्तिष्क के उस भाग में शुरू होता है जो स्मरण शक्ति को नियंत्रित करता है। इस रोग में बुद्धि, भावों और व्यवहार की क्षमता पर बहुत प्रभाव पड़ता है। कई बार व्यक्ति खाना खाकर भूल जाता है कि उसने खाना खा लिया है और कई बार वो भोजन ग्रहण करना ही भूल जाता है जिसकी वजह से व्यक्ति का पोषण स्तर बिगड़ जाता है। इस रोग से बचने के लिए जरूरी है कि व्यक्ति स्वयं को मानसिक रूप

से व्यस्त रखे। वो अपना समय अपनी किसी रूचि की क्रिया जैसे नृत्य, गाना, योग, पूजा, किताबें पढ़ना, खेलना, लोगों से बातें करना आदि में व्यतीत करे। साथ ही संतुलित पौष्टिक आहार ले और अल्कोहॉल और धूम्रपान से बचे।

5) गुर्दे का रोग: 60 वर्ष के पश्चात गुर्दे की बीमारी होने की संभावना अधिक होती है। अधिक आयु के अलावा, गुर्दे के रोग के अन्य प्रमुख कारक हैं- मधुमेह, उच्च रक्तचाप एवं गुर्दे की विफलता का पारिवारिक इतिहास। इस रोग में गुर्दे खराब होने, हृदय धमनी रोग होने तथा मृत्यु होने का जोखिम रहता है। गुर्दे के रोगों की रोकथाम के लिए जरूरी है कि वजन को नियंत्रण में रखा जाए। व्यक्ति का आहार नियोजन इस तरह किया जाए जिससे रक्तचाप तथा रक्त में शर्करा, कोलेस्ट्रॉल व ट्राइग्लिसाइराइड्स का स्तर नियंत्रण में रहे। वृद्धों को धूम्रपान व तम्बाकू आदि का सेवन भी नहीं करना चाहिए।

6) नेत्र का रोग: वृद्धावस्था में शरीर के अन्य शारीरिक कार्यों की तरह, आँखों की रोशनी भी प्रभावित होती है और व्यक्ति को सूखी आँखें, मोतियाबिंद और दृष्टि की हानि आदि परेशानियों का सामना करना पड़ता है। जो वृद्ध व्यक्ति मधुमेह रोग से ग्रस्त होते हैं उन्हें डायबिटिक रेटिनोपैथी की समस्या का सामना करना पड़ता है। जीवनशैली का दृष्टि पर सीधा प्रभाव पड़ता है। संतुलित आहार खाने से खासतौर पर वह आहार जिसमें विटामिन ए की पर्याप्त मात्रा होती है, आँखों की कई बीमारियों को रोकने में मदद मिलती है। कई अध्ययनों से पता चलता है कि ओमेगा 3 वसीय अम्ल और एंटीऑक्सिडेंट से भरपूर आहार मोतियाबिंद के जोखिम को कम करता है। आँखों के कई रोगों के लिए धूम्रपान एक प्रमुख जोखिम कारक है। अत: इससे बचना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 3

1. सत्य अथवा असत्य बताइए।
   a. वृद्धावस्था में अलजाइमर रोग होने से स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है।
   b. मधुमेह रोग को साइलेंट किलर के नाम से भी जाना जाता है।
   c. वृद्धावस्था में नेत्र संबंधित विकारों से दूर रहने के लिए, आहार में विटामिन डी लेने की सिफारिश की जाती है।
   d. उक्त रक्तचाप से पीड़ित वृद्धों को कम नमक वाला भोजन लेना चाहिए।
   e. मधुमेह से ग्रस्त वृद्धों को अधिक ग्लाइसेमिक इंडेक्स वाले भोजन अपने आहार में सम्मिलित करने चाहिए।

6.7 सारांश

वृद्धावस्था में शरीर में कई तरह के परिवर्तन होते हैं जो पोषक तत्वों की माँग को भी प्रभावित करते हैं। साठ की आयु के बाद रक्तचाप बढ़ जाता है। प्रतिरक्षा प्रणाली को संक्रमण व अन्य रोगों से लड़ने में अधिक कठिनाई होने लगती है, स्मरण शक्ति क्षीण होने लगती है, हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं जिसकी वजह से चलने फिरने में परेशानी का सामना करना पडता है। स्वाद ग्रंथियाँ प्रभावित हो जाती हैं जिसकी वजह से भोजन में रूचि कम हो जाती है। पाचन तंत्र भी

कमजोर हो जाता है। इसके अलावा कई लोगों को गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं जैसे हृदय रोग ओर मुधमेह रोग आदि घेर लेते हैं। वृद्धों का आहार नियोजन करते समय उनकी स्वास्थ्य स्थिति एवं पोषण जरूरतों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। वृद्धावस्था में वयस्कों की तुलना में कम ऊर्जा की जरूरत होती है जबकि सूक्ष्म पोषक तत्वों में वृद्धि इस जीवन अवस्था के दौरान स्वास्थ्य को बनाए रखने में मदद करती है। उनके आहार में जल एवं रेशा को भी भरपूर मात्रा में सम्मिलित करना चाहिए। साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि वृद्धों का भोजन उनकी रूचि के अनुसार, आसानी से चबाया जाने वाला, सुपाच्य हो और छोटे छोटे अंतराल पर उन्हें दिया जाए। एक संतुलित आहार, बुढ़ापे में बीमारियों को दूर रखने में विशेष योगदान दे सकता है।

6.8 पारिभाषिक शब्दावली

- **आई0 सी0 एम0 आर0:** इन्डियन काउन्सिल ऑफ मेडिकल रिसर्च/ भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद।
- **आधारीय चयापचय दर:** शरीर के माध्यम से रक्त पंप करने, शरीर के तापमान को बनाए रखने, भोजन को पचाने और सांस लेने जैसी आधारभूत शारीरिक क्रियाओं को करने के लिए आवश्यक कैलोरी की संख्या।
- **डायबिटीक रेटिनोपैथी:** एक बीमारी, जिसमें मधुमेह से पीड़ित व्यक्ति की आँखों के रेटिना को रक्त पहुँचाने वाली महीन नलिकाएं क्षतिग्रस्त हो जाती हैं।
- **एंटीऑक्सिडेंट:** वह पदार्थ जो ऑक्सीजन या पेरोक्साइड द्वारा प्रोत्साहित प्रतिक्रियाओं को रोकता है।
- **एथेरोस्केलेरोसिस:** एक बीमारी जिसमें धमनियों के अंदर वसा, कोलेस्ट्रॉल, कैल्शियम और रक्त में पाए जाने वाले अन्य पदार्थ, प्लाक के रूप में जमने लगते हैं और धमनियों को कठोर व संकीर्ण बना देते हैं।
- **कब्ज:** वह स्थिति जिसमें व्यक्ति का मल बहुत कड़ा हो जाता है और उसे मल त्यागने में बहुत कठिनाई होती है।

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. सत्य अथवा असत्य बताइए।

   a. असत्य

   b. सत्य

   c. असत्य

   d. सत्य

   e. असत्य

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   a. लौह लवण, कैल्शियम
   b. 600
   c. 40
   d. 1697
   e. रेशे

अभ्यास प्रश्न 3

1. सत्य अथवा असत्य बताइए।
   a. सत्य
   b. असत्य
   c. असत्य
   d. सत्य
   e. असत्य

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Dietary Guidelines for Indians- A Manual National Institute of medical Research. Indian Council of Medical Research. Hyderabad, India second edition. 2011.
2. वृन्दा सिंह, आहार एवं पोषण विज्ञान (2016) चौदहवां संस्करण, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. वृद्धावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों के बारे में विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. वृद्धावस्था के दौरान स्वस्थ रहने हेतु विभिन्न पोषक तत्वों की मांग के बारे में बताइए।
3. वृद्ध व्यक्तियों के लिए आहार नियोजन करते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
4. वृद्धावस्था में किन बीमारियों के होने का खतरा रहता है और कैसे वो व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर को प्रभावित करती हैं?

खण्ड 2:
उपचारात्मक पोषण
एवं
आहार चिकित्सा- I

इकाई 7: उपचारात्मक आहार

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 उपचारात्मक आहार: परिभाषा
7.4 आहारीय चिकित्सा के सिद्धांत
7.5 सामान्य आहार का उपचारात्मक उद्देश्यों हेतु रूपांतरण
7.6 अस्पताल में रोगियों के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले आहार के प्रकार
7.7 विशेष आहार विधियाँ
7.7.1 पैरेन्टरल पोषण (Parenteral Nutrition)
7.7.2 एन्टरल पोषण (Enteral Nutrition)
7.8 सारांश
7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

उपचारात्मक आहार का अर्थ है एक ऐसा आहार जिसे एक विशेष बीमारी की स्थिति के लिए विशिष्ट रूप से योजनाबद्ध और अनुकूलित किया जाता है। रोगियों के चिकित्सकीय उपचार को ध्यान में रखते हुए इस आहार की योजना बनाई जाती है। इस इकाई में हम एक सामान्य व्यक्ति के नियमित आहार के संशोधनों और अनुकूलन के विभिन्न तरीकों के बारे में तथा विशेष रोग स्थिति के लिए विशेष रूप से नियोजित उपचारात्मक आहार के बारे में चर्चा करेंगे।

प्रत्येक आहार जो एक आहार विशेषज्ञ द्वारा उपचारात्मक आहार के रूप में निर्धारित किया जाता है, उसका एक औचित्य और उद्देश्य होता है। इस इकाई में हम उपचारात्मक आहार की परिभाषा और इसकी प्रासंगिकता, उपचारात्मक आहार में सामान्य या नियमित आहार को संशोधित करने के तरीके, विभिन्न प्रकार के आहार और विशेष रोग स्थितियों में भोजन के विभिन्न तरीकों के बारे में चर्चा करेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप;

- उपचारात्मक आहार अनुकूलन के उद्देश्य को जानेंगे;
- वे विधियाँ जिनके द्वारा सामान्य आहार को उपचारात्मक आवश्यकताओं के लिए संशोधित किया जा सकता है, के बारे में जानेंगे;
- विभिन्न प्रकार के आहारों (सामान्य, तरल, नरम आहार आदि) के बारे में चर्चा करेंगे, तथा
- पोषण की विशेष आहार विधियों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

7.3 उपचारात्मक आहार: परिभाषा

उपचारात्मक आहार एक सामान्य या एक नियमित आहार के रूपांतरण होते हैं। जैसा कि आप जानते हैं कि उपचारात्मक आहार रोग की स्थिति के लिए होते हैं, इसलिए सामान्य आहार को विशेष रोग की स्थिति के अनुसार संशोधित किया जाता है और ये संशोधन रोगियों की पोषण स्थिति, रोग की गंभीरता, रोगियों की आहार का उपभोग करने की स्थिति और शरीर में चयापचयी के परिवर्तन अनुसार भी होते हैं। कुछ स्थितियों में केवल पोषक तत्वों में परिवर्तन की आवश्यकता होती है, वहीं कुछ मामलों में आहार की सघनता में तथा आहार की ऊर्जा में वृद्धि या कमी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार सामान्य / नियमित आहार को संशोधित करने के प्रयोजन और उद्देश्य विविध हैं।

उपचारात्मक आहार को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है:

"एक मूल पौष्टिक आहार का मात्रात्मक/गुणात्मक रूप से संशोधित संस्करण जो रोगी की बदलती पोषण आवश्यकताओं तथा रोग की स्थितियों के अनुरूप रूपांतरित किया गया है"।

एक उपचारात्मक आहार की परिभाषा जानने के बाद, आइए हम नियमित आहार के संशोधनों के बहु उद्देश्यों को सूचीबद्ध करें:

- पोषण की स्थिति बनाए रखने के लिए,
- शरीर प्रणाली और प्रभावित अंग (जैसे गैस्ट्राइटिस की स्थिति में नरम या तरल आहार) को सहायता प्रदान करने के लिए,
- विशेष स्थिति में विशेष आहार प्रदान करना जैसे वसा कुअवशोषण की दशा में पाचन, अवशोषण, चयापचय और उत्सर्जन को सुविधाजनक बनाने के लिए कम वसा वाला आहार देना,
- आहार की स्थिति के अनुसार आहार को संशोधित करने के लिए जैसे ग्रासननली के कैंसर के रोगियों के लिए नली द्वारा पोषण,
- दांतों की समस्या (यांत्रिक कठिनाइयों) के रोगियों द्वारा भोजन अंतर्ग्रहण को सुविधाजनक बनाने के लिए और

- शरीर के वजन को बढ़ाने या घटाने के लिए उच्च कैलोरी और कम कैलोरी आहार।

रोग की स्थिति के लिए सामान्य आहार के संशोधनों के उद्देश्यों को जानने के बाद आप सोच रहे होंगे कि ये परिवर्तन रोगियों को कैसे लाभ पहुंचाते हैं और इसका क्या महत्व है? एक साधारण आहारीय संशोधन बीमारी और लक्षणों की प्रगति पर निगरानी रखता है जो अन्यथा हानिकारक हो सकता है। रोग प्रक्रिया आहार की गुणवत्ता और मात्रा दोनों को प्रभावित करती है, जिससे न केवल शरीर में विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता प्रभावित होती है, बल्कि भूख कम होने या अधिक भूख लगने जैसे लक्षण भी प्रभावित होते हैं। साथ ही किसी विशिष्ट पोषक तत्व के चबाने, निगलने, पाचन, अवशोषण में भी समस्या होती है जिससे शरीर द्वारा सहनीय भोजन के प्रकारों तथा खिलाए जाने की आवृत्ति में परिवर्तन हो सकता है।

उदाहरण के लिए, मधुमेह में दिन भर में समान रूप से कार्बोहाइड्रेट का वितरण करके लक्षणों को कम किया जा सकता है और मधुमेह के दीर्घकालिक परिणामों में विलम्ब भी किया जा सकता है। इसी तरह, आनुवंशिक विकारों में आहार में परिवर्तन से लक्षणों से राहत मिल सकती है और रोग प्रक्रिया में देरी हो सकती है। इस प्रकार, संशोधित आहार लक्षणों को कम कर सकता है तथा रोगी के जीवन की गुणवत्ता में सुधार कर सकता है।

अब तक आप इस तथ्य से परिचित होंगे कि सामान्य पोषण उपचारात्मक संशोधनों का आधार है। आहार और पोषण चिकित्सा का प्राथमिक सिद्धांत रोगियों की सामान्य पोषण आवश्यकताओं पर आधारित होता है। कोई भी उपचारात्मक आहार किसी विशिष्ट स्वास्थ्य स्थिति में व्यक्ति की सामान्य पोषण संबंधी जरूरतों का केवल एक संशोधन होता है। अनुशंसित आहारीय भत्ते (Recommended Dietary Allowances) का उपयोग अक्सर उपचारात्मक आहार की पर्याप्तता के मूल्यांकन के लिए एक आधार के रूप में किया जाता है। किसी विशेष रोग के लिए आहार की योजना बनाते समय रोग की स्थिति या विकार के लिए विशिष्ट पोषक आवश्यकताओं, जीवन शैली, आय, ज्ञान, स्वाद की प्राथमिकताएं, धार्मिक विश्वास और विभिन्न अन्य सामाजिक सांस्कृतिक कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

आइए अब हम उपचारात्मक आहार के इस भाग में जो हमने अध्ययन किया है, उसका पुनर्कथन करें।

अभ्यास प्रश्न 1

1. उपचारात्मक आहार को परिभाषित करें। उपचारात्मक आहार के महत्व की व्याख्या कीजिए।

   ....
   ....

2. उपचारात्मक आहार की योजना के उद्देश्यों की चर्चा करें।

   ....
   ....

3. बताइए कि उपचारात्मक आहार सामान्य आहार पर कैसे आधारित है?

....

....

7.4 आहारीय चिकित्सा के सिद्धांत

रोगियों के आहार की योजना बनाते समय कुछ विशेष बिंदुओं पर विचार किया जाना चाहिए। यदि इनका पालन नहीं किया जाता है, तो आहार को निर्धारित करना व्यवहारिक और वैज्ञानिक नहीं होगा और उपचारात्मक आहार का उद्देश्य प्राप्त नहीं हो पाएगा। आहार नियोजन के सिद्धांत निम्न दिए गए हैं:

- भोजन और पोषण (आहार विशेषज्ञ) के विशेषज्ञ द्वारा आहार नियोजन किया जाना चाहिए,
- आहार अनुशंसित आहारीय भत्ते के अनुसार होना चाहिए,
- आहार रोगियों की शारीरिक स्थिति के अनुसार होना चाहिए,
- आहार विशेषज्ञ को रोगियों की मनोवैज्ञानिक स्थिति का पता होना चाहिए,
- आहार आवास, आहारीय स्वरूप, व्यवसाय और रोगी की आर्थिक स्थिति के अनुसार होना चाहिए,
- आहार की योजना बनाने में चिकित्सक की सलाह भी ली जानी चाहिए,
- आहार विशेषज्ञ को रोगियों के रोग के इतिहास के बारे में पता होना चाहिए जैसे रोग की अवधि और एलर्जी की स्थिति,
- नियोजित आहार व्यवहारिक, अच्छी तरह से पकाया हुआ और आकर्षक होना चाहिए ताकि आहार न केवल पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा करे बल्कि रोगियों के मानस को भी संतुष्ट करे।

उपरोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, आहार में विभिन्न उपचारात्मक संशोधनों की आवश्यकता होती है। आइए इन पर चर्चा करें।

7.5 सामान्य आहार का उपचारात्मक उद्देश्यों हेतु रूपांतरण

सामान्य पोषण उपचारात्मक संशोधनों की नींव है। सामान्य आहार को विभिन्न रोगों के लिए परिवर्तित किया जाता है जो रोग के लक्षणों, उपापचयी और जैव रासायनिक परिवर्तन, रोगियों की शारीरिक स्थिति, रोगियों की आवश्यकता (ऊर्जा और अन्य पोषक तत्वों के लिए) और उपचार के स्तर पर निर्भर करता है। आहार के अनुकूलन में पोषक तत्व संशोधन और बनावट संशोधन शामिल हैं। पोषक तत्वों के संशोधनों में मिठास में बदलाव, कम सोडियम आहार, कम वसा वाले आहार और/या कम कोलेस्ट्रॉल आहार, उच्च रेशेयुक्त आहार आदि शामिल हो सकते हैं। आहार में बनावट संशोधन यांत्रिक नरम आहार और प्यूरी आहार बनाने के लिए किया जाता है।

उपचारात्मक आहार में जो आधारभूत बदलाव किए जाते हैं, वे निम्न हैं:

- खाद्य पदार्थों की सघनता में परिवर्तन,

- आहार के ऊर्जा मूल्य में वृद्धि या कमी,
- विशिष्ट पोषक तत्वों या उपभोग किए गए भोजन के प्रकार में वृद्धि या कमी,
- आहारीय रेशे में संशोधन,
- मसालों का उन्मूलन,
- विशिष्ट खाद्य पदार्थों को शामिल न करना/उन्मूलन आहार,
- प्रोटीन, वसा और कार्बोहाइड्रेट के अनुपात और संतुलन में समायोजन,
- भोजन की संख्या और आवृत्ति की पुनर्व्यवस्था,
- परीक्षण आहार,
- खिलाने के तरीकों में बदलाव।

आइए इन सभी परिवर्तनों की विस्तृत चर्चा करें।

खाद्य पदार्थों की सघनता में परिवर्तन

आहार की सघनता को बदलकर हम आहार को नरम, तरल या सामान्य बनाते हैं। विभिन्न रोग स्थितियों में जठरांत्र पथ प्रभावित होता है और कई बार विभिन्न कारणों से मरीज सामान्य आहार नहीं ले पाते हैं जैसे अतिसार, ज्वर, शल्य चिकित्सा के पश्चात, मुंह में अल्सर, पेप्टिक अल्सर आदि के मामले में। उदाहरण के लिए, मुंह के अल्सर होने की स्थिति में रोगी द्वारा सामान्य ठोस आहार नहीं चबाया जा सकता है और उसके द्वारा केवल तरल आहार को ही सहन किया जा सकता है। जबकि उच्च रक्तचाप या मधुमेह के मामले में सामान्य आहार सहन किया जाता है और इसे अनुशंसित किया जाता है। ये आहार बहुत कम अवशेष आहार से लेकर उच्च रेशेयुक्त आहार तक हो सकते हैं।

आहार के ऊर्जा मूल्य में वृद्धि या कमी

रोगी की आवश्यकताओं के आधार पर, आहार की ऊर्जा बढ़ाई या कम की जाती है। यह चयापचय परिवर्तन और रोगियों के गतिविधि स्वरूप में संशोधन के कारण होता है। हृदय रोग और मधुमेह के मामलों में, यदि रोगी मोटे या अधिक वजन वाले हैं, तो उन्हें कम ऊर्जा वाले आहार की सलाह दी जाती है। उच्च कैलोरी युक्त आहार कम वजन वाले रोगियों, तपेदिक के रोगियों, ज्वर, अतिगलग्रंथिता (hyperthyroidism) और जलने के रोगियों के लिए निर्धारित है।

विशिष्ट पोषक तत्वों या उपभोग किए गए भोजन के प्रकार में वृद्धि या कमी

कुछ रोग स्थितियों में एक या कुछ पोषक तत्वों के संयोजन को संशोधित किया जाता है। वनस्पति और प्राणिज प्रोटीन में उच्च आहार कुपोषण के उपचार या मांसपेशियों को बढ़ाने के लिए अनुशंसित हैं। ज्वर, अतिगलग्रंथिता, जलने, शल्य चिकित्सा के पश्चात, अतिसार, वृद्धों तथा मदिरा का सेवन करने वाले व्यक्तियों हेतु उच्च प्रोटीन आहार निर्धारित

किया जा सकता है। दूसरी ओर हेपेटिक एन्सेफैलोपैथी, तीव्र और दीर्घकालीन ग्लोमेरुलोनेफ्राइटिस, तीव्र और दीर्घकालीन गुर्दे की विफलता आदि के लिए कम प्रोटीन आहार निर्धारित किया जाता है। उच्च रक्तचाप में सोडियम प्रतिबंधित तथा यकृत रोग में वसा प्रतिबंधित आहार अनुशंसित किया जाता है।

आहारीय रेशे में संशोधन

जठरांत्रीय विकारों में आमतौर पर आहारीय रेशे में संशोधन की आवश्यकता होती है। आमतौर पर गंभीर अतिसार, तीव्र विपुटीशोथ (acute diverticulitis), शल्य चिकित्सा के उपरान्त कम रेशेयुक्त आहार का उपयोग किया जाता है। उच्च रेशेयुक्त आहार शरीर के अपशिष्टों के उत्सर्जन में मदद करता है और कोलेस्ट्रॉल के स्तर को नियंत्रित करता है। इसलिए यह कब्ज एवं हृदय रोगों में लाभकारी होता है। जई, बीन्स, मटर और फल एवं सब्जियां (जैसे संतरा, नाशपाती, हरी सब्जियाँ, गाजर आदि) रेशे के समृद्ध स्रोत हैं।

मसालों का उन्मूलन

कुछ आहार रासायनिक तथा यांत्रिक बनावट एवं ऊष्णता को ध्यान में रखते हुए नरम तथा फीके बनाए जाते हैं ताकि पाचन पथ की जलन से बचा जा सके। जैसे पेप्टिक अल्सर, दाहक आंत्र रोग आदि में उत्तेजक और स्वाद में दृढ़ मसालों एवं सुगंधित फलों और सब्जियों से परहेज किया जाता है।

विशिष्ट खाद्य पदार्थों को शामिल न करना/उन्मूलन आहार

कुछ ऐसी स्थितियां हो सकती हैं जिनमें रोगियों को कुछ खाद्य पदार्थों से एलर्जी होती है। इसलिए खाद्य एलर्जी अथवा असहिष्णुता का पता लगाने के लिए भोजन या खाद्य पदार्थों के छोटे समूह को निकाल के एक आहार बनाया जाता है। सभी संदिग्ध खाद्य पदार्थों के लिए यह किया जाना आवश्यक होता है। आमतौर पर प्रोटीन खाद्य पदार्थ जैसे दूध, अंडे, मूंगफली, समुद्री खाद्य पदार्थ आदि का परीक्षण रोगियों की एलर्जी की स्थिति में इनकी भूमिका के लिए किया जाता है। सीलिएक रोग में, जठरांत्रीय म्यूकोसा गेहूं के प्रोटीन ग्लूटन के प्रति बहुत संवेदनशील हो जाता है। सीलिएक रोग के रोगियों के आहार से गेहूं और उसके उत्पादों को पूरी तरह से हटाया जाता है।

प्रोटीन, वसा और कार्बोहाइड्रेट के अनुपात और संतुलन में समायोजन

मधुमेह जैसे विकारों में, रोग की स्थिति का ध्यान रखने के लिए कार्बोहाइड्रेट, वसा और प्रोटीन की मात्रा को संतुलित करना पड़ता है। प्रोटीन का समायोजन कीटोजेनिक आहार में किया जाता है।

भोजन की संख्या और आवृत्ति की पुनर्व्यवस्था

मधुमेह, ज्वर, पेप्टिक अल्सर, अतिसार जैसी बीमारी की स्थितियों में रोगी एक समय में बड़ी मात्रा में खाद्य पदार्थों का उपभोग करने में सक्षम नहीं होते हैं। रोग के संकेत और लक्षणों को दूर करने के लिए लगातार अंतराल पर कम मात्रा में खाद्य पदार्थ का अंतर्ग्रहण आवश्यक हैं।

परीक्षण आहार

ये एकल भोजन या आहार होते हैं जो एक या कुछ दिनों तक चलते हैं, कुछ परीक्षणों के लिए रोगियों को दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए वसा अवशोषण परीक्षण का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि क्या स्टीटोरिया (मल में अतिरिक्त वसा की उपस्थिति) मौजूद है या नहीं।

खिलाने के तरीकों में बदलाव

कभी-कभी आहार मौखिक रूप से नहीं दिया जाता है या रोगी मौखिक रूप से आहार लेने में सक्षम नहीं होते हैं। इस स्थिति में खिलाने के अन्य मार्गों का उपयोग किया जाता है जैसे कि नली द्वारा आहार जिसे एंटीरल फीडिंग (enteral feeding) भी कहा जाता है और अंत:शिरा पोषण जिसे पैरेंन्टरल फीडिंग (parenteral feeding) भी कहा जाता है।

सामान्य आहार के रूपांतरण का जो भी तरीका हो, यह सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि रोग की स्थिति में सुधार के लिए रोगियों को सामान्य अनुशंसित आहार उपलब्ध किया गया हो। इस प्रकार उपचारात्मक आहार एक ऐसा आहार है जिसे विशेष रूप से रोग की विशिष्ट स्थितियों के लिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग तैयार किया जाता है। संशोधन में आहार के शारीरिक, यांत्रिक, मात्रात्मक या गुणात्मक पहलू हो सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1. आहार योजना के सिद्धांतों के बारे में चर्चा करें।

   ....

   ....

2. सामान्य आहार के उपचारात्मक संशोधनों से आप क्या समझते हैं? उपचारात्मक आहार में किए गए आधारभूत परिवर्तनों को सूचीबद्ध करें।

   ....

   ....

3. उन्मूलन आहार और परीक्षण आहार से आप क्या समझते हैं?

   ....

   ....

विशिष्ट रोग स्थितियों और रोगियों की शारीरिक स्थितियों के लिए आहार के बारे में विस्तार से अध्ययन करने के बाद आइए अब विभिन्न प्रकार के आहारों के बारे में चर्चा करें जो आमतौर पर अस्पताल में उपयोग किए जाते हैं।

7.6 अस्पताल में रोगियों के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले आहार के प्रकार

अस्पताल में विभिन्न प्रकार के आहार का उपयोग किया जाता है। अस्पतालों में जिन आहारों को परोसा जाता है, उन्हें उपचारात्मक आहार कहा जाता है और इन्हें मुख्य रूप से **सामान्य या नियमित आहार** और **संशोधित आहार** के

रूप में वर्गीकृत किया जाता है। संशोधित आहारों को तरल आहार और नरम आहार के रूप में वर्गीकृत किया गया है। तरल आहार पुन: दो प्रकार के होते हैं; स्पष्ट तरल और पूर्ण तरल आहार। यह नीचे दिए गए आरेख से अधिक स्पष्ट हो सकता है। (चित्र 7.1)

चित्र 7.1: आहार के प्रकार

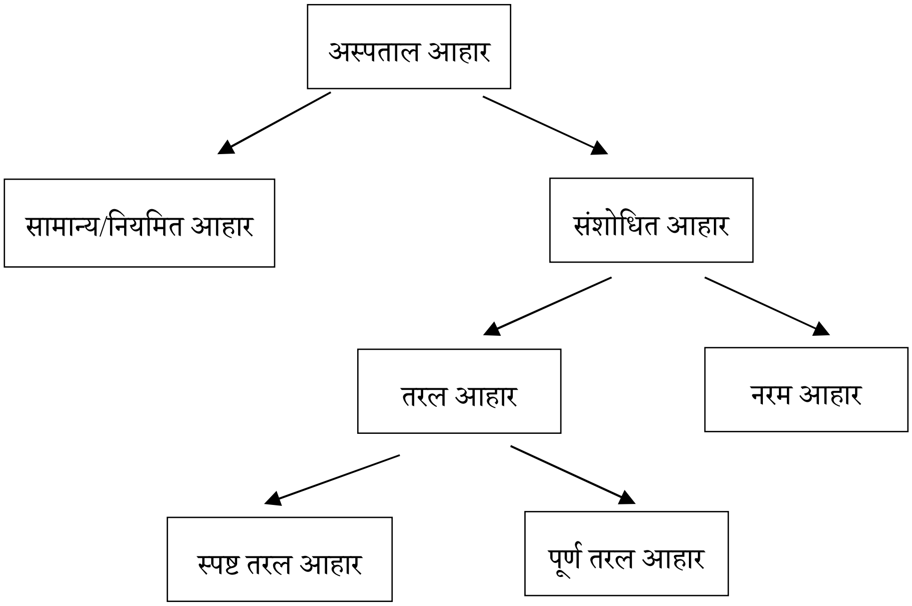

जैसा कि आप जानते हैं कि आहार में संशोधन रोगियों की शारीरिक और नैदानिक स्थिति के अनुसार होना आवश्यक है, जिनके बारे में पिछले अनुभाग में विस्तृत चर्चा की गई है। आइए अब यह समझें कि वास्तव में आहार के गुणात्मक और मात्रात्मक संशोधनों का क्या अर्थ है।

उपचारात्मक आहार की योजना बनाते समय आहार में गुणात्मक संशोधनों का अर्थ है आहार को व्यक्तिगत पसंद के आधार पर संशोधित करना, स्पष्ट दिशानिर्देश, भोजन सूची मार्गदर्शन और उपयुक्त निर्मित उत्पादों पर सलाह जैसी सहायक जानकारी उपलब्ध कराना। रोगी को प्रोत्साहित किया जाता है और उसे भोजन और आहार के बीच संबंध, भोजन का पोषणीय मूल्य तथा भोजन की आवृत्ति से अवगत कराया जाता है। विभिन्न गुणात्मक विधियों में निम्न सम्मिलित हैं:

- भारतीयों के लिए स्वस्थ भोजन के लिए भोजन आधारित दिशा निर्देश
- खाद्य गाइड पिरामिड
- वांछनीय खाद्य विकल्पों की सूची, और
- उन्मूलन आहार

मात्रात्मक तरीके मूल रूप से उपचारात्मक आहार के निर्माण के लिए दो तरीकों का उपयोग करते हैं। वे निम्न हैं:

1. **खाद्य विनिमय प्रणाली:** इस पद्धति में आहार का निर्माण एक विनिमय सूची से किया जाता है, जिसमें पोषक तत्वों के लिए समान खाद्य पदार्थों के प्रकार का आदान-प्रदान करने और रोगियों द्वारा आवश्यकतानुसार पूरे दिन वितरित करने का लाभ होता है। खाद्य विनिमय प्रणाली के बारे में आप प्रथम सेमेस्टर के खाद्य विज्ञान एवं पोषण विषय में विस्तारपूर्वक अध्ययन कर चुके हैं। यह प्रति खाद्य भाग पोषक तत्वों की एक निश्चित मात्रा वितरित करता है। उदाहरण के लिए, कार्बोहाइड्रेट विनिमय प्रणाली का उपयोग इंसुलिन निर्भर मधुमेह रोगियों के लिए आहार की योजना बनाने में किया जाता है। सेवन का वांछित स्तर प्रत्येक भोजन के लिए निर्दिष्ट किया जाता है और तदनुसार आहार में विविधता देने के लिए विभिन्न खाद्य पदार्थों को चुना जाता है।

2. **खाद्य पदार्थों के भाग के आकार और आवृत्ति को निर्धारित करना:** इस आहार का निर्माण खाद्य पदार्थों के सामान्य आकार के भागों से किया जाता है, लेकिन उन खाद्य पदार्थों, जिनमें प्रति भाग एक विशेष पोषक तत्व की उच्चतम मात्रा होती है, को आहार से बाहर रखा जाता है। जैसे सोडियम में समृद्ध खाद्य पदार्थ उच्च रक्तचाप से ग्रस्त रोगियों के आहार में शामिल नहीं किए जाते हैं। जब एक आहार रोग की स्थिति के लिए योजना बनाई जाती है जो मूल रूप में बहुक्रियाशील होती है तब विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों के सेवन की आवश्यकता पर विचार किया जाता है। उदाहरण हृदय धमनी रोग।

हालांकि प्रत्येक मामले में आहार का नियोजन पोषक तत्वों के अनुशंसित आहारीय भत्तों (RDA) के अनुरूप और खाद्य समूहों पर आधारित होता है। यह आमतौर पर क्षेत्र, अस्पताल के प्रकार और ग्राहकों के अनुसार नियोजित चक्रीय मेन्यू पर आधारित होता है। पोषण की पर्याप्तता रोगी के भोजन के चयन तथा रोगी के भोजन के सेवन पर निर्भर करती है। पर्याप्त पोषण का सेवन सुनिश्चित करने के लिए भोजन के चयन और भोजन के सेवन की निगरानी करना उपचारात्मक आहार विशेषज्ञ की जिम्मेदारी होती है।

विभिन्न प्रकार के आहार और आहार के निर्माण के विभिन्न पहलुओं और तरीकों को जानने के बाद, आइए अब विभिन्न प्रकार के आहारों के बारे में विस्तार से चर्चा करें।

I. **सामान्य आहार / नियमित आहार:** यह अस्पताल में भर्ती उन सभी रोगियों के लिए उपयोग किया जाने वाला आहार है, जिन्हें किसी प्रकार का आहार प्रतिबंध नहीं है। प्रतिबंध खाद्य पदार्थों के प्रकार, मात्रा और स्थिरता के संदर्भ में हो सकते हैं। सामान्य आहार को पूर्ण आहार या सामान्य आहार भी कहा जाता है।

"एक सामान्य आहार को उस आहार के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें एक स्वस्थ व्यक्ति द्वारा खाया गया कोई भी और सभी खाद्य पदार्थ होते हैं। सामान्य भोजन की योजना मूल खाद्य समूहों और RDA के अनुसार की जाती है, ताकि सभी पोषक तत्वों की इष्टतम मात्रा प्रदान की जा सके। इसमें किसी

भी तरह के भोजन का कोई प्रतिबंध नहीं होता है और यह अच्छी तरह से संतुलित और पौष्टिक रूप से पर्याप्त होता है"।

सामान्य आहार अस्पताल में भर्ती उन रोगियों के लिए होता है जिनकी उपचारात्मक स्थिति आहार में किसी भी उपचारात्मक संशोधन को प्रस्तावित नहीं करती है। ऐसे आहार ऊर्जा में 10 प्रतिशत की कमी की जानी चाहिए क्योंकि रोगी अस्पताल में बिस्तर पर आरामदायक स्थिति में होता है। एक नकारात्मक नाइट्रोजन संतुलन के प्रबंधन के लिए प्रोटीन को थोड़ा बढ़ाया जाता है। अन्य सभी पोषक तत्व अनुशंसित आहारीय भत्ते के अनुसार होते हैं। अस्पताल में सामान्य आहार आमतौर पर 1600-2000 किलोकैलोरी ऊर्जा और 60-80 ग्राम प्रोटीन प्रदान करता है। यह सभी रोगियों की पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा करता है।

अस्पताल में भर्ती रोगियों को सामान्य आहार/नियमित आहार देने के निम्न लाभ हैं:

- विशेष आहार पर नहीं होने से यह रोगी को मनोवैज्ञानिक संतुष्टि देता है।
- पोषण में संतुलित होता है।
- आहार की योजना बनाने में ज्यादा प्रयास नहीं करने होते हैं।
- रोगियों की पसंद और नापसंद के अनुसार संशोधित करने में आसान होते हैं।

अनुमेय खाद्य पदार्थ

- वे सभी खाद्य पदार्थ जो किसी व्यक्ति द्वारा सामान्य स्वास्थ्य में खाए जाते हैं।

प्रतिबंधित खाद्य पदार्थ

- तले हुए खाद्य पदार्थ जैसे समोसा, पकौड़े, प्यूरी आदि।
- वसा से भरपूर खाद्य पदार्थ जैसे हलवा, केक, पेस्ट्री आदि।
- मसालेदार भोजन
- सुगंधित खाद्य पदार्थ।

II. तरल आहार: जब भी रोगी कई कारणों जैसे कि ज्वर की स्थिति, शल्य चिकित्सा के बाद की स्थिति में ठोस खाद्य पदार्थों को सहन करने में असमर्थ होते हैं, तब उन्हें तरल आहार दिया जाता है। तरल आहार दो प्रकार के होते हैं; स्पष्ट तरल आहार और पूर्ण तरल आहार।

स्पष्ट तरल आहार: स्पष्ट तरल आहार खाद्य पदार्थ और तरल पदार्थ प्रदान करता है जो कमरे के तापमान पर स्पष्ट और तरल होते हैं। रोगी के नैदानिक स्थिति के आधार पर प्रदान किए गए तरल का प्रकार भिन्न हो सकता है। यह तीव्र अतिसार, दीर्घकालीन रोग, सर्जरी और मतली, उल्टी और एनोरेक्सिया के रोगियों को दिया जाता है। स्पष्ट तरल आहार का उद्देश्य निर्जलीकरण को रोकने के लिए तरल पदार्थ और इलेक्ट्रोलाइट्स प्रदान करना है। आहार कैलोरी

और आवश्यक पोषक तत्वों में अपर्याप्त होता है। स्पष्ट तरल आहार प्रोटीन, कैलोरी, विटामिन और खनिज पूरक के बिना 1 से 3 दिनों के लिए पोषण का एकमात्र स्रोत नहीं होना चाहिए।

स्पष्ट तरल आहार जठरांत्र मार्ग में न्यूनतम अवशेष छोड़ता है। यह जठरांत्र मार्ग की उत्तेजना को भी कम करता है। यह कम अवशेष सामग्री वाले खाद्य पदार्थों से बना होता है जो आंतों में पाचन की आवश्यकता वाले भोजन के भार को कम करने में मदद करते हैं।

स्पष्ट तरल आहार का उपयोग अंतःशिरा पोषण और एक पूर्ण तरल या ठोस आहार के बीच अवस्थापरिवर्तनकालिक चरण (transitional phase) में किया जाता है। यह जठरांत्र कार्यों में तीव्र गड़बड़ी के समय भी उपयोगी होता है। एक स्पष्ट तरल आहार पानी, कार्बोहाइड्रेट और कुछ इलेक्ट्रोलाइट्स से निर्मित होता है। यह आम तौर पर एक दिन में 400-500 किलो कैलोरी और 5 ग्राम प्रोटीन, नगण्य वसा और 100-120 ग्राम कार्बोहाइड्रेट प्रदान करता है।

अनुशंसित खाद्य पदार्थों में सम्मिलित हैं:

- स्पष्ट, वसा रहित सूप / शोरबा
- क्षीण कॉफी, चाय (बिना दूध या मलाई)
- छाना हुआ फलों का रस
- नारियल पानी, मट्ठा, जौ का पानी
- चीनी और नमक मिलाए हुए तरल पदार्थ
- कार्बोनेटेड पेय जो सहनीय हों
- ग्लूकोज का पानी, चूने का पानी, शहद

इन तरल पदार्थों (30 से 60 मिलीलीटर) की छोटी मात्रा को नियमित अंतराल पर द्रव और इलेक्ट्रोलाइट हानि के लिए दिया जाता है।

पूर्ण तरल आहार: यह आहार मौखिक आहार को पुनः आरंभ करने का दूसरा चरण है। एक बार रोगी को स्पष्ट तरल पदार्थ सहनीय हो जाएं, सामान्य स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए आहार के पोषक तत्वों की मात्रा को बढ़ाने के लिए गाढ़े तरल पदार्थ दिए जाते हैं। पूर्ण तरल आहार एक स्पष्ट तरल आहार और अधिक तथा गाढ़े तरल पदार्थ में सम्मिलित सभी तरल पदार्थों जैसे दूध, हलवा और सब्जी के रस सम्मिलित हैं।

आहार का उद्देश्य उन व्यक्तियों को तरल पदार्थों का एक मौखिक स्रोत प्रदान करना है जो ठोस भोजन चबाने, निगलने या पचाने में असमर्थ होते हैं। इसका उपयोग पैरेन्टरल पोषण के साथ या चबाने और निगलने की समस्या जैसे जबड़े में तार जैसी कुछ प्रक्रियाओं की उपस्थिति में किया जाता है।

यह ग्रासनलीय या जठरांत्रीय अवक्षेप (gastrointestinal strictures), मध्यम जठरांत्र सूजन और गम्भीर रूप से बीमार रोगियों के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है। यह आहार उन लोगों के लिए उपयोग किया जाता है जो एक

यांत्रिक नरम आहार को बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं। पूर्ण तरल आहार लगभग 1500-2000 किलो कैलोरी, 55 से 65 ग्राम प्रोटीन और पर्याप्त खनिज और विटामिन प्रदान करता है लेकिन कोई रेशा नहीं प्रदान करता। यह आहार विस्तारित अवधि के लिए उपयोग नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन स्पष्ट तरल आहार की तुलना में अधिक समय तक इस्तेमाल किया जा सकता है।

अनुमत खाद्य पदार्थों के कुछ उदाहरण हैं:

- तरल पदार्थ जो मलाईदार होते हैं,
- आइसक्रीम, हलवा, कस्टर्ड,
- छाने हुए क्रीम सूप, और गूदा युक्त रस,
- मिश्रित और छाना हुआ अनाज और दाल का दलिया,
- चाय, कॉफी और कार्बोनेटेड पेय,
- मक्खन और क्रीम मिश्रित भोजन,
- चीनी, शहद, नमक और हल्का गंध युक्त खाद्य

III. **नरम आहार:** यह पूर्ण तरल और सामान्य आहार के बीच एक अवस्थापरिवर्तनकालिक आहार है। यह पौष्टिक रूप से पर्याप्त आहार है और बनावट और स्थिरता में नरम तथा पचाने में आसान होता है। नरम आहार पूर्ण नरम भोजन प्रदान करता है जो हल्के मसालेयुक्त होते हैं, कम रेशायुक्त होते हैं और इसमें अत्यधिक स्वाद एवं गंध वाले खाद्य पदार्थ शामिल नहीं होते हैं। इस आहार को छोटी मात्रा में रोगी को तब तक दिया जाता है जब तक रोगी की ठोस भोजन के प्रति सहनशीलता स्थापित नहीं हो जाती।

यह आहार शल्य चिकित्सा के बाद के मामलों, तीव्र संक्रमण वाले रोगियों, जठरांत्र संबंधी स्थितियों या चबाने की समस्याओं के लिए योजनाबद्ध होता है। रोगी की भूख, शल्य चिकित्सा, रोगी की भूख, भोजन की सहनशीलता, पिछली पोषण स्थिति और चबाने और निगलने की क्षमता के अनुसार नरम आहार का उपयोग किया जाना चाहिए। क्रियाशीलता, आयु, ऊंचाई, वजन, लिंग और रोग की स्थिति तथा व्यक्तिगत रोगी की पोषण संबंधी जरूरतों के आधार पर नरम आहार 1800-2000 किलो कैलोरी और 55-65 ग्राम प्रोटीन और पर्याप्त मात्रा में विटामिन और खनिज प्रदान करता है। यह आहार विस्तारित अवधि के लिए उपयोग किया जा सकता है क्योंकि यह सामान्य स्वास्थ्य के लिए पोषणीय रूप से उपयुक्त होता है।

नरम आहार में शामिल खाद्य पदार्थों में निम्न शामिल हैं:

- नरम पके हुए परिष्कृत अनाज जैसे पके हुए चावल और इसके उत्पाद जैसे पास्ता, ब्रेड, बिस्कुट, सूजी, दलिया, आदि।
- नरम पकी हुई धुली दालें और उनके सूप,

- नरम पके हुए अनाज और धुली हुई दालें जैसे खिचड़ी,
- दूध और दूध से बने पदार्थ जैसे दही, पनीर आदि,
- नमकीन और मांस, मछली या चिकन, अंडे,
- नरम, पकी हुई सब्जियाँ जैसे आलू, पालक, लौकी आदि।
- पपीता, केला, बिना छिलके और बीज वाले आम और नरम फल,
- कस्टर्ड, आइसक्रीम, जेली, केक (स्पंज), बिना मेवे वाली पुडिंग
- चीनी, शहद, सादी कैंडी
- सूप, हल्के स्वाद वाले शोरबा और क्रीम सूप, फलों के रस आदि,
- मक्खन, क्रीम, तेल, सलाद ड्रेसिंग।

वर्जित खाद्य पदार्थों में निम्न सम्मिलित हैं:

- रेशे को सीमित करने के लिए साबुत अनाज और दालें जैसे दलिया
- तले हुए खाद्य पदार्थ जैसे प्यूरी, पराठे, पकौड़े और मेवे,
- पेस्ट्री और डेसर्ट,
- सलाद में कच्ची सब्जियां जैसे टमाटर, ककड़ी आदि,
- भारी मसालेदार और भरपूर ग्रेवी युक्त भोजन और सॉस, अचार।

यांत्रिक नरम आहार: यांत्रिक रूप से नरम आहार का उपयोग तब किया जाता है जब व्यक्ति को चबाने और निगलने में समस्या होती है। इस प्रकार के यांत्रिक नरम आहार एक सामान्य आहार है जिसे चबाने में आसानी के लिए केवल बनावट में संशोधित किया जाता है। इसमें कटा हुआ या पिसा हुआ मांस या कटे हुए कच्चे फल और सब्जियां, बहुत नरम सघनता वाले खाद्य पदार्थ शामिल हैं। तीखे स्वाद और तले हुए खाद्य पदार्थों को इस आहार में वर्जित किया जाना चाहिए।

आइए अगले खण्ड के अध्ययन के पूर्व हम कुछ अभ्यास प्रश्नों के समाधान ढूँढें।

अभ्यास प्रश्न 3

1. सामान्य आहार से क्या आप समझते हैं? इसका महत्व समझाएं।

....
....
....

2. नरम आहार के बारे में चर्चा करें और इसमें अनुमेय और वर्जित खाद्य पदार्थों को सूचीबद्ध करें।

…………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………

3. यांत्रिक नरम आहार क्या होते हैं? सामान्य आहार को यांत्रिक नरम आहार में कैसे परिवर्तित किया जा सकता है?
…………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………

विभिन्न अस्पताल आहारों की समीक्षा करने के बाद, हम अब उपचारात्मक उद्देश्य के लिए उपयोग किए जाने वाले आहार के विभिन्न तरीकों का अध्ययन करेंगे।

7.7 विशेष आहार विधियाँ

सामान्य रूप से अस्पताल में मरीजों को मौखिक मार्ग से भोजन दिया जाता है जो खाद्य पदार्थों और पोषक तत्वों के अंतर्ग्रहण का सामान्य मार्ग है। हालांकि, दुर्भाग्यवश विभिन्न कारणों से कुछ रोगी खाद्य पदार्थों का मौखिक रूप से सेवन नहीं कर पाते हैं। इस स्थिति में, नैदानिक आहार विशेषज्ञों और डॉक्टरों को रोगियों को खिलाने के अन्य तरीके निर्धारित करने होते हैं। गंभीर देखभाल में अधिकांश रोगियों के अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए पोषण सहायता के वैकल्पिक साधनों की आवश्यकता होती है।

गंभीर रूप से बीमार रोगियों को पोषण सहायता प्रदान करने के लिए पैरेन्टरल और एंटेरल पोषण के दो महत्वपूर्ण तरीके हैं। दोनों पैरेन्टरल और एंटेरल पोषण का उपयोग तब किया जाता है जब उदर आंशिक रूप से काम कर रहा हो, लेकिन व्यक्ति स्वस्थ रहने के लिए पर्याप्त पोषक तत्वों का सेवन नहीं कर सकता या उन्हें पर्याप्त रूप से अवशोषित नहीं कर सकता है। स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए पैरेन्टरल और एंटेरल पोषण दोनों ही तरल आहार का उपयोग करते हैं। एंटेरल पोषण में एक फीडिंग ट्यूब अथवा आहार नली के माध्यम से आहार सीधे पेट या आंतों में पहुंचाया जाता है। पैरेन्टरल पोषण में पोषक तत्वों को अंतःशिरा माध्यम से दिया जाता है और जठरांत्र संबंधी मार्ग को पूरी तरह से बाईपास किया जाता है। पैरेंन्टेरल पोषण एक कैथेटर के माध्यम से दिया जाता है, जो तरल को सीधे रक्तप्रवाह में ले जाता है, जहां शरीर इसे अवशोषित करता है।

आइए अब हम पैरेन्टरल और एंटेरल पोषण विधियों के बारे में विस्तार से चर्चा करते हैं।

7.7.1 पैरेन्टरल पोषण (Parenteral Nutrition)

जब जठरांत्र संबंधी मार्ग स्वास्थ्य और वृद्धि को बनाए रखने के लिए पर्याप्त सूक्ष्म पोषक तत्व और/या जल और इलेक्ट्रोलाइट्स के अंतर्ग्रहण, पाचनऔर अवशोषण में असमर्थ होता है, तो पोषक तत्वों को पहुंचाने के पैरेन्टरल तरीके का उपयोग किया जाता है। पैरेन्टरल पोषण को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है:

"खाने और पाचन की सामान्य प्रक्रिया को बाईपास करते हुए, व्यक्ति को अंत:शिरा माध्यम से पोषण देना पैरेन्टरल पोषण कहलाता है।"

अंतःशिरा पोषण पैरेन्टरल पोषण प्रदान करने की एक विधि है। डेक्सट्रोज, अमीनो अम्ल, विटामिन, खनिज लवण और वसा के विलयन नसों के माध्यम से रोगी को दिए जाते हैं। लेकिन इस विधि में, पोषक तत्व और ऊर्जा का सेवन सीमित होता है और इसका उपयोग केवल कुछ दिनों के लिए किया जा सकता है।

पैरेन्टरल पोषण के बारे में विस्तार से चर्चा करने के बाद आइए अब एन्टरल पोषण के बारे में जानें।

7.7.2 एन्टरल पोषण (Enteral Nutrition)

यह पोषण उन रोगियों को पर्याप्त पोषण प्रदान करने की एक विधि है जो मौखिक रूप से पर्याप्त पोषण प्राप्त करने में सक्षम नहीं हैं। एन्टरल पोषण की शुरुआत तब की जाती है जब आंतें आंशिक रूप से काम कर रही हों। शारीरिक या चयापचयी रूप की अपेक्षा जठरांत्र मार्ग शरीर को पोषण प्रदान करने का अधिक उचित मार्ग है। यह पोषण प्रदान करने का सबसे अधिक अधिमानित तरीका है जब रोगी मौखिक रूप से भोजन लेने में सक्षम नहीं है। इसके दुष्प्रभाव पैरेन्टरल पोषण की तुलना में कम गंभीर और सीमित हैं। एनोरेक्सिया, निगलने और चबाने के विकार, तीव्र चयापचय तनाव, समयपूर्वता, कोमा, छोटी आंत आदि ऐसी स्थितियां हैं जिनमें पैरेन्टरल पोषण की आवश्यकता होती है। इस प्रकार एन्टरल पोषण को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है:

"जठरांत्र संबंधी मार्ग या आंत तक पहुंच के माध्यम द्वारा पोषण सहायता का प्रावधान"

एन्टरल पोषण को आमतौर पर ट्यूब फीडिंग के रूप में जाना जाता है। एन्टरल पोषण को प्रदान करने के कई तरीके हैं। यह ट्रांस ओरल (भोजन का मौखिक अंतर्ग्रहण), ट्रांस नेसल (नाक के माध्यम से फीडिंग ट्यूब का निवेशन), या परक्यूटेनियस ट्रांसगैस्ट्रिक मार्ग (पेट के माध्यम से) आदि। अंतःस्रावी कार्यों और तंत्रिका कारकों को बढ़ावा देता है, जो बदले में जठरांत्र संबंधी मार्ग की शारीरिक और प्रतिरक्षात्मक अखंडता को बढ़ावा देने में मदद करता है।

7.8 सारांश

इस इकाई में आपने आहार के विभिन्न पहलुओं के बारे में जाना जो कि अस्पताल में निर्धारित किए जाते हैं। इस इकाई में आहार चिकित्सा, इसकी परिभाषा, सिद्धांत और रोगी की देखभाल के लिए आहार के अनुकूलन के विभिन्न तरीकों पर विस्तृत रूप से चर्चा की गई। हमने पैरेन्टरल और एन्टरल पोषण के बारे में विस्तार से चर्चा की, जो गंभीर रूप से बीमार रोगियों को दी जाने वाली एक विशेष आहार विधि है। एन्टरल पोषण में आहार सीधे या तो पेट या आंत में फीडिंग ट्यूब के माध्यम से पहुंचाया जाता है, जबकि पैरेन्टरल पोषण में, पोषक तत्वों को अंतःशिरा रूप से पहुंचाया

जाता है और इस विधि का उपयोग तब किया जाता है जब विभिन्न कारणों से जठरांत्र संबंधी मार्ग को बाईपास करना पड़ता है।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

इकाई का मूल भाग देखें।

अभ्यास प्रश्न 1

इकाई का मूल भाग देखें।

अभ्यास प्रश्न 1

इकाई का मूल भाग देखें।

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उपचारात्मक आहार को परिभाषित कीजिए। आहारीय चिकित्सा के सिद्धांतों की सविस्तार चर्चा कीजिए।
2. अस्पताल में रोगियों के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले आहार के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
3. विशेष आहार विधियाँ क्या हैं? वर्णन कीजिए।

इकाई 8: जठरांत्रिय रोगों में आहार

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 अपच/बदहजमी (Indigestion/dyspepsia)
8.4 आंत्र गैस और उदर स्फीति (Intestinal gas and flatulence)
8.5 कब्ज (Constipation)
8.6 पैप्टिक अल्सर (Peptic Ulcer)
8.7 अतिसार (Diarrhoea)
8.8 सारांश
8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम जठरांत्रिय पथ के रोगों और विकारों के बारे में चर्चा करेंगे। ये विकार पेट की परेशानी, सूजन, फुलाव, मतली और एनोरेक्सिया जैसे हल्के लक्षणों के साथ अपच/बदहजमी जैसे सरल विकार हो सकते हैं। दूसरी ओर ये हल्के से तीव्र लक्षण जैसे पेट में दर्द, गैस, फुलाव, आमाशय का देरी से खाली होना युक्त गम्भीर विकार जैसे कुअवशोषण सिंड्रोम, पेप्टिक अल्सर, कैंसर आदि भी हो सकते हैं। इस इकाई में हम कुछ सामान्य जठरांत्रिर विकारों और रोगों के कारणों, महत्वपूर्ण संकेतों और लक्षणों और आहार प्रबंधन के बारे में अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- रोगों की स्थिति और उनके कारणों के बारे में जानेंगे;
- जठरांत्र संबंधी मार्ग के कार्यों पर रोगों के प्रभाव को समझ पाएंगे;
- इन रोग स्थितियों के अनुरूप नियमित या सामान्य आहार के संशोधन को जानेंगे; तथा
- जठरांत्र संबंधी मार्ग के विकारों के आहार और पोषण प्रबंधन के सिद्धांतों की जानकारी ले पाएंगे।

8.3 अपच/बदहजमी (Indigestion/dyspepsia)

हम में से अधिकांश द्वारा मतली, हृद्दाह, अधिजठर दर्द, बेचैनी और फुलाव जैसे जठरांत्रिय लक्षणों को अनुभव किया जाता है जो आम तौर पर खाद्य पदार्थों के सेवन से जुड़ा होते हैं। किसी के लिए यह अल्पकालीन और कम दर्दनाक हो

सकता है और जबकि कुछ के लिए बार-बार और बहुत दर्दनाक हो सकता है। ये लक्षण आमतौर पर लगभग एक चौथाई वयस्कों द्वारा सूचित किए जाते हैं। यह आम तौर पर खाद्य पदार्थों के अपच के कारण होता है और इसे आमतौर पर अपच और डिस्पेप्सिया के रूप में जाना जाता है। यदि अपच के लक्षण बहुत लंबे समय तक बने रहते हैं तो यह गैस्ट्राइटिस (गैस्ट्रिक म्यूकोसा की सूजन), पेप्टिक अल्सर, पित्ताशय की बीमारी या कैंसर आदि जैसी कुछ समस्याओं से संबंधित हो सकता है।

अपच दो प्रकार की होती है; कार्यात्मक (functional) और आंगिक (organic)।

कार्यात्मक अपच में आहार नली के किसी भी हिस्से में कोई संरचनात्मक परिवर्तन नहीं होता है। मूल रूप से यह मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक लक्षणों के कारण हो सकती है।

आंगिक अपच गुर्दा और हृदय रोग के कारण होती है।

अपच के निम्न कारक हैं:

- पाचन तंत्र में उचित पाचन और भोजन के अवशोषण में विफलता,
- पेट का अल्सर, अम्ल प्रतिवाह (acid reflux) रोग, गैस्ट्राइटिस, पेप्टिक अल्सर, पित्ताशय की बीमारी या कैंसर
- लैक्टोज असहिष्णुता की तरह कुअवशोषण सिंड्रोम,
- आहार, दोषपूर्ण भोजन की आदतें, कुछ खाद्य पदार्थों की असहिष्णुता, तनाव और अन्य जीवन शैली के कारक।

संकेत और लक्षण: अपच दीर्घकालीन या तीव्र हो सकती है और लक्षणों में हृद्दाह, भोजन से संबंधित ऊपरी पेट की परेशानी, सूजन, फुलाव, मतली और एनोरेक्सिया शामिल हैं। ऐसे लक्षण गैस्ट्रोईसोफेगल रिफ्लक्स, पेप्टिक अल्सर और पेट या अग्न्याशय और पित्त पथरी के कैंसर में भी आम हैं। अपच की सामान्य जटिलताओं में वजन में कमी और सामाजिक व्यवहार में बदलाव शामिल हैं। अपच के लक्षणों और असुविधाओं के कारण लोग अक्सर भोजन छोड़ देते हैं जिससे वजन कम हो सकता है।

आहार प्रबंधन: अपच के आहार प्रबंधन में पोषक तत्वों या खाद्य पदार्थों की आवश्यकता में किसी भी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होती है। भोजन के स्वरूप को बदलना और कुछ खाद्य पदार्थों के निर्मूलन से कभी-कभी लक्षणों को कम करने में मदद मिल सकती है। अपच की स्थिति में नरम और फीका आहार निर्धारित हैं। खाद्य पदार्थ जो कभी-कभी गैस के अधिक उत्पादन के लिए जिम्मेदार होते हैं जैसे साबुत दालें, राजमा, छोले के सेवन से बचा जा सकता है क्योंकि ये दालें पचाने में मुश्किल होती हैं और यह उबकाई का कारण बन सकती हैं। मूली, फूलगोभी, पत्तागोभी और ब्रोकोली जैसी कुछ सब्जियों को भी आहार में वर्जित करना चाहिए।

लैक्टोज असहिष्णुता वाले व्यक्ति को दूध और दूध उत्पादों का सेवन करने पर अपच की समस्या हो सकती है। ऐसे मामलों में लैक्टोज का प्रतिबंध (लैक्टोज युक्त दूध और दूध उत्पादों का उन्मूलन) संकेतों और लक्षणों में सुधार करता है। आहार, खिलाने के स्वरूप और जीवन शैली संशोधनों से संबंधित कुछ निश्चित बिंदु हैं जिन्हें ध्यान में रखना चाहिए:

- नियमित समय पर भोजन करें, शराब और ऐसे खाद्य पदार्थों से बचें जो असुविधा का कारण बनते हैं,
- भूख लगने पर भोजन का सेवन करें, जबरन भोजन ना करें।
- खाद्य पदार्थों को चबाने के लिए कुछ समय दें, खाद्य पदार्थों को केवल निगले नहीं।
- सोने से ठीक पहले खाना न खाएं, बिस्तर पर जाने से 1-2 घंटे पहले भोजन करें।
- कार्य अनुसूची को विनियमित करें और तनाव को कम करने का प्रयास करें।
- धूम्रपान करने से बचें और ऐसी दवाओं से सेवन से बचें जो आहार नली में जलन करती हों।

जठरांत्र संबंधी मार्ग के विकार अपच के बारे में विस्तार से चर्चा करने के बाद, आइए आंतों की गैस और पेट फूलने के बारे में जानें।

8.4 आंत्र गैस और उदर स्फीति (Intestinal gas and flatulence)

जठरांत्र संबंधी मार्ग में भोजन विभिन्न पोषक तत्वों के पाचन और अवशोषण के लिए एक भाग से दूसरे भाग में जाता है। पाचन और अवशोषण के दौरान कुछ गैस पाचन नली में उत्पन्न होती है। इन आंत्र गैसों में आमतौर पर नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बन डाइऑक्साइड और कुछ मामलों में मीथेन शामिल होती हैं। अधिकांश समय यह एक सामान्य क्रिया है और पाचन तंत्र में प्रवाह के दौरान यह गैस रक्त में अवशोषित हो सकती है और फेफड़ों, मुँह तथा मल द्वार से निष्कासित हो सकती है। आम तौर पर 200 मिलीलीटर गैस जठरांत्र मार्ग में मौजूद होती है और मानव आम तौर पर हर दिन 700 मिलीलीटर गैस उत्सर्जित करता है। कुछ मामलों में पाचन नली में उत्पन्न गैस जमा हो जाती है और असुविधा पैदा करती है। बढ़ी हुई मात्रा और गैस के पारित होने की आवृत्ति (पेट फूलना) के कारण मरीजों को अत्यधिक गैस की शिकायत होती है। आंत्र गैस और उदर स्फीति के लक्षणों में निम्न शामिल हैं:

- पेट में मरोड़,
- ऐंठन और फुलाव,
- अत्यधिक गैस और पेट फूलने की शिकायत।

पाचन नली में गैस की उपस्थिति के कई कारण हो सकते हैं। वो हैं:

- निष्क्रियता,
- जठरांत्र मार्ग की घटती गतिशीलता,
- एरोफेजिया (Aerophagia) - खाद्य पदार्थ सेवन के दौरान हवा को निगलना,
- खाद्य पदार्थों का पाचन,
- जठरांत्र विकार,
- पेट और आंत में कार्बोहाइड्रेट खाद्य पदार्थों का बैक्टीरिया द्वारा किण्वन,

- किण्वन योग्य सब्सट्रेट का कुअवशोषण,
- भोजन करने की दोषपूर्ण आदतें जैसे जल्दी खाना, कम चबाना, भोजन करते समय मुंह खुला रखना।

ऊपरी आंत में गैस मुख्य रूप से एरोफेजिया और कुछ हद तक खाद्य पदार्थों के पाचन के दौरान रासायनिक प्रतिक्रियाओं के कारण होती है। आम तौर पर ये गैसें भोजन में घुलने हेतु बहुत बड़ी नहीं होती हैं और बृहदान्त्र तक गुजरती हैं। कभी-कभी पेट और छोटी आंत में बैक्टीरियल अतिवृद्धि होती है, जो बढ़ी हुई मात्रा में गैस का उत्पादन करती है। उत्पादित गैसों की मात्रा और प्रकार बृहदान्त्र में सूक्ष्मजीवों के प्रकार और मिश्रण पर निर्भर करती हैं। बड़ी मात्रा में आहारीय रेशा, प्रतिरोधी स्टार्च, फ्रुक्टोज या अल्कोहल शर्करा और लैक्टोज असहिष्णुता के परिणामस्वरूप गैस उत्पादित हो सकती है।

आंत्र गैस और उदर स्फीति का प्रबंध

गैस के उत्पादन या पाचन नली के माध्यम से गैस को पारित करने में कठिनाई के आधार पर इसका प्रबंधन किया जाता है। यदि गैस के पारित होने में कठिनाई तथा ऐंठन की है तो व्यायाम द्वारा डकार या मलाशय के माध्यम से गैसों के निष्कासन में मदद मिल सकती है। यदि समस्या अत्यधिक गैस के उत्पादन से सम्बंधित है तो निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है:

- कार्बोहाइड्रेट युक्त खाद्य पदार्थ जैसे फलियां, घुलनशील रेशा, प्रतिरोधी स्टार्च; फ्रुक्टोज और अल्कोहल जैसे सरल शर्करा का कम सेवन किया जाना चाहिए।
- ऐसी दालें जिनमें स्टेकियोज और रैफ़िनोज़ की मात्रा अधिक होती है, उनसे बचना चाहिए।
- आहार में ब्रेड, बेकरी उत्पाद, स्टार्च वाली सब्जियों की मात्रा कम होनी चाहिए क्योंकि यह कभी-कभी हजम नहीं होते हैं और किण्वित होकर समस्या पैदा कर सकते हैं।

अब, हम जठरांत्र संबंधी मार्ग की एक बहुत ही आम समस्या के बारे में चर्चा करेंगे जो कब्ज की है।

8.5 कब्ज (Constipation)

अच्छे स्वास्थ्य के लिए मल का निष्कासन प्रतिदिन होना आवश्यक है। कब्ज की स्थिति में मल का निष्कासन ठीक प्रकार से नहीं होता। इसमें मल त्याग बहुत कम मात्रा में एवं कभी-कभी कठिनाई से होता है। यह कभी-कभी 2-3 दिन बाद भी होता है।

कब्ज दो प्रकार का होता है।

- एटॉनिक (Atonic) कब्ज
- स्पास्टिक (Spastic) कब्ज

एटॉनिक कब्ज

इसमें मलाशय की संवेदनशीलता कम होने के कारण मलाशय मल पदार्थों से पूर्ण होने पर भी मल उत्सर्जन की इच्छा का अभाव देखा जाता है। इसका मुख्य कारण आंतों की संकुचन शक्ति, जो सामान्यतः तीव्र होती है, कब्ज में कमजोर हो जाती है। ऐसा कब्ज प्रायः वृद्धों, मोटे व्यक्तियों, बुखार, गर्भावस्था तथा शल्य चिकित्सा के पश्चात् देखा जाता है। भोजन सम्बन्धी गलत आदतें और मल उत्सर्जन की अनियमित आदतें एटॉनिक कब्ज का सर्वाधिक प्रमुख कारण है।

स्पास्टिक कब्ज

इसमें बड़ी आंत की दीवार की रचना में ऐसा परिवर्तन आ जाता है कि जिससे आंत अत्यधिक क्रियाशील हो जाती है और मल आगे बढ़कर नहीं निकल पाता । यह कब्ज मानसिक तनाव, अत्यधिक चाय, काफी, मदिरा आदि तथा दवाईयों के प्रयोग के कारण हो जाता है।

कब्ज के लक्षण

- बैचेनी
- सिर दर्द
- कार्य करने में अरुचि
- जीभ पर सफेद पर्त जमना
- पेट में गैस बनाना
- शरीर का तापमान बढ़ना
- भूख न लगना
- मुंह से बदबू आना

कब्ज के कारण

कब्ज के सामान्य लक्षण निम्न हैं-

- शौच जाने की अनियमित आदत का होना।
- अपर्याप्त मात्रा में फल सब्जियों व रेशेदार पदार्थों का अभाव दीर्घकाल में कब्ज की स्थिति उत्पन्न कर सकता है।
- उचित मात्रा में व्यायाम न करने से या क्रियाशीलता में अत्यधिक कमी के कारण आंतों की मांसपेशियों की क्रियाशीलता ठीक प्रकार से नहीं हो पाती है जिससे मल का निष्कासन सही रूप से नहीं हो पाता।
- अनियमित आदतें जैसे हर समय जल्दी में रहने से, जल्दबाजी का जीवन व्यतीत करने से, अनियमित रूप से भोजन करने से और पर्याप्त विश्राम न मिलने के कारण भी कब्ज हो जाता है।
- पेय या द्रव्य पदार्थों का कम मात्रा में लेना भी कब्ज का महत्वपूर्ण कारण है।
- मानसिक तनाव, चिन्ता, घबराहट, अस्थिरता भी कब्ज उत्पन्न करते हैं।

- अत्यधिक चाय, कॉफी, शराब या तम्बाकू का सेवन कब्ज को बढ़ावा देता है।
- आंतों का कैन्सर भी कब्ज का कारण हो सकता है।
- बीमारी में दवाईयों के प्रयोग से भी कब्ज हो सकता है।
- कुछ पदार्थ मल को भार प्रदान कर निष्कासन में सहायता करते हैं, इन्हें रेचक (laxative) कहते हैं। जैसे-इसबगोल। इनका अत्यधिक व लगातार प्रयोग भी कब्ज उत्पन्न करता है।

कब्ज में आहारीय उपचार

कब्ज में विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकताओं में सामान्यतः कोई अन्तर नहीं आता है। अतः कब्ज में रोगी को सामान्य आहार ही देते हैं। सिर्फ आहार में रेशा व द्रव्य पदार्थों की मात्रा को बढ़ा दिया जाता है।

रेशा

उच्च रेशे वाले भोज्य पदार्थों का ज्यादा सेवन करना चाहिए जैसे-साबुत अनाज, साबुत दालें, हरी पत्तेदार सब्जियां व फल। रेशेयुक्त भोज्य पदार्थ पानी को अवशोषित कर मल को निकलने में सुविधा प्रदान करते हैं।

द्रव्य

रोगी को अधिक से अधिक पेय/द्रव्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए जिससे मल कड़ा न हो। सामान्यतः 8 से 10 गिलास पानी प्रतिदिन पीना चाहिए। पीने के पानी के अलावा द्रव्य पदार्थ नींबू पानी, शरबत आदि के रूप में भी लिया जा सकता है। प्रातः काल हल्के गर्म पानी में नींबू का रस डालकर पीने से कब्ज में लाभ होता है।

इसके अलावा रोज़ाना घूमने व नियमित व्यायाम से भी कब्ज दूर होता है।

8.6 पैप्टिक अल्सर (Peptic Ulcer)

आमाशयिक तंत्र (Alimentary Tract) के वह भाग जो आमाशयिक अम्ल के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आते हैं, की श्लेष्मिक झिल्ली पर पाये जाने वाले खुले घावों को पैप्टिक अल्सर कहते हैं।

पैप्टिक अल्सर के प्रकार

आमाशय तंत्र के पथ पर उपस्थिति के आधार पर दो प्रकार के अल्सर देखे जाते हैं-

- आमाशय का पैप्टिक अल्सर (Gastric Ulcer)- यह आमाशय में अथवा आहार नलिका के निचले सिरे पर पाया जाता है। इस प्रकार के अल्सर में आमाशय की अन्तः त्वचा अम्ल के प्रति प्रतिरोधक क्षमता खो देती है जिससे आमाशय की श्लेष्मिक झिल्ली अम्ल की क्रिया के फलस्वरूप गल जाती है। फलस्वरूप आमाशय की दीवारों पर गड्डे व छेद बन जाते हैं।

- पक्वाश्य का पैप्टिक अल्सर (Duodenal Ulcer)- यह पक्वाशय (छोटी आंत के अग्रभाग) में उत्पन्न एवं विकसित होता है। कोशिकाओं में अम्ल उत्पादन तथा उत्पन्न अम्ल की मात्रा में वृद्धि के कारण यह अल्सर होता है।

पैप्टिक अल्सर के लक्षण

- अमाशय के पैप्टिक अल्सर में भोजन के पश्चात् तथा पक्वाशय के पैप्टिक अल्सर में आमाशय के खाली होने पर पेट में अत्यधिक दर्द होना। आहार नली में जलन व दर्द का अनुभव होता है।
- वजन कम होना
- अम्ल बार-बार मुंह में आना
- गम्भीर वमन (उल्टी) आना। कभी-कभी वमन में रक्त का आना भी देखा जाता है (आमाशय के पैप्टिक अल्सर की स्थिति में)।
- मल का काला होना, जो कि मल में रक्त की उपस्थिति को दर्शाता है (पक्वाश्य के पैप्टिक अल्सर की स्थिति में)।

पैप्टिक अल्सर की जटिलताएं

पैप्टिक अल्सर काफी कष्टकारी एवं दर्दनाक रोग है। इसका तुरन्त निवारण करना चाहिए, परन्तु यदि यह लम्बे समय तक चले तो आमाशय की दीवारों में बड़े व आर-पार छेद हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में भोजन ग्रहण करने पर भोज्य पदार्थ आमाशय में पहुँचकर छेदों द्वारा निकल जाता है व शरीर के अन्य आन्तरिक अंगों आदि में पहुँच जाता है। यह अत्यन्त कष्टकारी व खतरनाक होता है। ऐसे में तुरन्त शल्य चिकित्सा की आवश्यकता होती है।

पैप्टिक अल्सर के कारण

पैप्टिक अल्सर किसी भी उम्र में हो सकता है परन्तु यह सबसे अधिक 45-55 वर्ष की उम्र में पाया जाता है। महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों में पैप्टिक अल्सर अधिक देखा जाता है। आमाशय के पैप्टिक अल्सर में आमाशय की दीवार की अम्ल के प्रति प्रतिरोधक क्षमता क्षीण हो जाती है तथा पक्वाशय के पैप्टिक अल्सर में अम्ल के स्राव में वृद्धि हो जाती है। अतः अम्ल के स्राव को प्रभावित करने वाले निम्न कारण पैप्टिक अल्सर के कारक हैं-

अम्ल के स्राव को बढ़ाने वाले कारक	**अम्ल के स्राव को घटाने वाले कारक**
• रासायनिक उत्तेजक (Chemical Stimulants)- मिर्च, मसाले, मदिरा, अम्लीय भोज्य पदार्थ • आकर्षक व पसंदीदा भोज्य पदार्थ • प्रसन्नता व सन्तुष्टि की स्थिति	• अधिक मात्रा में वसायुक्त व तले भोज्य पदार्थ, मेवे आदि • ज्यादा मात्रा में भोजन करना तथा भोजन को कम चबाना • स्वाद व देखने में अनाकर्षक भोज्य पदार्थ

• भोजन करते समय अनुकूल वातावरण	• बिना पसंद वाले भोज्य पदार्थ • तनाव, गुस्सा, डर, दर्द आदि

इसके अलावा कुछ अन्य प्रमुख कारण निम्न हैं-

- **वंशानुक्रम-** प्रायः पैप्टिक अल्सर के रोगी के परिवार अथवा निकट सम्बन्धियों में पैप्टिक अल्सर देखा गया है। 'O' रक्त समूह वाले व्यक्तियों में प्रायः पक्वाशय का पैप्टिक अल्सर देखा जाता है।
- **व्यवसाय-** कुछ व्यवसाय/पेशे जैसे डॉक्टर, व्यवसायी, तथा ऊँचे पदों पर पदासीन व्यक्तियों की जिम्मेदारियां अधिक होने से तनावग्रस्तता व भोजन सम्बन्धी आदतों में अनियमितता के कारण पैप्टिक अल्सर देखा जाता है।
- **व्यक्तित्व-** बहुत अधिक संवेदनशील, अधिक गुस्सा करने वाले व्यक्ति पैप्टिक अल्सर से जल्दी प्रभावित होते हैं। इसके अलावा तनाव, चिन्ता, डर, व अस्थिरता भी पैप्टिक अल्सर को बढ़ावा देते हैं।
- अत्यधिक चाय, कॉफी, शराब, धूम्रपान व तम्बाकू का प्रयोग भी आमाशय की श्लैष्मिक झिल्ली को क्षतिग्रस्त करते हैं। फलस्वरूप पैप्टिक अल्सर की सभावनाऐं बढ़ जाती हैं।
- **भोजन सम्बन्धी आदतें-** जल्दी-जल्दी खाना, कम चबाकार खाना, लम्बे समय तक उपवास करने पर या दो भोजनों के मध्य अधिक अन्तर पैप्टिक अल्सर उत्पन्न कर करता है।
- **हैलिकोबेक्टर पाइलोरी संक्रमण (*Helico bector pylori infection*)-** इस संक्रमण में आमाशय की श्लैष्मिक झिल्ली की प्रतिरोधक क्षमता क्षीण हो जाती है। अतः इस संक्रमण से प्रभावित होने पर पैप्टिक अल्सर प्रायः देखा जाता है।

पैप्टिक अल्सर का आहारीय उपचार

पैप्टिक अल्सर में आहारीय उपचार की अत्यधिक आवश्यकता होती है। पहले इसके आहारीय उपचार में सिर्फ फीका भोजन ही दिया जाता था। परन्तु वर्तमान में काफी संशोधन के बाद पैप्टिक अल्सर के आहारीय उपचार में भोज्य पदार्थों को वर्जित करने से अधिक रोगी की पोषक तत्वों की पूर्ति करने पर बल ज्यादा दिया जाता है।

ऊर्जा

पैप्टिक अल्सर की अवस्था में रोगी कुपोषित हो जाता है। इसलिए ऊर्जा की आवश्कता बढ़ जाती है। हालांकि रोगी इस स्थिति में बिस्तर पर लेटा रहता है। अतः बेहद कम शारीरिक क्रियाशीलता होने पर वह अपनी सामान्य ऊर्जा द्वारा ही बढ़ी हुई आवश्यकता को पूरा कर लेता है।

प्रोटीन

घाव जल्दी भरने के लिए रोगी को उच्च प्रोटीन वाला आहार देना चाहिए। प्रोटीन की मात्रा 50 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है। मांसाहारी प्रोटीन स्रोतों को कम देना चाहिए क्योंकि इससे भी अम्ल ज्यादा बनता है। दूध देने से रोगी को

कुछ देर के लिए राहत मिलती है परन्तु दूध में मौजूद उच्च कैल्शियम की मात्रा अम्ल के स्त्राव को बढ़ावा देती है अतः ज्यादा दूध का सेवन विपरीत स्थितियां उत्पन्न करता है। अण्डे तथा अन्य प्रोटीन के स्रोत रोगी के आहार में पर्याप्त मात्रा देने चाहिए।

कार्बोहाइड्रेट

कार्बोहाइड्रेट की अधिक मात्रा देने से ऊर्जा की बढ़ी हुई आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। अतः कार्बोहाइड्रेट अधिक मात्रा में देने चाहिए।

वसा

वसा आमाशय को देर तक भरा रखती है अतः वसा की अधिक मात्रा देना पैप्टिक अल्सर में उपयोगी होता है। आसानी से पचने वाले वसा के स्रोत जैसे मक्खन आदि रोगी को पर्याप्त मात्रा में देने चाहिए।

विटामिन

घावों के जल्दी भरने हेतु रोगी को विटामिन सी देना चाहिए। इसके अलावा रक्तस्राव की स्थिति में लौह लवण के उचित अवशोषण के लिए भी विटामिन सी की आवश्यकता होती है।

खनिज लवण

पैप्टिक अल्सर में रोगी को लौह लवण उचित मात्रा में देना चाहिए।

पैप्टिक अल्सर में रोग उत्पन्न होने से लेकर पूर्णतः स्वस्थ्य होने तक की अवस्था को तीन भागों में बांटा गया है।

- पहली अवस्था- जब रोगी को तीव्र पीड़ा होती है।
- दूसरी अवस्था- इसमें रोग के लक्षणों में कमी तथा स्थिति में सुधार देखा जाता है परन्तु रोगी अभी भी बिस्तर पर ही होता है।
- तीसरी अवस्था- इसमें रोगी पूर्णतः स्वस्थ हो जाता है परन्तु भविष्य के लिए कुछ सावधानियां तथा आहार सम्बन्धी परहेज करता है।

पैप्टिक अल्सर की तीन अवस्थाओं में आहार

पहली व दूसरी अवस्था	तीसरी अवस्था
• द्रव्य पदार्थ जैसे दूध व फलों का रस • दुग्ध पदार्थ जैसे दही,लस्सी आदि • रिफाइन्ड अनाज और उनसे बनी चीजें	• पहली व दूसरी अवस्था के सभी भोज्य पदार्थ • अच्छी तरह से पके हुए अनाज से बने भोज्य पदार्थ • दूध व अण्डे से बने सभी भोज्य पदार्थ

• धुली दालें • पका हुआ अण्डा • अच्छी तरह पकी हुई सब्जियां व फल • अन्य हल्का आहार जैसे- पतली खिचड़ी	• सहनशक्ति के अनुसार कच्ची सब्जियां व फल

स्रोतः Textbook of Nutrition and Dietetics, कुमुद खन्ना द्वारा लिया गया

पैप्टिक अल्सर रोगियों के लिए भोजन सम्बन्धी सुझाव

- थोड़ा -थोड़ा भोजन समय-समय पर लें।
- भोजन धीरे-धीरे करें।
- भोजन शांत वातावरण में करें।
- अत्यधिक चाय, काफी, शराब न लें।
- धूम्रपान न करें।
- अत्यधिक मिर्च मसाले का सेवन न करें।

वर्जित भोज्य पदार्थ

- अत्यधिक मिर्च मसाले
- अचार, पापड़, चटनी
- तेज चाय, कॉफी
- तेज गन्ध वाली सब्जियां जैसे प्याज, लहसुन, पत्तागोभी आदि।

8.7 अतिसार (Diarrhoea)

मल का अधिक मात्रा में अधिक पतला तथा बार-बार निकलने की अवस्था को अतिसार कहते हैं। इसमें मल पदार्थ बड़ी आंत वाले भाग में इतनी शीघ्रता से आगे बढ़ते हैं कि द्रव्य पदार्थों को अवशोषित होने का मौका ही नहीं मिल पाता जिससे पूर्णतः न बना हुआ मल ही उत्सर्जित हो जाता है। अतिसार में उचित देखभाल न होने पर तीव्रता से शरीर में जल की कमी हो जाती है जिसके कारण रोगी खासकर नवजात शिशुओं तथा छोटे बालकों की मृत्यु हो सकती है।

तीव्र अतिसार (Acute Diarrhoea)

तीव्र अतिसार अचानक आरम्भ होता है इसमें दस्त बहुत तेजी से होते हैं। मल उत्सर्जन की आवृत्ति इतनी अधिक होती है कि रोगी एक घण्टे में ही कई बार मल निष्कासित कर देता है। यद्यपि यह अवस्था कम देर अर्थात 24-48 घण्टे तक ही रहती है परन्तु इसमें जल की अत्यधिक कमी हो जाती है जिससे रोगी का शरीर अति शिथिल व कमजोर पड़ जाता है।

लक्षण (Symptoms)

- बहुत तेजी से पानी की तरह पतला मल बार-बार आना।
- पेट में दर्द व मरोड़ होना।
- शारीरिक कमजोरी
- वमन
- बुखार

कारण (Causes)

तीव्र अतिसार के निम्न प्रमुख कारण हैं-

- अधिक मसाले युक्त आहार
- कीटाणुओं के संक्रमण द्वारा (गन्दगी, बासी व सड़े भोज्य पदार्थों द्वारा)
- भोज्य पदार्थो से एलर्जी हो जाने पर
- कुपोषण के द्वारा
- भोज्य विषाक्तता (Food poisoning) द्वारा
- भोज्य संदूषण (Food contamination) द्वारा
- कुछ दवाईयों के प्रभाव द्वारा
- अन्य रोगों के लक्षण के रूप में
- मनोवैज्ञानिक कारण जैसे- चिन्ता, डर, तनाव, अस्थिरता आदि।

तीव्र अतिसार के कारण

पाचन-संस्थान में संक्रमण	वैक्टीरिया अथवा पैरासाइट द्वारा संदूषित खाना व पानी
खाद्य जनित कारण	खाद्य एलर्जी या भोजन सम्बन्धी खराब आदतें जैसे- अत्यधिक भोजन कर लेना। बार-बार खाना आदि
कुपोषण	क्वाशियोकर, मरास्मस, विटामिन ए व विटामिन बी समूह की

	कमी।
अन्य संक्रमण	हैजा, टायफाइड आदि
दवाईयों व अन्य रसायनों द्वारा	आर्सेनिक, सीसा, मरकरी द्वारा
मानसिक कारण	तनाव, डर, चिन्ता, अस्थिरता आदि

जटिलताएं (Complications)

तीव्र अतिसार की अवधि कम होती है परन्तु इसमें शारीरिक जल की कमी बहुत तेजी से उत्पन्न हो जाती है। अगर इस स्थिति में जल व लवणों की तुरन्त पूर्ति न की जाये तो रोगी की हालत और गम्भीर हो जाती है। फलस्वरूप मृत्यु की सम्भावनाएं काफी बढ़ जाती हैं।

आहारीय उपचार (Dietary Treatment)

तीव्र अतिसार में आहारीय उपचार का प्राथमिक उद्देश्य जल व लवणों की पूर्ति करना होता है। इसमें रोगी की अन्य पोषक तत्वों की पूर्ति का उद्देश्य गौण हो जाता है क्योंकि जल की पूर्ति समय पर न होने से प्राण घातक स्थिति पैदा हो सकती हैं। तीव्र अतिसार का उपचार ओरल रीहाइड्रेशन थेरेपी (Oral rehydration therapy) यानि मुख द्वारा जल के पुर्नस्थापन की चिकित्सा द्वारा होता है।

ओरल रीहाड्रेशन थेरेपी (ओ0आर0टी0)

यह एक सरल, सस्ती तथा प्रभावशाली चिकित्सा है इसमें उबले पानी, नमक, चीनी का घोल रोगी को देते हैं ताकि जल व खनिज लवणों की कमी जल्द से जल्द से पूरी हो। विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organization) द्वारा इसकी विधि भी दी गई है।

- ➢ सोडियम क्लोराइड नमक 3.5 ग्राम
- ➢ सोडियम बाइकार्बोनेट 2.5 ग्राम
- ➢ पोटेशियम क्लोराइड 1.5 ग्राम
- ➢ ग्लूकोज़ 20 ग्राम

उक्त चार लवणों को पीने के साफ 1 लीटर पानी में घोलें। इस घोल को ओरल रीहाड्रेशन सौल्यूशन (ओ0आर0टी0) कहते हैं। यह घोल रोगी को प्रत्येक दस्त के बाद एक गिलास देना चाहिए। सरकार द्वारा प्रत्येक प्राथमिक चिकित्सालय में अतिसार के उपचार के रूप में ओ0आर0एस0 के लवणों का मिश्रण (विश्व स्वास्थ्य संगठन की विधि के अनुसार) उपलब्ध होता है।

प्रचुर मात्रा में देने योग्य आहार

- पर्याप्त मात्रा में ओ0आर0एस0 को पीने के साफ पानी में घोलकर दें।

- नारियल पानी
- जौ का पानी
- दाल व अनाज का पानी
- छाछ, मट्ठा
- हल्की चाय

दीर्घकालीन अतिसार (Chronic Diarrhoea)

तीव्र अतिसार के विपरीत दीर्घ कालीन अतिसार लम्बे समय (कुछ दिनों से कुछ हफ्तों) तक रहता है। इसमें रोगी दिन में 4-6 बार मल उत्सर्जित कर सकता है। खाद्य पदार्थ का आंतों से जल्दी-जल्दी निष्कासन होने पर वह अवशोषित नहीं हो पाता। इस स्थिति के लम्बे समय तक रहने पर रोगी में जल के साथ साथ पोषक तत्वों की भारी कमी हो जाती है।

लक्षण (Symptoms)

दीर्घ कालीन अतिसार के लक्षण तीव्र अतिसार की तरह ही होते हैं जैसे पेट दर्द, कमजोरी आदि। परन्तु इसमें मल उत्सर्जन की आवृत्ति उतनी अधिक नहीं होती है प्रायः रोगी द्वारा दिन में 4-6 बार अनपचा पतला मल निष्कासित देखा जाता है।

कारण (Causes)

दीर्घ कालीन अतिसार के कारण निम्न हैं-

- लम्बे समय तक अत्यधिक मसालेयुक्त भोजन।
- बैक्टीरिया संक्रमण
- अवशोषण सम्बन्धी विकार
- लम्बे समय तक शराब का सेवन।
- बड़ी आंत में कोई विकार जैसे कैंसर अथवा शल्य चिकित्सा के परिणामस्वरूप।

जटिलताएं (Complications)

दीर्घ कालीन अतिसार की अवधि लम्बी होने के कारण रोगी पर्याप्त पोषक तत्वों से काफी समय तक वंचित रह जाता है। इस स्थिति में रोगी कुपोषित हो सकता है एवं कुपोषण जनित किसी रोग से ग्रस्त भी हो सकता है। अतिसार किसी भयावह रोग जैसे- कैंन्सर आदि का लक्षण है तो समय से उपचार ही एकमात्र निवारण है।

आहारीय उपचार (Dietary Treatment)

दीर्घ कालीन अतिसार के आहारीय उपचार का प्रमुख उद्देश्य जल व लवणों के साथ-साथ पोषक तत्वों की पूर्ति करना है।

ऊर्जा

ऊर्जा की आवश्यकता को 10-20 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है ताकि शारीरिक दुर्बलता एवं घटते वजन पर रोक लगाई जा सके।

प्रोटीन

पोषक तत्वों की कमी के कारण भारी मात्रा में प्रोटीन की कमी हो जाती है अतः मांसपेशियों के उचित निर्माण एवं कोशिकाओं के क्षय की आपूर्ति लिए प्रोटीन को 50 प्रतिशत तक बढ़ाया जाता है।

कार्बोहाइड्रेट

आंतों की बढ़ी हुई क्रियाशीलता के कारण वसा का पाचन व अवशोषण नहीं हो पाता। अतः आहार में वसा वर्जित करनी चाहिए। परन्तु शारीरिक अवस्था के अनुसार बढ़ी हुई ऊर्जा की आवश्यकता को पूरा करने के लिए वसा की जरूरत होती है। अतः रोगी को सरल व आसानी से पचने वाली वसा देनी चाहिए जैसे- मक्खन व नारियल तेल।

विटामिन

मल में जल के निष्कासन के साथ जल में घुलनशील विटामिन (विटामिन बी समूह, विटामिन सी) उत्सर्जित हो जाते हैं, अतः इनको पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए। इसके अलावा वसा के अवशोषण न हो पाने के कारण वसा में घुलनशील विटामिन (विटामिन ए, डी, ई, के) मुख्यतः विटामिन ए की कमी भी हो जाती है। इसलिए इसके भी स्रोतों को आहार में शामिल करना चाहिए।

खनिज लवण

बार-बार मल के उत्सर्जन से शरीर में कैल्शियम व लौह लवण का अवशोषण नहीं हो पाता, अतः कैल्शियम व लौह लवण के अच्छे स्रोतों को आहार में लेना चाहिए।

रेशा

रोगी को कम से कम रेशे वाला आहार देना चाहिए। ज्यादा रेशा रोगी की आंतों को अधिक तकलीफ देता है। अतः रेशे का प्रयोग वर्जित करना चाहिए।

द्रव्य

अतिसार में द्रव्य की मात्रा भरपूर देनी चाहिए। सादा पानी, नींबू पानी, ओ0 आर0 एस0 घोल, सूप, फलों का रस आदि विभिन्न रूपों में द्रव्यों का सेवन किया जा सकता है।

अवशेष

अवशेष उत्पन्न करने वाले भोज्य पदार्थों का प्रयोग सीमित रूप से करना चाहिए क्योंकि यह मल की मात्रा को बढ़ाते हैं।

प्रचुर मात्रा में लेने योग्य भोज्य पदार्थ

- धुली दालें
- रिफाइन्ड अनाज
- अच्छी तरह से पकी व कोमल सब्जियां
- फल जैसे केला, पपीता
- दूध से बनी चीजें जैसे- दही, पनीर
- अण्डा, मछली, चिकन

वर्जित भोज्य पदार्थ

- साबुत अनाज व दालें
- कच्ची सब्जियां व फल
- तले भोज्य पदार्थ
- मेवे

उच्च व कम रेशे वाले भोज्य पदार्थ

उच्च रेशा	**कम रेशा**
साबुत अनाज जैसे- गेहूँ, दलिया, साबुत अनाजों का आटा	दूध व दूध से बनी चीजें रिफाइन्ड अनाज जैसे- चावल, ब्रैड, सूजी आदि
साबुत दालें, छिलके वाली दालें	धुली दालें, अण्डा, मछली, चिकन
सब्जियां जैसे- मटर, फलियां आदि	सब्जियां जैसे- आलू, लौकी, पालक आदि
फल जैसे- सेब, आड़ू, अमरूद आदि	फल व फलों का रस जैसे- केला, पपीता वसा

उच्च व कम अवशेष (Residue) वाले भोज्य पदार्थ

उच्च रेशा	**कम अवशेष**

दूध	सूप
दूध से बने पदार्थ	दही, पनीर
साबुत अनाज व उनसे बनी चीजें	रिफाइन्ड अनाज व उनसे बनी चीजें
कच्चे फल व सब्जियां	उबली व मसली हुई सब्जियां व फल
मेवे, अचार आदि	मछली, चिकन

स्रोत: Textbook of Nutrition and Dietetics, कुमुद खन्ना द्वारा लिया गया

अभ्यास प्रश्न 1

1. अतिसार के प्रकार बताइए। तीव्र अतिसार के कारणों को सूचीबद्ध करें और ओ0आर0एस0 के महत्व पर प्रकाश डालें।

....

....

2. पेप्टिक अल्सर की जटिलताओं और लक्षणों को सूचीबद्ध करें। पेप्टिक अल्सर के पोषण प्रबंधन के बारे में विस्तार से बताएं।

....

....
.

8.8 सारांश

इस इकाई में हमने अपच, पेट फूलना, कब्ज, अतिसार और पेप्टिक अल्सर जैसे महत्वपूर्ण जठरांत्र विकारों के बारे में अध्ययन किया। हमने इन विकारों के कारणों, लक्षणों और जटिलताओं तथा इनमें आहार और पोषण संबंधी प्रबंधन के बारे में जानकारी ली। हमने आहारीय संशोधनों तथा अनुमेय और प्रतिबंधित खाद्य पदार्थों के बारे में भी अध्ययन जाना।

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

इकाई का मूल भाग देखें।

अभ्यास प्रश्न 2

इकाई का मूल भाग देखें।

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. अपच के प्रकार, कारणों, लक्षणों तथा पोषण प्रबंधन की व्याख्या कीजिए।
2. कब्ज कितने प्रकार की होती है? कब्ज के लक्षणों तथा आहारीय प्रबंधन के बारे में वर्णन करें।
3. पेप्टिक अल्सर की विभिन्न अवस्थाओं में पोषण सम्बंधी सुझाव दीजिए।
4. उदर कैंसर के जोखिम कारक, लक्षण तथा उपचारात्मक प्रबंधन की चर्चा कीजिए।
5. क्षोभी आंत्र विकार के लक्षणों तथा प्रबंधन की व्याख्या कीजिए।

इकाई 9: हृदय रोगों में आहार

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 हृदय विकारों के प्रकार
9.4 कारक
9.5 हृदय रोगों की जटिलताएं
9.6 उच्च रक्तचाप
9.7 हृदय रोग में आहार नियोजन
9.8 कम सोडियम आहार
9.9 सारांश
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार 2015 में लगभग 17.70 लाख लोगों की मृत्यु हृदय विकारों के कारण हुई जो कुल वैश्विक मृत्यु का 31 प्रतिशत है। शताब्दी की शुरुआत के साथ ही हृदय रोग भारत में मृत्यु दर का प्रमुख कारण बन गए हैं। यह रोग भारतीयों को उनके सबसे अधिक उत्पादक वर्षों में प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, पश्चिमी आबादी में 70 वर्ष की आयु से पहले केवल 23% मौतें हृदय रोगों के कारण होती हैं जबकि भारत में यह संख्या 52% है। भारतीय भले ही किसी भी जीवन शैली, लिंग अथवा उम्र के हों, हृदय रोगों के लिए अनुवांशिक रूप से अधिक संवदेनशील होते हैं। प्रस्तुत इकाई में हम हृदय रोगों के प्रकार, लक्षण, जटिलताओं तथा आहार नियोजन पर चर्चा करेंगे।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप;

- हृदय रोगों के प्रकारों के बारे में जानेंगे;
- हृदय रोगों की जटिलताओं के विषयमें जानेंगे;
- हृदय रोगों में आहार नियोजन पर जानकारी ले पाएंगे।

9.3 हृदय विकारों के प्रकार

हृदय विकारों के कई प्रकार हैं:

- जन्म दोष या अनुवांशिक दोष- जैसे हृदय के कक्षों में छेद होना।
- वाल्व में दोष होना- रक्त के बहाव में रुकावट अथवा रक्त का गलत दिशा में रिसाव होना।
- हृदय धमनी रोग- हृदय की रक्त वाहिकाओं में संकुचन होने से रक्त प्रवाह में रुकावट होना। इसके परिणाम स्वरूप हृदय आघात होना।
- एन्जाइना पेक्टोरिस (Angina pectoris)- अपर्याप्त रक्त प्रवाह के कारण सीने में दर्द होना।
- अतालता (Arrhythmia)- हृदय का असामान्य रूप से धड़कना।
- हृदय में संक्रमण होना। विशेषकर उन व्यक्तियों में जो किसी हृदय रोग से ग्रस्त हों या उन्हें कोई हृदय से सम्बनित अनुवांशिक दोष हो।

9.4 कारक

हृदय रोगों के लिए कई कारक जिम्मेदार होते हैं। ये विभिन्न कारक व्यक्तिगत या संयुक्त रूप से कार्य करते हैं।

1. व्यक्तिगत कारक

- हृदय रोगों का पारिवारिक इतिहास।
- लिंग- पुरुषों में हृदय रोग ज्यादा पाए जाते हैं।
- आयु 30 से 35 वर्ष के मध्य हृदय रोगों की संम्भावनाएं ज्यादा होती हैं।
- अतिभार अथवा मोटापा
- तनाव
- अत्यधिक कार्यभार
- सीमित घंटों की निन्द्रा
- अल्प क्रियाशील जीवनशैली

2. व्यवहारिक कारक

- अत्यधिक धूम्रपान
- अधिक मात्रा में नियमित मदिरापान

- खाने की आदतें जैसे केवल परिष्कृत (refined) भोजन का उपयोग, अधिक मात्रा में संतृप्त वसा का इस्तेमाल, अधिक मात्रा में भोजन करना, कम या लगभग नगण्य शारीरिक गतिविधियां तथा व्यायाम।

3. अन्य कारक

- मधुमेह, उच्च रक्तचाप तथा रक्त में वसा की अधिकता (hyperlipidemia), आम रोग की स्थितियां हैं जो हृदय रोगों से चयापचयी रूप से संबंधित हैं।

9.5 हृदय रोगों की जटिलताएं

हृदय रोगों की जटिलताओं का मुख्य रूप एथेरोस्क्लोरोसिस (Atherosclerosis) है। यह एक रोग जनित प्रक्रिया है जो मस्तिष्क तथा हृदय की धमनियों को प्रभावित करती है। Atherosclerosis नाम को यूनानी शब्द 'Athere' से लिया गया है, जिसका अर्थ होता है 'गाढ़ा पदार्थ', क्योंकि इस प्रक्रिया में पीले गाढ़े पदार्थ (Plaque) के जमाव से रक्त नलिकाओं में घाव बन जाते हैं।

इस प्रक्रिया की शुरुआत व्यक्ति के बचपन से ही बड़ी मांसपेशियों की धमनियों में वसा (विशेषकर कोलेस्ट्रॉल) के जमाव के साथ शुरू हो जाती है जिसके परिणाम स्वरूप धमनियों में वसा युक्त लकीरों के रूप में घाव बन जाते हैं। इसके कारण धमनियों में आंतरिक रूप से बहुत कम घिराव देखा जाता है। परंतु बचपन में यह वसा का जमाव रक्त के बहाव में रुकावट पैदा नहीं करता। यह एथेरोस्क्लेरोसिस की पहली अवस्था है।

दूसरी अवस्था में धमनियों में केन्द्र की तरफ तंतुमय ऊतकों (fibrous tissue) तथा वसा के लगातार जमाव के कारण बड़े उभरे हुए घाव हो जाते हैं। जिन घावों में वसा की मात्रा ज्यादा होती है वह मुलायम अथवा एथेरोमेटस (atheromatus) होते हैं तथा ज्यादा तंतुमय ऊतक वाले घाव कठोर होते हैं जो तंतुमय पट्टिका (fibrous plaque) कहलाते हैं। जैसे-जैसे यह पट्टिका बड़ी होती है, यह संगठित होकर कठोर हो जाती है तथा धमनियों की भीतरी परतों को नुकसान कर उन्हें नष्ट कर देती है। इस तरह की अवस्था मध्यम आयु वर्ग के वयस्कों में हृदय रोगों की अभिव्यक्ति है। रक्त वाहिकाओं में वसा के जमाव से संकुचन के कारण वह संकीर्ण हो जाती हैं तथा इस कारण रक्त के थक्कों का विकास भी हो सकता है। यदि यह विकास हृदय की प्रमुख रक्त नली में होता है तो उस ऊतक क्षेत्र की कोशिकाएं मृत हो जाती हैं जिसे वह रक्त वाहिका रक्त, ऑक्सीजन तथा पोषक तत्वों की आपूर्ति कर रही है। कोशिकाओं के मृत होने की इस प्रक्रिया को इनफाक्ट (Infarct) कहते हैं। हृदय में इस तरह के इनफाक्ट से हृदयाघात हो सकता है।

हृदय की रक्त वाहिकाओं में रुकावट होने से हृदय की मांसपेशियों को ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा नहीं मिल पाती है जिसके कारण सीने में दबाव, जलन तथा तीव्र दर्द होता है। परिणामस्वरूप हृदय में जकड़न महसूस होती है। इस अवस्था को एन्जाइना पेक्टोरिस (angina pectoris) कहते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।

   a. हृदय के असामान्य रूप से धड़कने को .... कहते हैं।

   b. .... प्रक्रिया में पीले गाढ़े पदार्थ (Plaque) के जमाव से रक्त नलिकाओं में घाव बन जाते हैं।

   c. हृदय की रक्त वाहिकाओं में रुकावट होने से हृदय की मांसपेशियों को ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा नहीं मिल पाती है। इस अवस्था को .... कहते हैं।

   d. हृदय के कक्षों में छेद होना, हृदय विकारों का एक .... प्रकार है।

9.6 उच्च रक्तचाप

उच्च रक्तचाप वह रोग है जिसमें हृदय के संकुचन की अवस्था में रक्त वाहिकाओं में रक्त का दबाव पारे के 140 mm Hg से ज्यादा या हृदय के विस्तारण की अवस्था में 90 mm Hg से ज्यादा रहता है या दोनों अवस्थाओं में ज्यादा रहता है। मधुमेह और उच्च रक्तचाप दोनों ही रोगों में हृदय रोग, वृक्क रोग एवं अन्य घातक जटिलताओं का जोखिम रहता है। एक स्वस्थ व्यक्ति का रक्तचाप 120/80 mm Hg होता है। ऊपर की संख्या हृदय संकुचन चाप को बतलाती है तथा नीचे की संख्या हृदय विस्तारण चाप की द्योतक है। इससे अधिक रक्तचाप उच्च रक्तचाप को दर्शाता है। रक्तचाप रक्तदाबमापी (Sphygmomanometer) से नापा जाता है।

उच्च रक्तचाप के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं:

• आयु: 40 की उम्र के पश्चात् रक्तचाप बढ़ने लगता है। • वंशानुक्रम • मोटापा • बुढ़ापा • शारीरिक क्रियाशीलता में कमी • मानसिक तनाव, चिंता, उद्वेग, क्रोध, दुख एवं भय • धमनियों में वसा का जमाव • दीर्घकाल तक नमक का अधिक प्रयोग	• धूम्रपान एवं मद्यपान • आहार में वसा की अधिकता, अधिक शर्करायुक्त भोजन, घी, अंडा, मक्खन आदि का अधिक प्रयोग • गुर्दे में विकार एवं दोष हो जाने से • एड्रीनल ग्रंथियों में ट्यूमर होने से • मूत्रनली में संक्रमण से • व्यायाम का अभाव • भोजन संबंधी आदतें

उच्च रक्तचाप के लक्षण

- सिर दर्द
- कमजोरी एवं चक्कर आना

- बेचैनी महसूस होना
- कब्ज
- आंखों के आगे धुँधलापन छा जाना
- हृदय की धड़कन अनियमित होते-होते रुक जाना
- हृदय की धड़कन बहुत अधिक बढ़ जाना

उपचार

उच्च रक्तचाप में सामान्य प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट के साथ कम ऊर्जा वाला, कम वसा तथा कम सोडियम वाले आहार को ग्रहण करने का परामर्श दिया जाता है।

- प्रतिकिलोग्राम शरीर के भार पर 20 किलो कैलोरी का प्रयोग सबसे उत्तम होता है।
- मोटे व्यक्तियों को आहार में और भी कम कैलोरी का प्रयोग करना चाहिए।
- प्रति किलोग्राम शरीर के भार पर एक ग्राम प्रोटीन लेने का परामर्श दिया जाता है।
- आहार में वसा का प्रयोग कम से कम होना चाहिए।
- नमक का प्रयोग 2-3 ग्राम या इससे कम प्रतिदिन होना चाहिए।
- धूम्रपान करना तथा तम्बाकू चबाना पूर्णतया छोड़ देना चाहिए।
- परिरक्षित खाद्य पदार्थों जैसे अचार, डिब्बा-बंद भोज्य वस्तुओं, चटनी, मसालों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- रोगी को पर्याप्त शारीरिक एवं मानसिक विश्राम दिया जाना चाहिए।
- रक्तचाप कम करने की दवाईयों का प्रयोग किया जा सकता है।
- रोगी को गाढ़ी चाय, कॉफी आदि पीने को नहीं देनी चाहिए क्योंकि इन पेय पदार्थों में कैफीन होता है, जो रक्तचाप को बढ़ाता है।
- उच्च रक्तचाप पर नियंत्रण पाने हेतु रोगी को मानसिक तनाव, चिन्ता, भय, उद्वेग आदि से बचना चाहिए।
- व्यायाम नियमित रूप से करना चाहिए।

9.7 हृदय रोग में आहार नियोजन

लोगों की जीवन शैली में बदलाव के कारण उनकी खानपान की आदतों का कई अपक्षयी रोगों (degenerative diseases) के विकास पर प्रभाव पड़ा है जिनमें हृदय रोग प्रमुख हैं। रक्त में वसा का उच्च स्तर हृदय रोग का एक प्रमुख

जोखिम कारक है। अब यह एक स्थापित तथ्य है कि आहार का हृदय रोगों की रोकथाम में महत्वपूर्ण श्रेय है। संतुलित तथा असंतृप्त वसा में कम आहार हृदय रोगों की रोकथाम में मदद करता है।

आहार के सामान्य दिशा निर्देश

- कुल वसा, कुल ऊर्जा खपत का 30 प्रतिशत या कम होना चाहिए।
- कोलेस्ट्रॉल बढ़ाने वाले वसीय अम्ल (fatty acids) जैसे संतृप्त (saturated) तथा ट्रान्स वसीय अम्ल (trans fatty acids) 7 प्रतिशत से कम होने चाहिए।
- भोजन में वसा, असंतृप्त प्रकार की होनी चाहिए तथा कोलेस्ट्रॉल का कुल सेवन 200 mg प्रति दिन से कम होना चाहिए।

हृदय रोग का आहार नियोजन:

कैलोरीज का संतुलन तथा शारीरिक भार

मोटापा हृदय रोगों का एक प्रमुख कारक है। कुल कैलोरी सेवन में कमी द्वारा वजन में कमी की जा सकती है। अगर किसी व्यक्ति में मोटापे के साथ मधुमेह भी है, उस व्यक्ति में हृदय रोगों की संभावनाएँ और बढ़ जाती हैं। पूरी तरह से आराम कर रहे मरीज को 1000-1200 किलो कैलोरी आहार दिया जा सकता है।

वसा

वसा के विभिन्न प्रकारों का रक्त के कुल कोलेस्ट्रॉल स्तर पर अलग-अलग प्रभाव होता है। संतृप्त वसा रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को बढ़ाते हैं। इसलिए जहाँ तक संभव हो संतृप्त वसा युक्त भोज्य पदार्थ का सेवन न के बराबर या सीमित होना चाहिए। सामान्यतया किसी भी व्यक्ति की कुल कैलोरी सेवन का 15-20 प्रतिशत वसा से आता है। हृदय रोग के मरीजों में इस प्रतिशत को कम कर 10 प्रतिशत कर देना चाहिए। पशु वसा जैसे घी, मक्खन, वनस्पति घी तथा कई प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ जैसे पेस्ट्री या केक संतृप्त वसा के मुख्य स्त्रोत हैं। नारियल तथा ताड़ (Coconut and Palm) के तेल में भी संतृप्त वसा की मात्रा अधिक होती है। असंतृप्त वसा रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को कम कर सकती है। वनस्पति तेल जैसे safflower, मक्के का तेल, सोयाबीन तथा तिल का तेल असंतृप्त वसा के सबसे अच्छे स्त्रोत हैं।

आहार के माध्यम से कोलेस्ट्रॉल के सेवन में कटौती की जानी चाहिए। भोज्य पदार्थ जिनमें कोटेस्ट्रॉल की मात्रा ज्यादा होती है, उनका सेवन कम करना चाहिए जैसे अंडे की जर्दी, मक्खन, क्रीम, पनीर, माँस, चॉकलेट, केक आदि।

कार्बोहाइड्रेट

ग्लूकोज़, सुकरोज़ तथा फ्रुक्टोज़ जैसे सरल कार्बोहाइड्रेट्स का सेवन कम करना चाहिए क्योंकि यह शरीर को आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं तथा इनका ज्यादा सेवन रक्त में वसा का स्तर बढ़ाने में सहायक होता है।

जटिल कार्बोहाइड्रेट्स जैसे संपूर्ण गेहूँ का आटा, साबुत दालें, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, कच्चे बिना छिले फल का सेवन हृदय रोगों में लाभकारी है।

अन्य आहार संबंधी कारक

- खाद्य पदार्थ जैसे लहसुन अपने चिकित्सकीय गुणों के कारण रक्त में कोलेस्ट्रॉल का स्तर कम करने में सहायक होता है।
- हृदय रोगों में प्रोटीन के सेवन की मात्रा में बदलाव नहीं होता परंतु कैलोरीज, वसा तथा कार्बोहाइड्रेट का सेवन उचित तथा नमक का सेवन सीमित होना चाहिए।

9.8 कम सोडियम आहार

हृदय रोग जैसे उच्च रक्तचाप में कम सोडियम आहार की सलाह दी जाती है। हमारे रोजमर्रा के भोजन में सोडियम का सबसे अच्छा तथा मुख्य स्रोत खाने का नमक है। प्रति ग्राम नमक के सेवन से रक्तचाप के डायस्टॉलिक (diastolic) मान में औसत रूप से 0.8 mm Hg की वृद्धि दिखाई देती है। रक्तचाप हृदय रोगों का एक अच्छा तथा स्वतंत्र मानक है।

रोगी की स्थिति के अनुसार तीन प्रकार के आहार निर्धारित हैं-

- हल्के प्रतिबंध- प्रति दिन 2-3 ग्राम तक सोडियम का सेवन मान्य।
- मध्यम प्रतिबंध- प्रति दिन 1-2 ग्राम तक सोडियम का सेवन मान्य।
- कठोर/तीव्र प्रतिबंध- प्रति दिन 1 ग्राम से कम सोडियम का सेवन मान्य।

सामान्य निर्देश

- खाने में नमक का कम उपयोग करें।
- सोडियम बाईकार्बोनेट (Sodium carbonate) अथवा बेकिंग सोडा का खाने में उपयोग न करें तथा उन पदार्थों का भी जिनमें यह डाला गया हो, जैसे केक, बिस्किट, ब्रैड आदि।

हृदय रोगों में वर्जित खाद्य पदार्थ

- गाढ़े दूध के उत्पाद जैसे रबड़ी, बर्फी, पेड़ा, क्रीम, आइसक्रीम
- तले हुए खाद्य पदार्थ जैसे समोसे, पूरी, पकोड़ा आदि

- वसा युक्त माँस जैसे यकृत, गुर्दा, सभी प्रकार के संसाधित मीट, अंडे की जर्दी
- शराब तथा अन्य मादक पेय
- पशु वसा जैसे घी, मक्खन, वनस्पति घी, ताड़ तथा नारियल का तेल
- काजू, बादाम, मूँगफली, नारियल
- नमकीन भोज्य पदार्थ जैसे अचार, चटनी, पापड़
- बेकरी पदार्थ जैसे केक, पेस्ट्री, मीठे तथा नमकीन बिस्किट, नान खटाई, क्रीम बिस्किट

सीमित मात्रा में लिए जाने वाले खाद्य पदार्थ

- अनाज जैसे चावल, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, आदि।
- दालें, मैक्रोनी, पास्ता, नूडल्स, बैड
- बिना मलाई का दूध
- आलू, शकरकंद
- मछली, अंडे की सफेदी
- चीनी, गुड़ तथा नमक

प्रचुर मात्रा में लिए जाने वाले खाद्य पदार्थ

- हरी पत्तेदार सब्जियाँ तथा फल (उन सब्जियों को छोड़कर जिनका सोडियम स्तर ज्यादा हो जैसे पालक, चौलाई, धनिया तथा फूलगोभी और मूली)
- सूप, सलाद (स्वाद के लिए नमक की जगह नींबू, इमली तथा सिरके का इस्तेमाल किया जा सकता है)
- छाछ, नारियल पानी
- लहसुन तथा प्याज

अन्य लाभकारी निर्देश

- काम तथा आराम संबंधी आदतों को नियमित करना चाहिए।
- नियमित रूप से शारीरिक व्यायाम तथा योगाभ्यास करना चाहिए।
- खाद्य पदार्थों को खरीदने से पहले उनकी पोषण संरचना जानने हेतु खाद्य लेबल अच्छी तरह पढ़ना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 2

1. सही अथवा गलत बताइए।

a. उच्च रक्तचाप वह रोग है जिसमें हृदय के संकुचन की अवस्था में रक्त वाहिकाओं में रक्त का दबाव पारे के 140 mm Hg से ज्यादा रहता है।
b. उच्च रक्तचाप में अधिक सोडियम युक्त आहार का परामर्श दिया जाता है।
c. हृदय रोगों के आहार नियोजन में कोलेस्ट्रॉल का कुल सेवन 200 mg प्रति दिन से कम होना चाहिए।
d. सोडियम के आहार में हल्के प्रतिबंध में प्रति दिन 1-2 ग्राम तक सोडियम का सेवन मान्य होता है।
e. हृदय रोगों में नियमित व्यायाम लाभकारी है।

9.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने हृदय रोगों के प्रकार, लक्षण, जटिलताओं तथा आहार नियोजन पर चर्चा की। हृदय विकारों के कई प्रकार हैं जैसे अनुवांशिक दोष, वाल्व में दोष होना, हृदय धमनी रोग, एन्जाइना पेक्टोरिस, अतालता तथा हृदय में संक्रमण होना। इनके लिए कई व्यक्तिगत और व्यवहारिक कारक उत्तरदायी हैं जिनका उल्लेख इस इकाई में किया गया। हृदय रोगों की जटिलताओं का मुख्य रूप एथेरोस्क्लोरोसिस (Atherosclerosis) है जिसके विकास में संतृप्त वसीय अम्लों की भूमिका मुख्य है। उच्च रक्तचाप वह रोग है जिसमें हृदय के संकुचन की अवस्था में रक्त वाहिकाओं में रक्त का दबाव पारे के 140 mm Hg से ज्यादा या हृदय के विस्तारण की अवस्था में 90 mm Hg से ज्यादा रहता है या दोनों अवस्थाओं में ज्यादा रहता है। मधुमेह और उच्च रक्तचाप दोनों ही रोगों में हृदय रोग, वृक्क रोग एवं अन्य घातक जटिलताओं का जोखिम रहता है। हृदय रोगों के आहार नियोजन में कैलोरी का प्रबंध, वसा को सीमित करना, अधिक नमक वाले खाद्य पदार्थों को सीमित करना तथा एक क्रियाशील जीवनशैली अपनाना प्रमुख हैं।

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।

a. अतालता (Arrhythmia)
b. एथेरोस्क्लोरोसिस (Atherosclerosis)
c. एन्जाइना पेक्टोरिस (angina pectoris)
d. जन्म दोष या अनुवांशिक दोष

अभ्यास प्रश्न 2

1. सही अथवा गलत बताइए।

a. सही
b. गलत

c. सही
d. गलत
e. सही

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. हृदय विकारों के प्रकारों एवं कारकों की व्याख्या कीजिए।
2. एथेरोस्क्लेरोसिस के विकास में वसा की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
3. उच्च रक्तचाप क्या है? इसके कारणों एवं लक्षणों की व्याख्या कीजिए।
4. हृदय रोगों में आहार नियोजन पर टिप्पणी कीजिए।

खण्ड 3: उपचारात्मक पोषण एवं आहार चिकित्सा- II

इकाई 10: मधुमेह में आहार

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 मधुमेह की अवस्था
10.4 मधुमेह के प्रकार
10.5 मधुमेह के लक्षण
10.6 मधुमेह के कारण
10.7 मधुमेह की जटिलताएं
10.8 मधुमेह में उपचार
10.8.1 मधुमेह का आहारीय उपचार
10.8.2 मधुमेह का इन्सुलिन द्वारा उपचार
10.8.3 मधुमेह का दवाओं द्वारा उपचार
1.8.4 मधुमेह में व्यायाम
10.9 सारांश
10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

मधुमेह चयापचय से सम्बन्धित रोग है। साधारण भाषा में मधुमेह अथवा डायबिटीज को शर्करा की बीमारी भी कहते हैं। इसमें कार्बोहाइड्रेट का चयापचय पूर्ण रूप से नहीं हो पाता है, साथ ही प्रोटीन तथा वसा के चयापचय पर भी प्रभाव पड़ता है। कार्बोहाइड्रेट की अन्तिम इकाई ग्लूकोज कहलाती है। कार्बोहाइड्रेट के पाचन होने पर वह ग्लूकोज के रूप में रक्त द्वारा अवशोषित होता है और ऑक्सीकरण द्वारा कोशिकाओं को ऊर्जा प्रदान करता है। परन्तु ग्लूकोज की अतिरिक्त मात्रा इन्सुलिन नामक हार्मोन की उपस्थिति में ग्लाइकोजन में परिवर्तित होकर शरीर के विभिन्न भागों में विशेषकर यकृत में एकत्रित हो जाती है। इन्सुलिन की कमी होने पर चयापचय की क्रिया में बाधा उत्पन्न होती है। अतिरिक्त ग्लूकोज ग्लाइकोजन में परिवर्तन नहीं होता है, जिससे रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है और यह

ग्लूकोज मूत्र के द्वारा निष्कासित होने लगता है। मधुमेह के कारण दीर्घकाल में आँखों, गुर्दों तथा तंत्रिका तंत्र में स्थाई परिवर्तन हो जाते हैं। प्रस्तुत इकाई में आप मधुमेह रोग के बारे में विस्तारपूर्वक जानेंगे तथा मधुमेह में आहार नियोजन का अध्ययन करेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात शिक्षार्थी;

- मधुमेह रोग के प्रकार के विषय में जान पाएंगें;
- मधुमेह रोग के लक्षणों एवं कारणों की जानकारी प्राप्त करेंगे; तथा
- मधुमेह में आहारीय उपचार के बारे में जानेंगे।

10.3 मधुमेह की अवस्था

मधुमेह की अवस्था में ग्लूकोज की मात्रा प्रति 100 मिली लीटर रक्त में 100 मिली ग्राम से अधिक होती है। जब रक्त में यह मात्रा 180 मिली ग्राम प्रति 100 मिली लीटर से अधिक हो जाती है तो ग्लूकोज गुर्दे की कोशिकाओं से छनकर अधिक मात्रा में मूत्र द्वारा शरीर से बाहर विसर्जित होने लगता है। इस अवस्था को ग्लाइकोसूरिया (Glycosuria) कहते हैं।

कार्बोहाइड्रेट का पाचन होने पर वह ग्लूकोज के रूप में रक्त द्वारा अवशोषित होकर यकृत में पहुँचता है। यकृत में वह ग्लाइकोजन में परिवर्तित होकर संग्रहित हो जाता है। ग्लूकोज का ग्लाइकोजन में परिवर्तन इन्सुलिन (Insulin) हार्मोन पर निर्भर करता है। इन्सुलिन पित्ताशय में उपस्थित नालिका विहीन ग्रन्थि आइलेट्स ऑफ लैंगरहैंस (Islets of Langerhans) की बीटा कोशिका से सीधा रक्त में स्रावित होता है। जब रक्त में इसकी कमी हो जाती है तो कार्बोहाइड्रेट के चयापचय को प्रभावित करते हुए मधुमेह का रोग उत्पन्न हो जाता है।

10.4 मधुमेह के प्रकार

मधुमेह के कई प्रकार हैं जिनका विवरण निम्न है।

- **इन्सुलिन पर निर्भर मधुमेह या टाइप 1 मधुमेह:** इस प्रकार का मधुमेह 40 वर्ष की आयु से पूर्व हो जाता है। इन्सुलिन की कमी या अनुपस्थिति के कारण कार्बोहाइड्रेट के चयापचय में बाधा उत्पन्न होती है। इससे रक्त में बहुत तेजी से ग्लूकोज एकत्रित हो जाता है एवं रोगी की स्थिति बेहद गम्भीर होने पर अचानक इस रोग के बारे में पता चलता है। इस प्रकार के मधुमेह में रोगी पूरी तरह से (कृत्रिम इन्सुलिन गोलियों या इन्जेक्शन के रूप में) इन्सुलिन पर निर्भर रहता है। रक्त में ग्लूकोज की मात्रा में अधिक उतार चढ़ाव होने के कारण अक्सर रोगी मूर्छित हो जाता है।

- **बिना इन्सुलिन पर निर्भर मधुमेह या टाइप 2 मधुमेह:** यह मधुमेह 40 वर्ष की आयु के बाद देखा जाता है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति अधिकांशत: अधिक वजन के होते हैं तथा बहुत अधिक थकान का अनुभव करते हैं। इस प्रकार के मधुमेह की शुरूआत धीरे-धीरे इन्सुलिन की मात्रा सीमित होने के कारण होती है। इस प्रकार के मधुमेह रोगी यदि उचित आहारीय उपचार लें तो बिना किसी दवाई या कृत्रिम सहायता के एक स्थिर स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकते हैं।
- **कुपोषण जनित मधुमेह:** प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण की स्थिति में यकृत द्वारा सही से क्रिया न करने पर इन्सुलिन के स्राव पर भी असर पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप कुपोषण जनित मधुमेह हो जाता है।
- **गर्भावस्था जनित मधुमेह:** कई बार गर्भावस्था में कुछ महिलाओं का रक्त ग्लूकोज बढ़ जाता है। इसे गर्भावस्था जनित मधुमेह कहते हैं। यह अल्पकालीन होता है और उचित आहार में परहेज करने से इस पर नियंत्रण पाया जा सकता है। प्रसव के उपरान्त यह समाप्त हो जाता है, परन्तु इस प्रकार की महिलाओं मे बाद की अवस्था में मधुमेह होने की सम्भावनाएं अधिक रहती है।

10.5 मधुमेह के लक्षण

मधुमेह के निम्न लक्षण होते हैं:

- **बहुमूत्रता (Polyurea):** मूत्र का बार-बार अनावश्यक गति से विसर्जन होना बहुमूत्रता कहलाता है। रक्त में अधिक ग्लूकोज होने से गुर्दों द्वारा शरीर से अतिरिक्त ग्लूकोज का मूत्र द्वारा निष्कासन बढ़ जाता है। इस कारण मधुमेह में अधिक मात्रा में बार-बार मूत्र उत्सर्जन होता है ताकि ग्लूकोज ज्यादा मात्रा में शरीर से बाहर निकल सके।
- **पॉलीडिप्सिया/अधिक प्यास लगना (Polydipsia):** मूत्र के रूप में जल का अधिक निष्कासन होने से रोगी को प्यास अधिक लगती है।
- **पॉलीफेजिया/भूख में वृद्धि (Polyphagia):** पोषक तत्वों का पूर्ण उपयोग न होने के कारण कोशिकाओं की मांग पूरी नहीं हो पाती और रोगी को अधिक भोजन की आवश्यकता पड़ती है।
- मूत्र द्वारा पानी की अत्यधिक मात्रा शरीर से बाहर निकल जाने के कारण कोशिकाओं में पानी की कमी हो जाती है जिससे निर्जलीकरण की स्थिति पैदा हो जाती है।
- **सामान्य कमजोरी तथा शरीर भार में कमी:** पोषक तत्वों का समुचित उपयोग न होने के कारण शरीर के भार में कमी होने लगती है और कमजोरी आने लगती है।
- **प्रतिरोधक क्षमता में कमी:** रोगी के शरीर में संक्रामक रोगों से बचाव करने की शक्ति क्षीण हो जाती है जिससे विभिन्न संक्रमण जैसे तपेदिक आदि होने की सम्भवनाएं बढ़ जाती है।

- ग्लूकोज की उपस्थिति में जीवाणु तीव्रता से वृद्धि करते हैं जिससे स्त्री के जनन अंगों में खुजली, चोट लगने पर घाव का देर से भरना तथा त्वचा (विशेषकर गर्दन के पीछे या कमर पर) में छोटे-छोटे दाने या फोड़े देखे जा सकते हैं।
- अधिक समय तक मधुमेह पर नियन्त्रण न रखने से रोगी को उच्च रक्तचाप हो जाता है तथा मोतियाबिन्द होने की सम्भावना बढ़ जाती है।
- लम्बे समय तक अनियंत्रित मधुमेह की स्थिति में कीटोसिस की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कीटोसिस एक चयापचय अवस्था है जिसमें रोगी के शरीर में रक्त या मूत्र में कीटोन निकायों का उच्च स्तर देखा जाता है।

10.6 मधुमेह के कारण

मधुमेह के कुछ कारण निम्न हैं:

- **वंशानुक्रम:** मधुमेह माता-पिता से सन्तान में स्थानान्तरित होने वाला रोग है। अगर माता-पिता दोनों मधुमेह से ग्रस्त हैं तो उनकी सभी सन्तानों को मधुमेह से ग्रस्त होने की सम्भावना होती है। यदि माता या पिता में से किसी एक को मधुमेह है तो सन्तान को या तो प्रत्यक्ष रूप से मधुमेह होगा अथवा वह इस रोग के वाहक के रूप में अपनी सन्तान को यह रोग स्थानान्तरित करेगा।
- **उम्र:** आयु वृद्धि के साथ-साथ शारीरिक अंगों में क्रियाशीलता की सीमितता के कारण 80 प्रतिशत व्यक्तियों में 50 वर्ष के बाद इस रोग को ग्रहण करने की सम्भावनाएं बढ़ जाती है।
- **लिंग:** कम उम्र में पुरूषों में मधुमेह होने की सम्भावना अधिक रहती है। वहीं दूसरी ओर महिलाएं प्रौढ़ावस्था के दौरान इससे ग्रस्त होती हैं।
- **मोटापा:** मोटे व्यक्तियों में यह रोग अधिक पाया जाता है। अधिकतर प्रौढ़ावस्था के मधुमेह रोगी मोटापे से ग्रस्त देखे जाते हैं। मोटापे या कम क्रियाशील व्यक्तियों में इन्सुलिन निर्माण सीमित होने पर मधुमेह होने की सम्भावना बढ़ जाती है। जो व्यक्ति अधिक कार्बोहाइड्रेट युक्त खाद्य पदार्थ जैसे मीठे खाद्य पदार्थ, आलू, चावल का अधिक सेवन करते हैं, उन व्यक्तियों के रक्त में ग्लूकोज मात्रा अधिक बढ़ जाती है जिससे पित्ताशय अधिक इन्सुलिन स्रावित करता है। अधिक समय तक पित्ताशय के अधिक क्रियाशील होने से आइलेट ऑफ लैंगरहैन्स की कोशिकाएं थक जाती हैं तथा अन्त में नष्ट हो जाते हैं जिससे इन्सुलिन कम बनने लगता है और मधुमेह रोग हो जाता है।
- **संक्रमण:** कुछ संक्रमण या यकृत विकारों में इन्सुलिन के स्राव में बाधा के कारण भी मधुमेह हो जाता है।
- **हार्मोन्स:** कुछ नलिक विहीन हार्मोन जैसे पिट्यूटरी ग्रन्थि का अग्रभाग (Anterior Pitutary) अधिवृक्क ग्रन्थि (Adrenal Cortical Hormone), थायराइड ग्रन्थि (Thyroxine Hormone) इन्सुलिन हार्मोन्स के कार्य के

विपरीत कार्य करते हैं। सामान्यत: सभी हारमोन्स का आपस में सन्तुलन बना रहता है परन्तु जब यह सन्तुलन बिगड़ जाता है तो इन्सुलिन का कार्य प्रभावित होता है तथा ग्लूकोज, ग्लाइकोजन में परिवर्तित नहीं हो पाता और रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है।

- **मानसिक तनाव या चिन्ता:** मानसिक तनाव चिन्ता या अस्थिरता की स्थिति लम्बे समय तक रहने से कई बार मधुमेह देखा जाता है।
- **गर्भावस्था:** गर्भावस्था में कार्बोहाइड्रेट के चयापचय पर प्रभाव पड़ता है जिस कारण जिन स्त्रियों में मधुमेह की सम्भावना अधिक होती है उनमें गर्भावस्था के समय मधुमेह रोग हो जाता है।

10.7 मधुमेह की जटिलताएं

ग्लूकोज का सही रूप से चयापचय न हो पाने के कारण शरीर में पर्याप्त ऊर्जा उत्पन्न नहीं हो पाती। इस कमी को पूरा करने के लिए वसा का ऑक्सीकरण तेजी से होने लगता है। वसा के ऑक्सीकरण के कारण यकृत में कीटोन बॉडीज बनने लगते हैं एवं रक्त में एकत्रित होने लगते हैं। कीटोन बॉडीज अम्लीय प्रवृत्ति के होने के कारण शरीर में अम्लीयता को बढ़ा देते हैं। यह बेहद गम्भीर स्थिति होती है। इसमें रोगी को मूर्छा आ जाती है। यदि समय रहते स्थिति को नियन्त्रित न किया जाए तो रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। कई बार रोग की भयंकर तीव्रता की स्थिति में रोगी कई दिनों तक मूर्छित अवस्था में ही पड़ा रहता है जिसे डायबिटिक कोमा (Diabetic Coma) कहते हैं।

मधुमेह रोग की तीव्र अवस्था में नाड़ी सम्बन्धी विकार भी उत्पन्न हो जाते हैं जैसे पागलपन, चिड़चिड़ापन, विक्षिप्तता इत्यादि। मधुमेह के कारण आँखों के स्वास्थ्य एवं रोशनी पर भी प्रभाव पड़ता है । आँखों में उपस्थित रक्त कोशिकाओं से रक्त स्राव होने लगता है। इससे अंधापन होने की सम्भावना बढ़ जाती है। कभी कभी आँखों की दृष्टि धुँधली (Blurring of Vision) हो जाती है।

मधुमेह के कारण प्रोटीन का उपयोग ऊर्जा प्रदान करने में किया जाता है, जिससे इसका मुख्य कार्य निर्माणात्मक गौण हो जाता है। परिणामत: नई कोशिकाओं का निर्माण नहीं हो पाता है। साथ ही तन्तुओं में हुई टूट फूट की मरम्मत भी नहीं हो पाती है। अत: मांसपेशियाँ कमजोर व निर्बल हो जाती हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. ग्लूकोज का ग्लाइकोजन में परिवर्तन .... हार्मोन पर निर्भर करता है।
   b. मधुमेह में पोषक तत्वों का पूर्ण उपयोग न होने के कारण कोशिकाओं की मांग पूरी नहीं हो पाती और रोगी को अधिक भोजन की आवश्यकता पड़ती है। इस अवस्था को .... कहते हैं।
   c. गर्भावस्था में............................ के चयापचय पर प्रभाव पड़ता है जिस कारण गर्भवती स्त्रियों में मधुमेह की सम्भावना अधिक होती है।

d. कई बार मधुमेह रोग की भयंकर तीव्रता की स्थिति में रोगी कई दिनों तक मूर्छित अवस्था में ही पड़ा रहता है जिसे .... कहते हैं।

10.8 मधुमेह में उपचार

मधुमेह के रोग का कोई स्थायी उपचार नहीं है, परन्तु इसे कुछ हद तक नियंत्रित रखा जा सकता है। मोटापे के कारण यदि व्यक्ति को मधुमेह है तो वजन पर नियंत्रण रखना अत्यंत आवश्यक है। आहार में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके मधुमेह पर अंकुश लगाया जा सकता है। दवाइयों द्वारा भी इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है। मधुमेह का उपचार निम्नानुसार किया जा सकता है:

- आहार द्वारा
- इंसुलिन इंजेक्शन देकर
- खाने की दवाओं द्वारा
- व्यायाम द्वारा

10.8.1 मधुमेह का आहारीय उपचार

आहार द्वारा मधुमेह को नियंत्रित किया जा सकता है। मधुमेह से ग्रसित रोगी उपयुक्त उपचारात्मक आहार द्वारा एक सामान्य जीवन व्यतीत कर सकता है। आहार द्वारा मधुमेह का उपचार करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि आहार से प्राप्त ऊर्जा रोगी व्यक्ति के कुल शारीरिक ऊर्जा माँग से 5 प्रतिशत कम हो।

कैलोरी (ऊर्जा): मधुमेह के रोगी के लिए आहार तालिका बनाने से पहले रोगी को दी जाने वाली कैलोरी को जानना अत्यन्त आवश्यक है। अलग-अलग वजन के रोगी को तथा अलग क्रियाशीलता वाले व्यक्ति को दी जाने वाली कैलोरी की मात्रा भी भिन्न-भिन्न होती है। व्यक्ति ऊर्जा कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा प्रोटीन से प्राप्त करता है। विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों में इन तीनों पोषक तत्वों को घटा बढ़ाकर ऊर्जा की पूर्ति की जाती है, जैसे मोटे व्यक्ति के आहार में वसा की मात्रा कम दी जाती है तथा प्रोटीन की मात्रा बढ़ा दी जाती है। एक सामान्य क्रियाशील एवं वजन वाले व्यक्ति को 30 कैलोरी प्रति किलोग्राम शारीरिक भार के बराबर ऊर्जा की आवश्यकता होती है अर्थात 60 किलोग्राम शारीरिक भार वाले साधारण क्रियाशील व्यक्ति को 1800 कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता होती है तथा यह ऊर्जा निम्न पोषक तत्वों से निम्नलिखित अनुपात में प्राप्त की जाती है:

- कार्बोहाइड्रेट से 50 प्रतिशत।
- प्रोटीन से 20 प्रतिशत।
- वसा से 30 प्रतिशत।

गर्म प्रदेशों की अपेक्षा ठण्डे प्रदेशों में 10 प्रतिशत ऊर्जा की अधिक आवश्यकता होती है।

ऊर्जा की आवश्यकता (प्रति किलोग्राम भार)

क्रमांक	वजन	कियाशीलता		
		कम	मध्यम	अत्यधिक
1	कमजोर व्यक्ति (Under Weight)	35	40	45
2	साधारण वजन के व्यक्ति (Standard Weight)	30	35	40
3	मोटे व्यक्ति (Over Weight)	20	25	30
4	शैया पर लेटे व्यक्ति के लिए	25		

कार्बोहाइड्रेट: सामान्यत: मधुमेह के रोगी के आहार में कार्बोहाइड्रेट की अधिक कमी नहीं की जाती है लेकिन उन रोगियों के आहार में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा घटायी जाती है जिनको इन्सुलिन देने की आवश्यकता नहीं होती है। कार्बोहाइड्रेट की मात्रा का निर्धारण रोगी के रक्त ग्लूकोज स्तर, मूत्र परीक्षण एवं इन्सुलिन की उपलब्धता पर निर्भर करती है। कार्बोहाइड्रेट की मात्रा का रोगी पर काफी प्रभाव पड़ता है क्योंकि कार्बोहाइड्रेट देने से कीटोन बॉडीज निर्मित होनी शुरू हो जाती है और रक्त में ग्लूकोज की मात्रा और बढ़ जाती है। मूत्र में कीटोन की उपस्थिति रोकने के लिए कम से कम 100 ग्राम कार्बोहाइड्रेट तथा रक्त में ग्लूकोज की मात्रा सामान्य बनाये रखने के लिए अधिक से अधिक 260 ग्राम कार्बोहाइड्रेट व्यक्ति के आहार में उपस्थित होनी चाहिए। मोटे व्यक्ति के लिए वसा की मात्रा को घटाकर कार्बोहाइड्रेट की मात्रा 60 प्रतिशत तक बढ़ा दी जाती है। व्यक्ति की आवश्यक कार्बोहाइड्रेट की मात्रा ग्राम में इस प्रकार भी निकाल सकते हैं:

कुल आवश्यक कैलोरी को 1/10 वाँ भाग = कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)

उदाहरण:

1800 कैलोरी x $\frac{1}{10} = 180$ ग्राम कार्बोहाइड्रेट

अर्थात $180 \times 4 =$ 720 कैलोरी ऊर्जा कार्बोहाइड्रेट से प्राप्त होती है।

कार्बोहाइड्रेट की मात्रा के अलावा उसके प्रकार का भी मधुमेह में काफी महत्व है। रोगी को कार्बोहाइड्रेट के ऐसे स्त्रोत नहीं देने चाहिए जो शरीर में जाते ही तुरन्त ग्लूकोज में बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए चीनी, मिठाई इत्यादि। अपितु जटिल कार्बोहाइडेट जैसे साबुत दालें, अनाज, रेशे युक्त आहार इत्यादि जो धीरे-धीरे ऊर्जा प्रदान करते हैं, लाभदायक सिद्ध होते हैं।

वसा: मधुमेह के रोगी के आहार में वसा की कम मात्रा होनी चाहिए साथ ही असंतृप्त वसा जैसे रिफाइण्ड तेल, सरसों का तेल, मूँगफली का तेल इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए जिससे रक्त में कोलेस्ट्रॉल का स्तर न बढ़ पाये तथा धमनियों को मोटा होने से बचाया जा सके। दूध व उसके उत्पादों में काफी वसा पाई जाती है। अत: रोगी को बिना

मलाई वाला अथवा टोन्ड दूध व उससे बने उत्पाद ही देने चाहिए। शरीर को आवश्यक कुल ऊर्जा का 30 प्रतिशत भाग वसा से प्राप्त करना चाहिए।

प्रोटीन: मधुमेह के रोगी को प्रोटीन की उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी कि एक स्वस्थ व्यक्ति को। इसलिए आहार में रोगी को आवश्यकतानुसार प्रोटीन देनी चाहिए। सामान्यत: ऊर्जा का 15 से 20 प्रतिशत प्रोटीन द्वारा पूरा होना चाहिए। मधुमेह में रोगी की प्रोटीन आवश्यकताएं शारीरिक स्थिति के अनुसार 1.0 से 1.5 ग्राम प्रति किलो शारीरिक वजन तक हो सकती है। रोगी को सामान्य से अधिक प्रोटीन इसलिए दिया जाता है क्योंकि रोगी के शरीर में इन्सुलिन की कमी या अनुपस्थिति में पर्याप्त ग्लूकोज का उपयोग नहीं किया जाता है। परन्तु अधिक मात्रा में प्रोटीन देने से ग्लूकोनियोजिनेसिस (Gluconeogenesis) द्वारा रोगी के शरीर में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है, साथ ही नाइट्रोजन पदार्थ भी रक्त में बढ़ जाता है। प्रोटीन का चयापचय बढ़ने से रोगी की मांसपेशियां कमजोर पड़ जाती हैं एवं वजन घटने लगता है। इसके अलावा बच्चों, गर्भवती एवं धात्री महिलाओं को प्रोटीन की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। रोगी के आहार में प्रोटीन के उच्च जैविक मूल्य वाले स्रोत एवं उच्च प्रोटीन मूल्य वाले आहार जैसे अण्डा, सोयाबीन, दालें, फलियाँ, अनाज इत्यादि पर्याप्त मात्रा मे शामिल करने चाहिए।

विटामिन: विटामिन बी समूह के विभिन्न सत्व कार्बोहाइड्रेट के चयापचय के लिए आवश्यक होते हैं। इनकी कमी होने से कोशिकाओं में पायरूविक अम्ल (Pyruvic Acid) तथा लेक्टिक अम्ल (Lactic Acid) की मात्रा बढ़ जाती है जिससे नाड़ी ऊतक क्षतिग्रस्त होने लगते हैं। नाड़ी तन्त्र की क्षति को रोकने के लिए विटामिन बी समूह अधिक मात्रा में देने चाहिए। साथ ही अन्य विटामिनों की भी आहार में अधिकता होनी चाहिए।

खनिज लवण: मधुमेह के रोगी को खनिज लवणों की सामान्य मात्रा की आवश्यकता पड़ती है लेकिन मधुमेह के साथ-साथ यदि रोगी उच्च रक्त चाप से पीड़ित है तो उसके आहार में सोडियम की मात्रा कम करनी पड़ती है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. सही अथवा गलत बताइए।
   a. मधुमेह की स्थिति ऊतकों में ग्लूकोज का ऑक्सीकरण अधिक हो जाता है।
   b. सामान्यत एक प्रौढ़ व्यक्ति के रक्त में ग्लूकोज 80-120 मिग्रा प्रति 100 मिली (Blood) होता है।
   c. एक सामान्य क्रियाशील एवं वजन वाले व्यक्ति को 30 कैलोरी प्रति किलोग्राम शारीरिक भार के बराबर ऊर्जा की आवश्यकता होती है।
   d. मधुमेह की स्थिति में सरल कार्बोहाइड्रेट का सेवन अत्यंत लाभकारी है।

10.8.2 मधुमेह का इन्सुलिन द्वारा उपचार

इन्सुलिन रक्त में उपस्थित ग्लूकोज के स्तर को कम करता है परन्तु इसका प्रयोग चिकित्सक की देखरेख में किया जाना चाहिए क्योंकि इसके प्रयोग से रक्त शर्करा की मात्रा एकदम से कम हो जाने का भय रहता है जिसे हाइपोग्लाइसिमिया (Hypoglycaemia) कहते हैं। इसलिए इन्सुलिन का उपयोग रक्त शर्करा को नियंत्रित करने में सहायक रूप में ही

किया जाना चाहिए। यह इन्सुलिन गोली या इन्जेक्शन के माध्यम द्वारा दिया जाता है। एक सामान्य प्रौढ़ व्यक्ति में लगभग 40 यूनिट इन्सुलिन प्रतिदिन लेंगरहैन्स की द्वीपिकाओं की β-कोशिकाओं से स्त्रावित होता है। यही इन्सुलिन रक्त शर्करा को सामान्य बनाये रखता है। परन्तु मधुमेह के रोगी में इसका स्रावण अत्यन्त कम हो जाता है। अत: रोगी को कृत्रिम इन्सुलिन की आवश्यकता होती है। बाजार में मुख्यत: दो प्रकार के इन्सुलिन मिलते हैं:

(1) घुलनशील इन्सुलिन (Soluble Insulin) (2) डिपॉट इन्सुलिन (Depot Insulin)

घुलनशील इन्सुलिन: यह स्वच्छ तरल रूप में रहता है। यह अधिक प्रभावी भी होता है। परन्तु इसका प्रभाव कम अवधि (6 घंटे) के लिए ही होता है। 6 घंटे के बाद पुन: इसकी आवश्यकता होती है। किशोर रोगियों के लिए और ऐसे रोगी जिन्हें आहार पर नियन्त्रण रखना सम्भव नहीं है, घुलनशील इन्सुलिन अधिक लाभदायक होता है।

डिपॉट इन्सुलिन: यह इन्सुलिन धुँधला तथा दूध की तरह दिखता है। यह घुलनशील इन्सुलिन से अधिक लाभकारी एवं उपयोगी होता है क्योंकि इसका एक ही इंजेक्शन देने से पूरे दिन (10-12 घंटे) रक्त में ग्लूकोज स्तर सामान्य बना रहता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के इन्सुलिन भी बाजार में उपलब्ध हैं जैसे ग्लोबिन इन्सुलिन, आइसोफेन इन्सुलिन, प्रोटामिन जिंक इन्सुलिन इत्यादि। इन्सुलिन की अधिक मात्रा से कई जटिलाताएं भी उत्पन्न हो जाती हैं जैसे:

- बहुत अधिक तथा बार-बार भूख लगना।
- कमजोर एवं थकान महसूस करना।
- बहुत अधिक मात्रा में पसीना निकलना।
- मानसिक विचलन होना।
- हृदय की धड़कन बढ़ना तथा साँस फूलना।
- आलस्य एवं सुस्ती होना।
- वस्तुओं का दोहरा प्रतिबिम्ब दिखाई देना।
- डायबिटिक कोमा।

इन्सुलिन का उपयोग आहार के साथ करने पर अच्छे परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं।

10.8.3 मधुमेह का दवाओं द्वारा उपचार

कुछ चिकित्सकों का मानना है कि मधुमेह रोग में केवल दो ही दवाएं अत्यधिक प्रभावशाली होती हैं:

बाइग्यूनाइड्स (Biguanides) और सल्फोनाइलयूरिया (Sulphonylurea)

ये दवाएं अग्नाशय से इन्सुलिन के स्राव को उत्तेजित करती हैं तथा यकृत से ग्लूकोज की विमुक्ति को रोकती हैं। जिन रोगियों के रक्त में अत्यधिक ग्लूकोज (Hyperglycaemia) होता है तथा भोजन द्वारा रोग नियंत्रण में नहीं आ पाता है,

उन रोगियों को उपर्युक्त दवाएं देना उचित रहता है। इनके अतिरिक्त अन्य दवाएं भी हैं जैसे Tolbutamide, Daonil, Carbutamide, Chlorpropamide इत्यादि।

खाने वाली दवाओं का प्रयोग निम्नांकित अवस्थाओं में नहीं किया जाना चाहिए:

1. बालकों एवं किशोरों में
2. गर्भवती माताओं में
3. मधुमेह के कोई विपरीत प्रभाव अथवा आकस्मिक जटिलता उत्पन्न हो जाने पर
4. बहुत लम्बे समय तक दवाओं का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। आहार पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है।

दवाओं के अत्यधिक सेवन से कभी-कभी भूख की कमी, उल्टी आना, दस्त, पीलिया आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। अत: इनका प्रयोग चिकित्सक की देखरेख में ही किया जाना चाहिए।

10.8.4 मधुमेह में व्यायाम

चिकित्सक इस बात पर जोर देते हैं कि मधुमेह के रोगी को अपनी दिनचर्या में रोग के उपचार हेतु व्यायाम पर ध्यान देना चाहिए। व्यायाम में टहलना, योगासन, हल्के व्यायाम इत्यादि को शामिल करना चाहिए। व्यायाम से शरीर का संचित कार्बोहाइड्रेट उपयोग में आ जाता है। रोगी व्यायाम से अपने वजन पर नियंत्रण कर सकते हैं। इसके अलावा व्यायाम द्वारा रक्त में उपस्थित वसा की मात्रा को कम करके हृदय रोगों से बचा जा सकता है। बिना इन्सुलिन पर निर्भर मधुमेह के रोगी भी व्यायाम द्वारा अपने शारीरिक चयापचय के स्तर में सुधार लाकर शरीर में बनने वाली इन्सुलिन की मात्रा को बढ़ा सकते हैं। अत: मधुमेह में आहारीय उपचार के साथ-साथ व्यायाम भी अति आवश्यक है।

कृत्रिम शर्करा (Artificial Sweeteners)

मधुमेह से पीड़ित व्यक्ति जो शक्कर या चीनी का उपयोग नहीं कर सकते, वह खाने में मीठापन लाने के लिए कृत्रिम शर्करा का उपयोग करते हैं। यह वह कृत्रिम पदार्थ होते हैं जो खाने में मीठे होने के कारण चीनी या शक्कर के स्थान पर उपयोग किए जाते हैं परन्तु यह ऊर्जा प्रदान नहीं करते। यह बाजार में सरलता से उपलब्ध हैं जैसे शुगर फ्री इत्यादि। ये गोली या पाउडर के रूप में उपलब्ध होते हैं। कुछ कृत्रिम शर्कराएं मानव उपयोग के लिए अधिकृत हैं जैसे Aspartame, Acesulfame पोटेशियम, Advantame, साइक्लामेट, Neotame, Saccharin, Sucralose।

मधुमेह के रोगी को देने योग्य भोज्य पदार्थ

- अनाज: गेहूँ, जौ, बाजरा, गेहूँ व चने का मिश्रित अनाज।
- दालें: सभी प्रकार की दालें।
- सब्जियाँ: सभी प्रकार की सब्जियाँ विशेषकर करेला, परमल।
- फल: जामुन, सन्तरा, अमरूद, अनार, बेर आदि।
- दूध एवं दुग्ध उत्पाद: वसा रहित दूध, दही, मट्ठा, छैना।

- मांस: सभी प्राकर के मांस, मछली, अण्डा।
- सैकरीन: कृत्रिम शर्करा।

मधुमेह के रोगी के लिए वर्जित भोज्य पदार्थ

- चीनी, गुड़, गन्ने का रस, शहद, मिठाइयाँ, शर्करा युक्त सभी प्रकार के पेय पदार्थ।
- आलू, अरबी, जिमीकन्द, शकरकन्द, चुकन्दर इत्यादि।
- चावल, रिफाइन्ड अनाज।
- किशमिश, छुआरा, खुबानी, अंजीर।
- पेस्ट्री, केक, चॉकलेट, आइसक्रीम, मलाई वाला दूध।
- केला, आम, अंगूर।
- तले हुए भोज्य पदार्थ।

अभ्यास प्रश्न 3

1. निम्न वाक्यों हेतु एक शब्द दीजिए।

a. रक्त शर्करा की मात्रा का एकदम से कम होना।..

b. धुँधला तथा दूध की तरह दिखने वाला इन्सुलिन।...

c. मधुमेह से पीड़ित व्यक्ति जो शक्कर या चीनी का उपयोग नहीं कर सकते, वह खाने में मीठापन लाने के लिए इसका उपयोग करते हैं।...

10.9 सारांश

शरीर में इन्सुलिन हारमोन के उत्पादन में कमी अथवा दोष से उत्पन्न रोग मधुमेह कहलाता है। इस अवस्था में रोगी के शरीर में रक्त शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है क्योंकि कार्बोहाइड्रेट का चयापचय ठीक प्रकार से नहीं हो पाता। इससे रोगी कमजोर हो जाता है। लम्बे समय तक अनियन्त्रित रक्त शर्करा के कारण अनेक समस्याएं जैसे मोतिया बिन्द, गुर्दों का खराब होना आदि हो सकते हैं। उचित चिकित्सक परामर्श द्वारा एवं उपचारात्मक पोषण द्वारा मधुमेह के रोगी को न केवल स्वास्थ्य लाभ मिलता है अपितु रक्त शर्करा की मात्रा को नियंत्रित करने में मदद मिलती है।

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थान भरिए।

a. इन्सुलिन (Insulin)

b. पॉलीफेजिया/भूख में वृद्धि (Polyphagia)
c. कार्बोहाइड्रेट
d. डायबिटिक कोमा (Diabetic Coma)

2. सही अथवा गलत बताइए

a. गलत
b. सही
c. सही
d. गलत

3. निम्न वाक्यों हेतु एक शब्द दीजिए।

a. हाइपोग्लाइसिमिया (Hypoglycaemia)
b. डिपॉट इन्सुलिन (Depot Insulin)
c. कृत्रिम शर्करा (Artificial Sweeteners)

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मधुमेह क्या है? इसके प्रकार, कारण एवं लक्षण लिखिए।
2. मधुमेह की जटिलताओं का वर्णन करें।
3. मधुमेह रोग में वर्जित खाद्य पदार्थों के विषय में लिखिए।
4. निम्न पर टिप्पणी करें:
    - मधुमेह में उपचारात्मक पोषण
    - मधुमेह में व्यायाम

इकाई 11: शारीरिक भार प्रबन्ध हेतु पोषण एवं देखभाल

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 मोटापा अथवा वजन की अधिकता
11.4 मोटापे के प्रकार
11.5 मोटापे के कारण
11.6 मोटापे की पहचान
11.7 मोटापे में आहार नियोजन
11.8 मोटापे का उपचार
11.9 कम शारीरिक भार या दुर्बलता में आहार
11.10 अल्पभार के लक्षण
11.11 अल्पभार के कारण
11.12 अल्पभार में आहार नियोजन
11.13 सारांश
11.14 पारिभाषिक शब्दावली
11.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.16 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

शारीरिक भार नियन्त्रण आज के बदलते समय की एक आवश्यकता हो गई है क्योंकि इसका गहरा सम्बन्ध प्रभावित व्यक्ति की कार्यकुशलता के ह्रास, महत्वपूर्ण रोगों के विकास एवं मृत्यु से है। वैश्विक स्तर पर एक अरब से अधिक लोग मोटापे तथा वजन की अधिकता से ग्रस्त हैं। मोटापे या अधिक वजन के कारण कई स्वास्थ्य संबंधी परेशानियाँ हो सकती हैं जैसे चलने फिरने में दिक्कत होना, विभिन्न रोग जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप, अधिक कोलेस्ट्रॉल का रक्त में पाया जाना इत्यादि। दुबलापन एवं अल्प भार उस समस्या का नाम है जब व्यक्ति का शारीरिक भार ऊँचाई और भार के

औसत स्तर से 10 से 20 प्रतिशत कम होता है। कम पोषण (Under nutrition) और कुपोषण (malnutrition) दोनों ही कारण से अल्पभार की समस्या हो सकती है। प्राय: अविकसित और गरीब राष्ट्रों की जनसंख्या में अल्पभार की अधिकता पाई जाती है।

11.2 उद्देश्य

- इस इकाई का उद्देश्य शिक्षार्थियों को मोटापे का अर्थ, उसके कारण, पहचान, निवारण (Prevention) एवं उपचारात्मक आहार की जानकारी देना है; तथा
- इकाई के अध्ययन के पश्चात शिक्षार्थी अल्पभार की समस्या, उसके कारण, निवारण एवं उपचारात्मक आहार की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।

11.3 मोटापा अथवा वजन की अधिकता

यह कुपोषण की एक अवस्था है जिसमें व्यक्ति विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों को ग्रहण करके आवश्यकता से अधिक कैलोरी प्राप्त करता है। जब व्यक्ति आवश्यकता से अधिक भोज्य पदार्थ लेता है तो शरीर में आवश्यकता से अधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है जिसमें से ऊर्जा की कुछ मात्रा ग्लाइकोजन के रूप में शरीर में एकत्र हो जाती है तथा शेष त्वचा के नीचे वसा के रूप में जमा हो जाती है। जब यह वसा अत्यधिक मात्रा में शरीर के विभिन्न भागों में जमा हो जाती है तो व्यक्ति मोटा दिखाई देने लगता है तथा उसका शरीर विशालकाय और अत्यधिक वजन का हो जाता है। मोटापा स्वयं में प्रत्यक्ष रूप से तो कोई बीमारी नहीं है, परन्तु यह अनेक गम्भीर बीमारियों का प्रमुख कारण है, जैसे मधुमेह, हृदय रोग, यकृत का रोग, वृक्क रोग, धमनियों का रोग आदि। मोटापे से शरीर स्थूल एवं थुलथुला हो जाता है जिसके कारण व्यक्ति चल फिर नहीं सकता है। अधिक शरीर भार होने के कारण व्यक्ति को तेज चलने, दौड़ने, सीढ़ियाँ चढ़ने उतरने आदि में अत्यधिक परेशानी होती है।

वजन की अधिकता को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. **वजन का अधिक होना:** किसी भी व्यक्ति का वजन तब अधिक माना जाता है जब उसका वजन अपनी आयु, लिंग तथा ऊँचाई के लिए सामान्य वजन से 10 से 20 प्रतिशत ज्यादा हो।
2. **मोटापा:** जब व्यक्ति का वजन अपनी आयु, लिंग तथा ऊँचाई के लिए सामान्य वजन से 20 से 80 प्रतिशत तक बढ़ जाता है, तो इसे मोटापा (Obesity) कहते हैं।

11.4 मोटापे के प्रकार

मोटापा दो प्रकार का होता है:

1. **विकास सम्बन्धी मोटापा:** इस श्रेणी के मोटापे की शुरुआत बालकों के जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ही हो जाती है तथा उनके वयस्क होने तक निरंतर चलती रहती है क्योंकि इसकी नींव बचपन में ही स्थापित हो जाती है।

कोशिकाएं वसा से संतृप्त हो जाती हैं तथा जैसे जैसे बालक वयस्क होता है अधिक से अधिक वसा शरीर में संचित हो जाती है। मांसपेशी तथा हड्डियों का द्रव्यमान भी बढ़ जाता है क्योंकि शरीर को अधिक भार वहन करना पड़ता है।

2. **प्रतिक्रियाशील मोटापा:** इस प्रकार का मोटापा व्यक्ति के जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में भावनात्मक तनाव के कारण विकसित होता है। तनाव की अवस्था में भोजन के सेवन में वृद्धि के कारण शरीर का वजन बढ़ जाता है। क्योंकि यह समय आंशिक होता है इसलिए वजन में भी उतार चढ़ाव देखा जाता है।

11.5 मोटापे के कारण

मोटापे के कई कारण हैं जो निम्न बताए गए हैं:

1. **आयु (Age):** मोटापा किसी भी आयु में हो सकता है परन्तु प्रौढ़ावस्था (Adulthood) में मोटापा अधिक होता है। किशोरावस्था तथा बाल्यावस्था में मोटापा कम देखने को मिलता है। परन्तु आजकल अत्यधिक पोषण के कारण किशोरों में भी मोटापा होने लगा है। खासकर पश्चिमी देशों में तथा विकसित देशों के धनी वर्ग के लोग मोटापे का शिकार हो रहे हैं। यदि बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था में मोटापा होता है तो प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था में इसके होने की प्रबल सम्भावना होती है।

2. **लिंग (Sex/Gender):** मोटापा किसी भी आयु में किसी भी लिंग के व्यक्ति को हो सकता है। परंतु प्रौढ़ावस्था में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ मोटापे की अधिक शिकार होती हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं:

   क) विवाह की आयु तक लड़कियाँ अपने स्वास्थ्य एवं शारीरिक चुस्ती फुर्ती के प्रति जागरुक रहती हैं परन्तु विवाह के उपरान्त वे स्वयं के स्वास्थ्य के प्रति लापरवाह हो जाती हैं।

   ख) यदि लड़की का विवाह उच्च आय वर्ग अथवा धनी परिवार में हो जाता है तो उसे शारीरिक श्रम कम करना पड़ता है तथा अधिक या गरिष्ठ भोजन गृहण करने के कारण वह मोटापे का शिकार हो जाती है।

   ग) बच्चे के जन्म के बाद स्त्रियाँ अधिक मोटी हो जाती हैं क्योंकि प्रत्येक गर्भकाल के दौरान वह 10 से 12 किलो तक वजन गृहण करती है। इसमें से कुछ वजन (1.5 से 2.0 किलो) उसके स्वयं के शरीर का बढ़ जाता है। गर्भाशय में वसा का संग्रह हो जाता है जो कि मोटापे को दर्शाता है।

3. **आर्थिक स्थिति (Economic Status):** सामान्यत: उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर के लोगों में मोटापा अधिक होता है क्योंकि वे शारीरिक श्रम (Physical Work) बहुत कम करते हैं। साथ ही भोजन में घी, तेल, मक्खन आदि का अत्यधिक उपयोग करते हैं। अधिक तले भुने भोजन खाने के कारण वह मोटापे का शिकार होते हैं।

4. **वंशानुक्रम (Heredity):** मोटापा बढ़ने का एक प्रमुख कारण वंशानुक्रम (Heredity) भी है। ऐसा देखा गया है जिनके माता पिता दोनों ही मोटापे के शिकार होते हैं तब उनके बालकों में भी मोटापा हस्तांतरित हो जाता है। यदि माता पिता में से केवल कोई एक ही मोटापा ग्रस्त है तो उनके बालकों में मोटापा होने की 40 प्रतिशत तक सम्भावना रहती है। शोधों से यह ज्ञात हुआ है कि आनुवंशिकता (वंशानुक्रम) के कारण भोजन ग्रहण करने की क्षमता बढ़ जाती है। अंत: स्रावी ग्रन्थियों (Endocrine Glands) के कार्य में असंतुलन एवं गड़बडियाँ उत्पन्न हो जाती हैं तथा शरीर के ऊतकों में वसा के संग्रह की क्षमता बढ़ जाती है।

5. **भोजन सम्बन्धी आदतें (Eating Habits):** कुछ व्यक्तियों में थोड़ी-थोड़ी देर में कुछ न कुछ खाने की आदत होती है जिससे वे आवश्यकता से अधिक भोजन गृहण कर लेते हैं और मोटापे का शिकार हो जाते हैं। आवश्यकता से अधिक मात्रा में कैलोरी गृहण करने से अतिरिक्त कैलोरी वसा में परिवर्तित होकर ऊतकों में इकटठा हो जाती है तथा वजन में वृद्धि हो जाती है। कुछ व्यक्तियों को अधिक तला भुना खाने की ज्यादा आदत होती है जिससे उनके शरीर में वसा की अत्यधिक मात्रा पहुँचकर जमा हो जाती है। जो व्यक्ति मीठा जैसे मिठाइयों आदि का अधिक सेवन करते हैं, उनमें भी मोटापा देखने को मिलता है। मादक पेय जैसे एल्कोहॉल पीने वाले व्यक्ति का शारीरिक भार सामान्य से अधिक पाया जाता है क्योंकि मादक पेयों से व्यक्ति को अतिरिक्त कैलोरी प्राप्त हो जाती है तथा वसा के रूप में शरीर में एकत्रित हो जाती है।

6. **शारीरिक कार्य (Physical Work):** अत्यधिक शारीरिक श्रम करने वाले लोग (मजदूर, किसान) मोटापा से कम ग्रस्त होते हैं। परन्तु वे लोग जो बहुत ही कम शारीरिक कार्य करते हैं साथ ही भोजन में उच्च कैलोरी, वसा तथा अधिक प्रोटीन ग्रहण करते हैं, वे मोटापे का शिकार हो जाते हैं। वर्तमान समय में समय तथा शक्ति बचत करने वाले उपकरणों (Time and Energy Saving Devices) का अधिक प्रयोग किया जाने लगा है। लोग कार्यालय, विद्यालय, महाविद्यालय अथवा अपने कार्य स्थलों तक बस, स्कूटर, जीप, कार आदि साधनों से जाने लगे हैं। उन्हें पैदल नहीं चलना पड़ता है जिससे शरीरिक श्रम बहुत ही कम हो जाता है। परिणामत: ऊर्जा व्यय भी बहुत कम होता है परन्तु भोजन ग्रहण करने की आदतों में कोई सुधार नहीं होता। इस कारण आवश्यकता से अधिक कैलोरी ग्रहण कर ली जाती है। अतिरिक्त कैलोरी शरीर में जाकर वसीय ऊतकों में परिवर्तित हो जाती है जिससे मोटापा बढ़ जाता है।

7. **दवाइयाँ (Medicines):** कई दवाएं मोटापा बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जैसे इंसुलिन, स्टीरॉयड, गर्भ निरोधक गोलियाँ आदि। इन दवाओं के सेवन से भूख बढ़ती है अत: व्यक्ति अधिक भोजन ग्रहण करने लगता है जिसके परिणामस्वरूप मोटापा बढ़ता है।

8. **संवेगात्मक कारण (Emotional Effect):** कई बार निराशा, एकाकीपन, व्यथा, अंसतुष्टि आदि कारणों से व्यक्ति अधिक भोजन ग्रहण करने लगते हैं। वह अपने दु:ख, दर्द, पीड़ा, हीन भावना आदि को छिपाने के लिए अधिक भोजन करते हैं। इससे उन्हें मानसिक शान्ति एवं संतुष्टि मिलती है, परन्तु इसका दुष्प्रभाव उनके शरीर पर पड़ता है तथा वे मोटापे के शिकार हो जाते हैं।

9. **अंत:स्रावी ग्रन्थियाँ (Endocrine Glands):** शरीर के वसीय ऊतकों के संग्रहण पर नियंत्रण अंत: स्रावी ग्रन्थियों के द्वारा होता है। जब इस ग्रन्थियों का स्रावण असंतुलित एवं अनियंत्रित हो जाता है तब मोटापा बढ़ता है जैसे थायरॉयड ग्रंन्थि के अल्प स्रावण से (Hypothyroidism) वजन बढ़ने लगता है। परिणामत: शरीर में जल अधिक मात्रा में संग्रहित होने लगता है। इसी तरह पिट्यूटरी ग्रन्थि के अल्प स्रावण से भी शरीर भार में वृद्धि हो जाती है। हाइपोगोनैडिज्म (गोनैड्स के कम स्रावण से) के कारण भी मोटापा बढ़ता है।

10. **केन्द्रीय नाड़ी संस्थान में दोष (Defects in Central Nervous System):** हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) केन्द्रीय नाड़ी संस्थान का एक प्रमुख भाग है। इसी केन्द्र में भूख केन्द्र (Hunger centre) तथा तृप्ति केंद्र (Satiety Centre) होता है। भूख लगना तथा भोजन ग्रहण करना ये दोनों ही बातें इन्हीं केन्द्रों पर निर्भर करती हैं। यदि भूख केन्द्र में दोष उत्पन्न हो जाता है तो भूख नहीं लगती है। परिणामत: व्यक्ति भोजन नहीं ग्रहण कर पाने के कारण निर्बल, कमजोर एवं अस्वस्थ हो जाता है। तृप्ति केन्द्र में दोष उत्पन्न होने से वहाँ की तंत्रिकाएं निष्क्रिय हो जाती हैं जिसके कारण व्यक्ति अधिक भोजन ग्रहण करने लगता है। परिणामत: वह मोटापे का शिकार हो जाता है। नाड़ियों द्वारा प्राप्त संवेदना से आमाशय की मांसपेशियों का संकुचन होता है। रक्त में इन्सुलिन की उपस्थिति से रक्त शर्करा कम हो जाती है जिससे व्यक्ति को तीव्र भूख लगने का आभास होता है। परिणामत:व्यक्ति अधिक भोजन ग्रहण करने लगता है।

11. सर्दी के मौसम में भी अधिक खाना खाया जाता है क्योंकि शारीरिक ताप की रक्षा के लिए शरीर द्वारा अधिक आहार का ऑक्सीकरण किया जाता है जिससे मोटापा बढ़ता है।

12. **ध्रूमपान (Smoking):** जब व्यक्ति ध्रूमपान करना छोड़ देता है तो शरीर का वजन बढ़ने लगता है क्योंकि वह इस कमी की पूर्ति अधिक भोजन खाकर करता है। साथ ही ध्रूमपान छोड़ देने से भोजन का पाचन एवं अवशोषण ठीक प्रकार से होने लगता है।

11.6 मोटापे की पहचान (Assessment of Obesity)

मोटापे की पहचान निम्नानुसार की जाती है:

1. शारीरिक वजन (Body Weight)

2. शरीर में उपस्थित वसा की मात्रा (Fat Present in the Body)
3. त्वचा की मोटाई को नापकर (Measurement of Skin Folds)

शारीरिक वजन: यदि शरीर का वजन सामान्य वजन से 20 प्रतिशत अधिक होता है तो उसे सामान्य मोटापा (Normal Obese) कहते हैं। यदि शरीर वजन 40 प्रतिशत से अधिक होता है तो अधिक मोटापा तथा 50 प्रतिशत से भी अधिक वजन होने पर बहुत अधिक मोटापा कहलाता है।

शरीर में उपस्थित वसा की मात्रा एवं त्वचा की मोटाई को नापकर: मोटापे को पहचानने के लिए त्वचा की मोटाई को वर्नियर कैलिपर नामक उपकरण द्वारा परीक्षण करके पता लगाया जाता है। त्वचा की मोटाई को नापने में शरीर के निम्न तीन भागों में इसका परीक्षण किया जाता है।

- पीठ में कमर से कुछ ऊँचाई पर।
- पसलियों के नीचे।
- कोहनी तथा कंधों के बीच में, पीछे की ओर।

11.7 मोटापे में आहार नियोजन

1. **कैलोरी:** मोटे व्यक्तियों को कैलोरीयुक्त आहार की आवश्यकता होती है। परन्तु भोजन की मात्रा उतनी ही होनी चाहिए जिससे व्यक्ति का पेट भर सके तथा उसे तृप्ति एवं संतुलित आहार मिल सके। भोजन के साथ ही शारीरिक क्रियाशीलता भी बढ़ायी जानी चाहिए। मोटे लोगों का वजन एकदम से कम नहीं किया जाना चाहिए। महीने में 6 से 8 पॉण्ड तक वजन का कम होना ही उचित है, अन्यथा व्यक्ति को निरन्तर थकान, कमजोरी, आलस्य, सुस्ती एवं भूख का अनुभव होने लगता है। अत: धीरे धीरे वजन कम किया जाना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति की शारीरिक ऊर्जा माँग 2500 Kcal है तो उसे 1300 -1500 Kcal ऊर्जा अवश्य ही प्रतिदिन आहार से प्राप्त होनी चाहिए।
2. **प्रोटीन:** शरीर के तन्तुओं की टूट फूट की मरम्मत हेतु प्रोटीन अति आवश्यक है। अत: एक ग्राम प्रोटीन प्रति किलो शरीर भार के अनुसार होना चाहिए।
3. **कार्बोहाइड्रेट:** उच्च कैलोरीयुक्त तथा तले भुने भोज्य पदार्थों का सेवन नहीं किया जाना चाहिए। एक दिन में 100 ग्राम कार्बोहाइड्रेट पर्याप्त है। परंतु यह अवश्य ध्यान रहे कि कार्बोहाइड्रेट पदार्थ शर्करा से नहीं लिया जाना चाहिए क्योंकि शर्करा कार्बोहाइड्रेट प्राप्ति का सान्द्र रूप है। कार्बोहाइड्रेट के रूप में स्टार्च (Polysaccharides) तथा रेशा होना चाहिए।
4. **वसा:** वसा ऊर्जा प्राप्ति का सांद्रित स्रोत (Concentrate Source) है। अत: इसका अत्यधिक मात्रा में सेवन नहीं किया जाना चाहिए। अधिकतम 40 ग्राम वसा का प्रयोग प्रतिदिन किया जाना चाहिए। विशेषकर संतृप्त वसा जैसे घी, डालडा, मक्खन इत्यादि का प्रयोग कम करना चाहिए।

5. **खनिज लवण:** कैल्शियम, लौह लवण, आयोडीन एवं अन्य खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए। खनिज लवणों की पूर्ति हेतु सब्जियों एवं फलों का प्रयोग किया जाना चाहिए। मोटे व्यक्ति को खनिज लवण सामान्य व्यक्ति के अनुसार ही देना चाहिए।
6. **विटामिन:** आहार में विटामिन सी पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए क्योंकि वह वसा की मात्रा को कम करता है। अन्य विटामिन जैसे विटामिन ए, डी , ई, के तथा बी समूह पर्याप्त मात्रा में देने चाहिए। विटामिन की प्राप्ति हेतु हरी पत्तेदार सब्जियाँ, फलों आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए। कच्ची सब्जियों को सलाद के रूप में आहार में अवश्य ही सम्मिलित किया जाना चाहिए। सब्जियों में रेशा (Roughage) होता है जो कब्ज दूर करने मे सहायक होता है तथा फल एवं सब्जियों के अधिक सेवन से पेट भर जाता है जिससे तृप्ति एवं संतुष्टि मिलती है।
7. **जल:** जल की अधिक मात्रा के सेवन से मोटापा कम होता है क्योंकि जल की अधिक मात्रा लेने से भोजन की कम मात्रा ग्रहण की जाती है। अत: अप्रत्यक्ष रूप से यह मोटापा घटाने में सहायक होता है। परन्तु मीठे पेय पदार्थों जैसे शरबत, कोल्ड ड्रिंक, गन्ने का रस इत्यादि का प्रयोग कम से कम किया जाना चाहिए क्योंकि इनके प्रयोग से मोटापा बढ़ता है।

मोटापे में वर्जित खाद्य पदार्थ

1. चीनी, गुड़, मिठाई, जैम, जैली, चॉकलेट
2. बेकरी खाद्य पदार्थ जैसे केक, पेस्ट्री, बिस्कुट आदि
3. तले भुने खाद्य पदार्थ जैसे पूड़ी, पराठे, कचौड़ी, पकौड़ी, समोसे आदि
4. मांस, मदिरा, मादक पेय पदार्थ, कृत्रिम शीतल पेय
5. वनस्पति, घी, क्रीम इत्यादि।
6. मेवे, बादाम, काजू आदि।

मोटापे में सीमित मात्रा में लिए जाने वाले खाद्य पदार्थ

1. अनाज जैसे चावल, गेहूँ।
2. साबुत दालें
3. बिना मलाई का दूध
4. अंडा, मछली, जड़ वाली सब्जियाँ जैसे आलू, शकरकंद, जिमीकंद, गाजर
5. फल जैसे केला, आम, सेब, अमरूद, नाशपाती

11.8 मोटापे का उपचार

मोटापा का उपचार निम्नानुसार किया जाना चाहिए:

1. **भोजन पर नियंत्रण करके:** मोटापे का उपचार कम कैलोरीयुक्त भोजन देकर किया जा सकता है। परन्तु कैलोरी की मात्रा बहुत कम नहीं की जानी चाहिए। आहार में अधिकतम 800-1000 कैलोरी कम करना चाहिए। यदि इससे भी अधिक मात्रा में कैलोरी कम कर दी जाती है, तो शरीर में वसा की मात्रा बढ़ जाती है। जिसके कारण कीटोसिस (Ketosis) हो जाता है। कार्बोहाइड्रेट की संतुलित मात्रा कीटोन बॉडीज में कमी लाती है। वसा एवं प्रोटीन से ऊर्जा प्राप्त करने से रक्त में यूरिया, यूरिक अम्ल तथा कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बढ़ जाती है। अत: कार्बोहाइड्रेट की मात्रा पर ध्यान दिया जाना चाहिए।
2. **दवाएं:** अभी तक बाजार में कोई ऐसी औषधि उपलबध नहीं हो सकी है जो मोटापे को एकदम से कम कर दे तथा शरीर को चुस्त एवं फुर्तीला बना सके। परंतु कुछ दवाएं ऐसी हैं जो कुछ हद तक मोटापे को दूर करती हैं लेकिन इनका उपयोग चिकित्सक की सलाह एवं देखरेख में किया जाना चाहिए। ये दवाएं निम्न हो सकती हैं:
   - **भूख कम करने की दवाएं:** प्रीलूडिन (Preludin), टेनवेट (Tenvate), पोन्ड्रेक्स (Pondrex) इत्यादि दवाइयों के साथ आहार पर नियंत्रण करना भी आवश्यक है।
   - **थायरॉयड ग्रंथि पर प्रभाव करने वाली दवाएं:** कुछ दवाएं ऐसी होती हैं जो थायरॉयड ग्रंथि के स्रावण पर नियंत्रण करती हैं तथा वजन घटाती हैं।
   - **मूत्रवर्धक तथा रेचक दवाएं (Diuretics and Laxatives):** मूत्रवर्धक तथा रेचक दवाओं का उपयोग मोटापा घटाने में किया जाता है। इनके अत्यधिक उपयोग से मूत्र तथा मल अधिक मात्रा में बनता है। अत्यधिक मल-मूत्र विसर्जन से मोटापा घटता है। परंतु यह शरीर के लिए हानिकारक भी होता है। अत: इसका उपयोग चिकित्सक की देख देख में ही किया जाना चाहिए।
3. **फार्मूला आहार:** मोटे व्यक्तियों के वजन को कम करने के लिए तैयार किया गया आहार (Formula Diet) बाजार में मिलता है। यह आहार डिब्बा बंद आहार होता है जिसमें कैलोरी की मात्रा 1000 किलो कैलोरी तक होती है। इनमें ऐसे भोज्य पदार्थ होते हैं जो कि आमाशय में पानी अवशोषित कर लेते हैं जिससे पेट भर जाता है तथा तृप्ति की भावना उत्पन्न होती है परंतु व्यक्ति अधिक समय तक इस फार्मूला आहार को खाकर तृप्त नहीं रह सकता है। उसे विविध भोज्य पदार्थ खाने की इच्छा होती है। अत: जैसे ही वह अन्य भोज्य पदार्थ ग्रहण करने लगता है, उसका वजन फिर से बढ़ने लगता है।
4. **व्यायाम:** मोटापा का एक अति महत्वपूर्ण कारण शारीरिक क्रियाशीलता का अभाव होना है। वे लोग जो शारीरिक श्रम कम करते हैं, बैठे बैठे कार्य करते हैं या मानसिक कार्य करते हैं, उनके लिए व्यायाम करना अति आवश्यक होता है। मोटापे में वजन कम करने हेतु व्यायाम भी आहार के समकक्ष ही महत्वपूर्ण होता है।

व्यायाम न सिर्फ वजन कम करने के लिए जरूरी है अपितु घटे हुए वजन को बनाए रखने के लिए भी आवश्यक है। व्यायाम में नियमितता अति आवश्यक है। सुबह शाम टहलना, तैरना, साइकिल चलाना, खेलना इत्यादि व्यायाम के अलावा मोटापे को कम करने में योगासन भी प्रभावी होते हैं। व्यायाम निम्न प्रकार से लाभ पहुँचा सकते हैं:

- शारीरिक स्थिति में सुधार
- मानसिक स्थिति में सुधार
- वजन पर नियंत्रण
- शारीरिक कार्यशीलता को बढ़ाना
- शरीर की संरचना बदलने में लाभकारी (शरीर की वसा को कम करना)

5. **उपचारात्मक उपवास (Therapeutic starvation):** मोटापे से ग्रस्त रोगियों को चिकित्सालयों में कई सप्ताह तक केवल पानी, विटामिन तथा खनिज लवण युक्त पेय पदार्थ पिलाकर रखा जाता है। इससे मोटापा कम हो जाता है।
6. **रेशेयुक्त भोज्य पदार्थ का अधिक मात्रा में सेवन:** रेशेयुक्त भोज्य पदार्थ के सेवन से पेट भर जाता है, तृप्ति मिलती है, परंतु उसका कैलोरी मूल्य शून्य होने के कारण ऊर्जा नहीं मिलती है। अत: यह मोटापा कम करता है।
7. **नमक का कम सेवन:** यदि मोटापा से ग्रस्त व्यक्ति यकृत के रोग से भी पीड़ित है तो उसके आहार में नमक वर्जित होना चाहिए क्योंकि नमक कोशिकाओं के भीतर जल को संग्रहित करने लगता है जिससे मोटापा बढ़ जाता है।
8. **शल्यचिकित्सा द्वारा मोटापा कम करना:** लिपोसक्शन एक शल्य प्रक्रिया है जो शरीर के विशिष्ट क्षेत्रों जैसे पेट, कूल्हों, जांघों, नितंबों, बाहों या गर्दन से वसा को हटाने के लिए एक चूषण तकनीक (suction technique) का उपयोग करती है। लिपोसक्शन प्रक्रिया इन क्षेत्रों को आकार भी देती है। लिपोसक्शन को लिपोप्लास्टी और बॉडी कॉन्टूरिंग (lipoplasty and body contouring) नाम से भी जाना जाता है।

मोटापा कम करने के लिए आहार में अनुमेय भोज्य पदार्थों की मात्रा (1000 कैलोरी के लिए)

भोज्य पदार्थ	मात्रा
अनाज	100 ग्राम
दालें	50 ग्राम
दूध वसा रहित	300 मि0 ली0

हरी पत्तेदार सब्जियाँ	200 ग्राम
अन्य सब्जियाँ	200 ग्राम
जड़ वाली सब्जियाँ	50 ग्राम
फल	50 ग्राम
वसा व तेल	15 ग्राम

11.9 कम शारीरिक भार या दुर्बलता में आहार (Nutrition During Underweight)

मोटापा जहाँ विकसित राष्ट्रों की कुपोषण सम्बन्धी समस्या है, वहीं अल्प भार तथा दुबलापन अविकसित तथा विकासशील देशों की राष्ट्रीय समस्या है। दुर्बलता भी कुपोषण का एक लक्षण है जिसमें व्यक्ति का शारीरिक भार उस अवस्था के सामान्य भार से बहुत कम होता है। जब व्यक्ति आवश्यकता से कम भोज्य पदार्थों का सेवन करता है तो उसके द्वारा व्यय होने वाली ऊर्जा का पूर्ण भुगतान नहीं हो पाता है तथा इस ऊर्जा की पूर्ति शरीर में उपस्थित मांसपेशियों तथा वसीय ऊतकों के क्षय से होती है जिससे व्यक्ति दुर्बल हो जाता है तथा उसका शारीरिक वजन दिन प्रतिदिन कम होता जाता है। यदि इस प्रकार के कुपोषण को नहीं रोका गया तो व्यक्ति में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अधिकांश भारतीय अल्पभार के कारण कुपोषण के शिकार हो जाते हैं। गर्भवती ताथा धात्री महिलाएं, शिशुओं, बालकों में कुपोषण अधिक देखने को मिलता है। जिसका प्रमुख कारण उनका वजन सामान्य वजन से बहुत कम होना है। अल्पभार (Underweight) को निम्नानुसार परिभाषित किया जा सकता है-

“जब व्यक्ति का वजन आयु के अनुसार सामान्य वजन से 20 प्रतिशत या उससे भी कम होता है तो यह स्थिति अल्पभार या दुबलापन कहलाती है”।

11.10 अल्पभार के लक्षण

अल्पभार के निम्न लक्षण हैं:

1. शारीरिक शक्ति कम हो जाना।
2. शरीर की ताजगी, स्फूर्ति एवं चंचलता में कमी आना।
3. काम मे मन नहीं लगना जिस कारण व्यक्ति अकुशल कहलाने लगता है।
4. बच्चों की वृद्धि रूक जाती है क्योंकि आहार में कैलोरी और प्रोटीन की कमी होती है।
5. रक्त में सोडियम व पोटेशियम की मात्रा कम हो जाती है।
6. रोग प्रतिरोधक क्षमता का कम हो जाना।
7. त्वचा पर घाव आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

8. यकृत के आकार का कम हो जाना।
9. बार-बार मूत्र विसर्जन के लिए जाना।
10. पाचन संस्थान की अव्यवस्था के कारण वजन का घट जाना।
11. मांसपेशियों का क्षय होना।
12. बालों के रंग में परिवर्तन (सफेद या स्लेटी होना)

11.11 अल्पभार के कारण

1. **अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का प्रभाव (Effect of Endocrine Gland):** थायरॉयड ग्रन्थियों से निकलने वाले रस के अधिक स्राव के कारण व्यक्ति दुबला हो जाता है क्योंकि उस स्थिति में शारीरिक चयापचय की दर बहुत बढ़ जाती है तथा ऊर्जा का व्यय सामान्य से अधिक होता है।
2. **अपर्याप्त भोजन (Inadequate Diet):** पर्याप्त मात्रा में भोजन न मिल पाने के कारण ऊर्जा की प्राप्ति नहीं हो पाती है। अत: शरीर विभिन्न क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए मांसपेशियों में संग्रहित वसा का उपयोग ऊर्जा प्रदान करने में करता है, जिससे उसके शरीर के वसीय तन्तु निरंतर कम होते जाते हैं और वजन कम हो जाता है, परिणामत: व्यक्ति दुबला हो जाता है।
3. **तनाव (Tension):** तनाव भी दुबलेपन का प्रमुख कारण है। तनाव के कारण व्यक्ति को भूख नहीं लगती है। अत: वह भरपेट खाना नहीं खाता है। कई बार क्रोध, भय एवं पीड़ा के कारण भी व्यक्ति को भूख नहीं लगती है। जिससे वह भरपेट भोजन ग्रहण नहीं करता है। परिणामत: वह अल्पभार का शिकार हो जाता है।
4. **भोजन सम्बन्धी आदतें (Eating Habits):** भोजन सदैव नियमित समय पर ही करना चाहिए क्योंकि इससे भोजन का उचित रूप से पाचन होता रहता है। असमय भोजन करने से पाचन क्रिया खराब हो जाती है तथा कुपोषण की स्थिति आ जाती है। असमय भोजन करने से शरीर में भोजन का पाचन, अवशोषण व चयापचय ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है अर्थात पर्याप्त भोजन ग्रहण करते हुए भी व्यक्ति दुर्बलता का शिकार हो जाता है।
5. **कम कैलोरीयुक्त भोजन का अंतर्ग्रहण (Intake of low calories):** प्रत्येक व्यक्ति अपनी आयु व शारीरिक श्रम अथवा व्यवसाय के अनुसार भोजन ग्रहण करता है। जिस प्रकार एक शारीरिक कार्य करने वाला व्यक्ति एक मानसिक कार्य करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा ज्यादा मात्रा में भोजन करता है। एक लम्बा व मोटा व्यक्ति एक छोटे व पतले व्यक्ति की अपेक्षा अधिक भोजन करता है। यदि व्यक्ति को अपनी आवश्यकतानुसार भोजन नहीं मिलता अर्थात कम कैलोरीयुक्त भोजन मिलता है तथा यह स्थिति कई दिनों तक चलती रहती है तो इससे उस व्यक्ति के अन्दर पोषक तत्वों की कमी हो जाती है तथा उसमें दुर्बलता आ जाती है।

6. **निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति (Low Socio Economic Status):** आजकल की महँगाई के समय में वे व्यक्ति जिनका आर्थिक स्तर निम्न है, उन्हें भरपेट भोजन नहीं मिल पाता है। जिसके कारण उनके शरीर में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है, परिणामस्वरूप वे कुपोषण का शिकार हो जाते हैं।
7. **अत्यधिक शारीरिक क्रियाशीलता (Excess Physical Activity):** जब व्यक्ति अत्यधिक शारीरिक श्रम करता है, खेत में हल चलाता है, बोझा ढोता है अथवा कठिन व्यायाम करता है, तब उसके शरीर में ऊर्जा की मांग बढ़ जाती है। यदि कठिन श्रम या व्यायाम करने पर भी उसे पर्याप्त मात्रा में उच्च ऊर्जायुक्त भोजन नहीं मिल पाता है तो वह अल्पभार से ग्रस्त हो जाता है।
8. **पाचन संस्थान में विकार (Disorders of Digestive System):** पाचन संस्थान में गड़बड़ी एवं दोष हो जाने के कारण भूख नहीं लगती है। परिणामत: व्यक्ति भरपेट भोजन ग्रहण नहीं कर पाता है जिससे अल्पभार हो जाता है एवं व्यक्ति दुबला हो जाता है।
9. **रोग (Disease):** कई रोगों की अवस्था में दुबलापन हो जाता है जैसे बुखार, अतिसार, पेचिश, क्षय रोग, मलेरिया इत्यादि। इन अवस्थाओं में शरीर में कुल कैलोरी की माँग बढ़ जाती है परन्तु भूख कम हो जाती है। भरपेट भोजन नहीं ग्रहण करने से वजन घट जाता है तथा व्यक्ति दुबलेपन का शिकार हो जाता है।
10. **अस्वास्थ्यकर वातावरण (Unhealthy Environment):** अनुपयुक्त वातावरण भी दुबलेपन में सहायक होता है। केवल संतुलित भोजन करने से ही व्यक्ति स्वस्थ व हृष्ट पुष्ट नहीं बन सकता वरन व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए उचित पोषण के साथ खुली स्वच्छ वायु, सूर्य का पर्याप्त प्रकाश तथा व्यायाम करना चाहिए।

11.12 अल्पभार में आहार नियो जन

वजन बढ़ाने के लिए आहार में परिवर्तन लाना चाहिए, अपर्याप्त कैलोरी के सेवन के कारणों की जाँच करना आवश्यक होता है तथा यथा सम्भव उन्हें दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

1. **ऊर्जा:** प्रतिदिन की कैलोरी की मात्रा के साथ 500 अतिरिक्त कैलोरी लेने पर एक सप्ताह के पश्चात एक पॉण्ड वजन बढ़ जाता है। साधारण क्रियाशील व्यक्तियों के लिए प्रतिदिन 2500-3000 किलो कैलोरी के सेवन से वजन बढ़ सकता है। ज्वर की स्थिति में इससे उच्च कैलोरी का सेवन आवश्यक हो जाता है।
2. **प्रोटीन:** आहार में प्रोटीन 1 से 1.2 ग्राम प्रति किलो आदर्श शारीरिक भार के अनुसार होना चाहिए। सामान्यत: 60 से 80 ग्राम प्रोटीन उचित होता है।
3. **विटामिन तथा खनिज लवण:** दुबले तथा कुपोषित व्यक्तियों में इन दोनों तत्वों की कमी पायी जाती है। उच्च कैलोरी युक्त भोजन लेने से इन दोनों पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा मे पूर्ति हो जाती है। इन दोनों पोषक तत्वों को गोलियों के रूप मे भी दिया सकता है।

4. **वसा:** आहार में कुल ऊर्जा का 30 प्रतिशत वसा द्वारा उपलब्ध होना चाहिए। इस मात्रा में विशेष रूप से असंतृप्त वसा के स्रोतों का प्रयोग करना चाहिए। दिन मे दो बार प्रमुख भोजन लेने के अतिरिक्त नाश्ता इत्यादि कई बार करना चाहिए। कम मात्रा में दिन में कई बार भोजन लेना उचित होता है।
5. **टॉनिक:** आजकल बाजार में अल्पभार को दूर करने के लिए कई दवाइयाँ एवं टॉनिक उपलब्ध हैं, जो भूख बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा पाचन क्रिया में मदद करते हैं। परन्तु इनका उपयोग एक निश्चित मात्रा में सीमित समय तक ही किया जाना चाहिए।
6. **व्यायाम:** अल्पाभार में व्यायाम करना उतना ही लाभकारी है जितना मोटापे में। अल्पभार के व्यक्ति में व्यायाम करने से भूख जागृत होती है जिससे उसके कैलोरी सेवन में सुधार आता है। व्यायाम से पाचन शक्ति अच्छी होती है तथा शरीर में पोषक तत्वों का अवशेषण भली भांति होता है जिससे वजन बढ़ता है। व्यायाम से शरीर की ताकत तथा सहनशीलता में भी वृद्धि होती है।
7. **तरल पदार्थों का सेवन:** दुबले व्यक्ति के भोजन में वृद्धि हेतु दो आहारों के मध्य तरल पेय पदार्थ जिसमें भोज्य तत्व अधिक सान्द्र रूप में (Concentrated) हों, दिया जाना चाहिए। दुबले व्यक्ति को 2 बार ही भरपेट भोजन न देकर 5 से 6 बार हल्का भोजन दिया जाना चाहिए। इससे शरीर में अतिरिक्त कैलोरी का अंतर्ग्रहण होने से वजन बढ़ने लगेगा।
8. **संवेगात्मक कारणों को दूर करना:** अल्पभार के कारणों को जानना अनिवार्य है। तद्नुसार इसका उपचार किया जाना चाहिए। यदि व्यक्ति संवेगात्मक कारणों (जैसे भय, क्रोध, तनाव इत्यादि) से भोजन नहीं ग्रहण कर रहा है, तब सबसे पहले इन कारणों को दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए। केवल आहार में परिवर्तन कर देने मात्र से ही सफलता नहीं मिलती है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. मोटापे की स्थिति में पोषण को समझाइए।
2. मोटापा कम करने के लिए कौन-कौन से आहार वर्जित हैं?
3. दुर्बलता या अल्पभार में आहार नियोजन बताइए।
4. अल्पभार एवं मोटापा में व्यायाम की महत्ता समझाइए।
5. रिक्त स्थान भरिए।
   a. ………………….. मोटापे का पता लगाने के लिए सबसे अधिक इस्तेमाल किए जाने वाला मानदंड है।
   b. वजन के प्रबंधन हेतु व्यक्ति को नियमपूर्वक .... करना चाहिए।
   c. अल्पभार में व्यक्ति को सामान्य ऊर्जा की आवश्यकता से .... कैलोरी अधिक देनी चाहिए।
   d. महिलाओं में यदि कमर तथा नितंब का अनुपात............... से अधिक हो तब यह मोटापे का संकेत देता है।

11.13 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने शारीरिक भार के प्रबंधन के विषय में अध्ययन किया। वैश्विक स्तर पर एक अरब से अधिक लोग मोटापे तथा वजन की अधिकता से ग्रस्त हैं। मोटापे या अधिक वजन के कारण कई स्वास्थ्य संबंधी परेशानियाँ हो सकती हैं जैसे चलने फिरने में दिक्कत होना, विभिन्न रोग जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप, अधिक कोलेस्ट्रॉल का रक्त में पाया जाना इत्यादि। वजन की अधिकता को दो प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है; वजन का अधिक होना तथा मोटापा। मोटापा दो प्रकार का होता है; विकास सम्बन्धी मोटापा तथा प्रतिक्रियाशील मोटापा। मोटापे के कई कारण हैं जैसे आयु, लिंग, आर्थिक स्थिति, वंशानुक्रम, भोजन सम्बन्धी आदतें, संवेगात्मक कारण, अंत:स्रावी ग्रन्थियाँ आदि। मोटापे की पहचान वजन को नापकर तथा त्वचा के कुछ विशिष्ट भागों की मोटाई को नापकर की जाती है। शरीर द्रव्यमान सूचकांक (Body Mass Index) मोटापे का पता लगाने के लिए एक सरल तथा सर्वाधिक इस्तेमाल किया जाने वाला मानदंड है। मोटापे के कारण कई जटिलताएं उत्पन्न हो सकती हैं जिनका विवरण प्रस्तुत इकाई में दिया गया है। मोटापे की स्थिति में एक आदर्श वजन पाने के लिए व्यक्ति को आहार नियोजन करना अत्यंत आवश्यक है।

दुबलापन एवं अल्प भार उस समस्या का नाम है जब व्यक्ति का शारीरिक भार ऊँचाई और भार के औसत स्तर से 10 से 20 प्रतिशत कम होता है। कम पोषण (Under nutrition) और कुपोषण (malnutrition) दोनों ही कारण से अल्पभार की समस्या हो सकती है। अल्पभार के कई कारण हो सकते हैं जैसे आहार का कम सेवन, तनाव, अंत:स्रावी ग्रंथियों का प्रभाव, गरीबी, अत्यधिक शारीरिक श्रम आदि। अल्पभार की स्थिति में भी आहार नियोजन अनिवार्य है जिससे व्यक्ति एक आदर्श शारीरिक भार प्राप्त कर सके। उपरोक्त दोनों स्थितियों में व्यायाम का अति महत्व है।

11.14 पारिभाषिक शब्दावली

- **मोटापा:** जब व्यक्ति का वजन अपनी आयु, लिंग तथा ऊँचाई के लिए सामान्य वजन से 20 से 80 प्रतिशत तक बढ़ जाता है, तो इसे मोटापा (Obesity) कहते हैं।
- **हाइपोथैलेमस (Hypothalamus):** यह मस्तिष्क का एक छोटा क्षेत्र है जो मस्तिष्क के आधार पर पिट्यूटरी ग्रंथि के पास स्थित होता है। यह शरीर में हार्मोन स्रावित करने तथा शरीर के तापमान को नियंत्रित करने जैसे महत्वपूर्ण कार्य करता है।
- **वर्नियर कैलिपर:** त्वचा की मोटाई नापने हेतु प्रयोग किया जाने वाला उपकरण।
- **कीटोसिस (Ketosis):** एक चयापचयी अवस्था जिसमें शरीर के ऊतकों में कीटोन निकायों का स्तर बढ़ जाता है।

11.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. इकाई का मूल भाग देखें।
2. इकाई का मूल भाग देखें

3. इकाई का मूल भाग देखें ।
4. इकाई का मूल भाग देखें ।
5. रिक्त स्थान भरिए।
   a. शरीर द्रव्यमान सूचकांक (Body Mass Index)
   b. व्यायाम
   c. 500 किलोकैलोरी
   d. 0.9

11.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. अत्यधिक शारीरिक भार (मोटापे) का कारण, हानियाँ तथा शारीरिक वजन को कम करने के उपाय लिखिए।
2. दुर्बलता के कारण तथा लक्षण बताते हुए पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता बताइए।

इकाई 12: लघु तथा दीर्घ अवधि ज्वर में आहार

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 ज्वर की परिभाषा
12.4 ज्वर की अवस्था में रोगी के शरीर में होने वाले चयापचयी परिवर्तन
12.5 ज्वर में पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता
12.6 लघु अवधि ज्वर– टायफाइड
12.7 दीर्घ अवधि ज्वर– तपेदिक / क्षय रोग
12.8 सारांश
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

मनुष्य के शरीर का सामान्य तापक्रम 98.4 डिग्री फारहेनहाइट होता है। जब तक मानव शरीर में ऊर्जा का उत्पादन तथा ऊर्जा की हानि में सन्तुलन बना रहता है अर्थात शरीर में जितनी ऊर्जा उत्पन्न होती है, उतनी ही खर्च हो जाती है तो शरीर के तापक्रम में कोई अन्तर नहीं आता है तथा यह सामान्य बना रहता है। लेकिन किसी कारणवश जब यह सन्तुलन बिगड़ जाता है और शरीर में ऊर्जा का उत्पादन तो होता है, लेकिन ऊर्जा इतनी खर्च नहीं होती है तब शरीर का ताप बढ़ना शुरु हो जाता है, जैसे संक्रामक रोगों के हो जाने पर, चोट लगने पर या किसी भी प्रकार की कीटाणु युक्त बीमारी होने पर शरीर के स्वास्थ्य में गिरावट आ जाती है। शरीर में ऊर्जा का उत्पादन विशेष रूप से मांसपेशियों, यकृत तथा अन्त: ग्रन्थियों में होता है। शरीर से ऊर्जा की हानि दो रूपों में होती है:

1. ऊष्मा के रूप में: शरीर की त्वचा तथा मांस द्वारा

2. यान्त्रिक ऊर्जा के रूप में: यह मनुष्य द्वारा विभिन्न कार्य करने में खर्च होती है।

शरीर में जितनी ऊर्जा बनती है उसकी 95 प्रतिशत ऊष्मा के रूप में खर्च होती है केवल 5 प्रतिशत ऊर्जा यान्त्रिक ऊर्जा के रूप में काम आती है जो कि मनुष्य के लिए बहुत उपयोगी होती है। शरीर के तापक्रम को नियन्त्रित करने के लिए मस्तिष्क में कुछ केन्द्र बिन्दु होते हैं जो कि थर्मोस्टेट (Thermostate) कहलाते हैं। यह एक निश्चित सीमा तक शरीर के

तापक्रम की नियन्त्रित रखते हैं लेकिन बाद में इनका नियंत्रण खत्म हो जाता है और शरीर का तापक्रम बढ़ने लगता है। "जब शरीर का तापमान सामान्य से ज्यादा हो जाता है तो शरीर गर्म होने लगता है, इसी को ज्वर या ज्वर कहते हैं"।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात शिक्षार्थी;

- ज्वर के प्रकार के विषय में समझ पाएंगे;
- लघु एवं दीर्घ अवधि ज्वर के अन्तर्गत रोगों में आहारीय उपचार की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।

12.3 ज्वर की परिभाषा

ज्वर की स्थिति में शरीर का तापक्रम साधारण अवस्था से अधिक हो जाता है। सामान्यत: एक स्वस्थ व्यक्ति के शरीर का तापमान 98.4 डिग्री फारहेनहाईट होता है, परन्तु यदि शरीर का तापमान इस तापमान से अधिक हो जाता है, अर्थात तापक्रम में बढ़ोत्तरी हो जाती है तो यह स्थिति ज्वर की स्थिति कहलाती है। यह किसी भी संक्रामक रोग का महत्वपूर्ण लक्षण है। शरीर का तापमान बढ़ने पर शरीर में होने वाली समस्त उपाचयन की क्रियाओं में परिवर्तन आ जाते हैं जिसके फलस्वरूप आधारीय चयापचय की दर (Basal Metabolic Rate) में वृद्धि हो जाती है। शरीर का 1 डिग्री फारहेनहाईट तापमान बढ़ने पर आधारीय चयापचय की दर 7 प्रतिशत बढ़ जाती है।

आहार की दृष्टि से सभी प्रकार के ज्वरों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है:

- तीव्र ज्वर अथवा लघु अवधि ज्वर (Acute or Short Duration Temperature)
- दीर्घकालीन ज्वर अथवा दीर्घ अवधि ज्वर (Chronic or Long Duration Fever)

जब व्यक्ति के शरीर का तापमान 103 डिग्री फारहेनहाईट से ऊपर हो जाता है उसे तीव्र ज्वर कहते हैं। यह ज्वर शरीर में थोड़े समय तक रहता है जैसे मलेरिया, वाइरल ज्वर आदि। जब तेज ज्वर शरीर में ज्यादा समय तक रहता है तो अत्यंत हानिकारक होता है तथा इसमें मरीज की जान को खतरा काफी बढ़ जाता है, जैसे बैक्टीरिमिया, सेप्टीसीमिया।

कम तीव्र अथवा दीर्घकालीन ज्वर लम्बे समय (दो सप्ताह या 1 महीना) तक शरीर में बना रहता है। इस प्रकार के ज्वर की तीव्रता अधिकतर 99 डिग्री फारहेनहाईट से 101 डिग्री फारहेनहाईट तक रहती है जैसे क्षयरोग में, टायफाइड में आदि।

ज्वर से पीड़ित व्यक्ति के लिए निम्नलिखित बातों को जानना अत्यन्त आवश्यक है:

- ज्वर से पीड़ित रोगी के शरीर को प्रतिदिन पानी से पोंछना चाहिए तथा उसके कपड़े बदलने चाहिए।
- रोगी को प्रतिदिन मल त्याग करवाना चाहिए। इससे शरीर की ऊष्मा बाहर आती है तथा आँत भी स्वस्थ बनी रहती है।
- रोगी के शरीर में पाचन, अवशोषण तथा चयापचय ठीक प्रकार नहीं हो पाता है इसलिए रोगी को सदैव हल्का भोजन देना चाहिए जैसे खिचड़ी, दलिया, मूँग की दाल का पानी, दूध आदि।
- ज्वर की अवस्था में रोगी के शरीर में कोशिकाओं की टूट फूट होती है, इसलिए रोगी को विश्राम करना चाहिए।
- यदि रोगी का ज्वर बहुत तेज हो जाए तो ठण्डे पानी की पट्टियाँ उसके माथे पर रखें जब तक कि ज्वर हल्का न पड़ जाए।
- डॉक्टर की सलाह अवश्य लेनी चाहिए तथा चिकित्सकीय परामर्श के बिना किसी भी प्रकार की दवाइयाँ स्वयं से नहीं लेनी चाहिए।

12.4 ज्वर की अवस्था में रोगी के शरीर में होने वाले चयापचयी परिवर्तन

- **आधारीय चयापचय की दर:** शरीर के तापमान में वृद्धि के साथ- साथ आधारीय चयापचयी दर भी बढ़ जाती है तथा यह वृद्धि 1 डिग्री फारहेनहाईट तापमान बढ़ने पर 7 डिग्री होती है।
- **कार्बोहाइड्रेट चयापचय:** ज्वर की अवस्था में ऊर्जा की पूर्ति करने के लिए शरीर में संचित ग्लाइकोजन काम में आता है जिससे ग्लाइकोजिनोलाइसिस (Glycogenolysis) की दर बढ़ जाती है।
- **प्रोटीन चयापचय:** शरीर का तापमान बढ़ने से कोशिकाओं तथा ऊतकों की टूट फूट शुरु हो जाती है तथा रक्त में उपस्थित श्वेत एवं लाल कणिकाओं का भी ह्रास होने लगता है अर्थात् प्रोटीन का चयापचय बढ़ जाता है जिससे शरीर से विसर्जित होने वाले पदार्थों में नाइट्रोजन की अधिकता होती है।
- **खनिज लवण:** ज्वर में पसीना अधिक आने से जल, सोडियम, पोटेशियम व क्लोराइड की काफी मात्रा नष्ट हो जाती है, जिसकी पूर्ति अति आवश्यक है।
- ज्वर में रोगी की क्रियाशीलता व गतिशीलता अत्यधिक कम हो जाती है जिसके कारण पोषक तत्वों के पाचन व अवशोषण में भी शिथिलता आ जाती है।

12.5 ज्वर में पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता

- **ऊर्जा**: ज्वर में ऊर्जा की अधिक आवश्यकता पड़ती है क्योंकि इस अवस्था में आधारीय चयापचयी दर बढ़ जाती है जिस कारण 1 डिग्री फारहेनहाईट ताप बढ़ने पर 7 प्रतिशत ऊर्जा अधिक नष्ट हो जाती है। शरीर का तापमान जितना अधिक होता है, ऊर्जा उतनी ही अधिक खर्च होती है अर्थात ऊर्जा की आवश्यकता तापक्रम पर निर्भर करती है। ज्वर की स्थिति में कैलोरी की पूर्ति करना कठिन होता है क्योंकि भोज्य पदार्थों का अवशोषण ठीक से नहीं हो पाता है तथा पाचन क्रिया ठीक नहीं रहती जिससे रोगी को वमन की शिकायत रहती है और रोगी भोजन ग्रहण करने में घबराता है। एक व्यक्ति को ज्वर की स्थिति में ऊर्जा की प्रतिदिन आवश्यकता से 50 प्रतिशत अधिक ऊर्जा देनी चाहिए जैसे यदि किसी व्यक्ति को 2400 कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता होती है तो उसे ज्वर की अवस्था में 2400+1200 = 3600 कैलोरी की आवश्यकता पड़ेगी।
- **कार्बोहाइड्रेट**: कार्बोहाइड्रेट ग्लाइकोजन के रूप में व्यक्ति के शरीर में मांसपेशियों तथा यकृत में संचित होता है। ज्वर की अवस्था में ऊर्जा की आवश्यकता को पूरी करने के लिए यह संचित किया हुआ ग्लोइकोजन काम में आता है तथा ग्लाइकोजिनोलाइसिस प्रक्रिया के द्वारा ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। अत: ज्वर की अवस्था में कार्बोहाइड्रेट अधिक मात्रा में देना चाहिए जिससे संचित ग्लाइकोजन की कमी पूरी हो सके तथा ऊर्जा की आवश्यकता की पूर्ति भी की जा सके। यदि सम्भव हो तो यह कार्बोहाइड्रेट मोनासेक्राइड के रूप में देना चाहिए जिससे इनके पाचन की कोई आवश्यकता नहीं होती है तथा यह मोनासेक्राइड सीधे रक्त में अवशोषित हो जाते हैं। जैसे ग्लूकोज, फ्रक्टोज के अतिरिक्त कार्बोहाइड्रेट की पूर्ति के लिए स्टार्च का पानी जैसे जौ (Barley) का पानी भी दे सकते हैं।
- **प्रोटीन:** ज्वर के समय ऊतकों तथा कोशिकाओं की क्षति होती है। इनके पुन:निर्माण के लिए अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है तथा अतिरिक्त प्रोटीन ऊर्जा प्रदान करने का कार्य भी करती है। अत: व्यक्ति को प्रतिदिन सामान्य से 50 प्रतिशत अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है क्योंकि रोगी की पाचन और अवशोषण क्रियाएं काफी क्षीण हो जाती हैं। इसलिए रोगी को ऐसे प्रोटीन युक्त पदार्थ देने चाहिए जो सरलता से पच सकें, अवशोषित हो सकें तथा उनमें विद्यमान प्रोटीन उच्च कोटि (High biological Value) की होनी चाहिए। यदि आहार में प्रोटीन की कमी होती है तो:
    - रोगी में ऊतकों का प्रोटीन काम में लिया जाता है जिससे रोगी दुबला पतला हो जाता है।

- एण्टीबॉडीज प्रोटीन होते हैं जो रोगों के कीटाणुओं को मारने में सहायक होती है। आहार में प्रोटीन की कमी होगी तो एण्टीबॉडीज का निर्माण भी कम होता है जिससे रोगी का संक्रामक रोगों से शीघ्र बचाव नहीं हो पाता है। ऐसी स्थिति में टूटे फूटे ऊतकों तथा कोशिकाओं का निर्माण भी शीघ्रता से नहीं हो पाता जिससे रोगी काफी समय तक बीमार बना रहता है। उदाहरण यदि किसी व्यक्ति को सामान्य अवस्था में 50 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन की आवश्यकता होती है तो ऐसे व्यक्ति को ज्वर की स्थिति में 50 gm + 25 gm (50%) = 75 gm प्रोटीन की आवश्यकता पड़ेगी।

- **वसा:** ज्वर के समय वसायुक्त आहार अधिक मात्रा में नहीं देना चाहिए क्योंकि इस समय पाचन संस्थान की कार्यशीलता कम हो जाती है तथा तले या गरिष्ठ पदार्थ देने से यह और भी अधिक प्रभावित हो सकती है। इसलिए इमल्सीकृत वसा का प्रयोग करना चाहिए जिससे उसके पाचन में कठिनाई न हो।
- **खनिज लवण:** ज्वर में शरीर का तापक्रम बढ़ जाने से पसीना निकलने के कारण सोडियम क्लोराइड (नमक) तथा पोटेशियम लवण भी शरीर से बाहर निकलते हैं जिससे इलेक्ट्रोलाइट्स का सन्तुलन बिगड़ जाता है तथा खनिज लवणों की कमी हो जाती है। यदि इन खनिज लवणों की पूर्ति न की गयी तो मरीज वमन की शिकायत करने लगता है तथा उसे घबराहट के साथ-साथ हाथों पैरों में दर्द भी होता है। अत: रोगी को आहार में नमक, खनिज लवण अधिक देने चाहिए। दूध, सूप, संतरे का जूस इत्यादि के द्वारा खनिज लवणों की पूर्ति की जा सकती है।
- **विटामिन्स:** ज्वर में विटामिन ‘ए’, ‘सी’ तथा ‘बी कॉम्प्लेक्स’ की आवश्यकता बढ़ जाती है:

विटामिन ‘ए’: यह विरोधी संक्रामी कारक (Anti-infective factor) होने के कारण संक्रामक रोग होने से बचाता है।

विटामिन ‘सी’: यह लौह लवण के अवशोषण को बढ़ाता है।

विटामिन ‘बी कॉम्प्लेक्स’: यह विटामिन शारीरिक कमजोरी को दूर करने में सहायक है। ज्वर के समय एण्टीबायोटिक दवाइयाँ लेने से आँतों में पाये जाने वाले बैक्टीरिया द्वारा बी कॉम्प्लेक्स का निर्माण तथा अवशोषण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है जिससे विटामिन की कमी हो जाती है।

- **जल:** ज्वर में पसीना आने के कारण शरीर से पानी की क्षति अत्यधिक बढ़ जाती है। अत: इस कमी को पूरा करने के लिए आवश्यक है कि रोगी को उबला हुआ पानी ठण्डा करके थोड़ी- थोड़ी देर बाद देना चाहिए। पानी की इस कमी को फलों के रस, दूध तथा सूप के द्वारा भी पूरा किया जा सकता है। जब पानी की अत्यधिक कमी हो जाती

है तथा रोगी मुँह से पानी नहीं ले सकता हो तो उस समय पानी की कमी को पूरा करने के लिए ग्लूकोज तथा जल नसों द्वारा दिया जाता है।

12.6 लघु अवधि ज्वर – टायफाइड (Acute Fever- Typhoid)

यह सालमोनेला टाइफी (Salmonella *typhi*) बैक्टीरिया द्वारा होने वाला संक्रमक रोग है। यह पीने के पानी या दूध व दूध से बने पदार्थों द्वारा संदूषण से होने वाला ज्वर है। यह सभी आयु वर्गों में होता है परन्तु बच्चों में अधिक देखा जाता है।आजकल ऐन्टीबायोटिक के प्रयोग और स्वच्छता पर ध्यान देने के कारण इस ज्वर की अवधि कम हो गयी है।

टायफाइड में होने वाले शारीरिक परिवर्तन: टायफाइड में आँतों में छिद्र हो जाते हैं और उनसे रक्त निकलने लगता है। इस कारण भोजन का पाचन और अवशोषण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता। टायफाइड में ऊतकों का बहुत अधिक क्षय होता है। इस कारण रोगी का 250-500 ग्राम तक वजन प्रतिदिन घटता है। अत: इस रोग में अधिक प्रोटीन युक्त आहार उपयुक्त होता है। आंतों में सूजन के कारण रेशेयुक्त पदार्थ आहार में सम्मिलित नहीं करने चाहिए। अधिक प्रोटीन युक्त और तरल व कोमल पदार्थ जिनसे ऊर्जा भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सकती हो, टाइयफाइड के रोगी के लिए उत्तम रहते हैं।

आहारीय उपचार: तेज ज्वर के दौरान उल्टी, जी मचलाना तथा भूख न लगना जैसे लक्षण आमतौर पर देखे जाते हैं। अत: इसमें आहारीय उपचार पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

- **ऊर्जा:** टायफाइड में शरीर का तापमान बहुत तेजी से बढ़ता है, इस कारण आधारीय चयापचयी दर (बी0एम0आर) 50 प्रतिशत तक बढ़ जाता है। जैसे-जैसे ऊर्जा की खपत बढ़ती है रोगी को बेचैनी का अनुभव होता है। ऊर्जा की आवश्यकता 10-20 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। ज्वर के शुरुआत में रोगी को 600 -1200 कैलोरी प्रतिदिन का आहार देना चाहिए। फिर जैसे-जैसे उसकी पाचन शक्ति तथा हालत में सुधार हो, उसे अधिक ऊर्जा वाला आहार देना चाहिए।
- **प्रोटीन:** प्रोटीन की आवश्यकता ज्वर की तीव्रता और अवधि पर निर्भर करती है। ज्वर में कोशिकाओं का क्षय अत्यधिक होता है। इसलिए प्रोटीन का सेवन 1.5 से 2 गुना तक बढ़ा देना चाहिए अर्थात 1.5 से 2 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन प्रतिकिलो शारीरिक भार के आधार पर देना चाहिए। आहार में पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा सेवन सुनिश्चित कर लेना चाहिए। आसानी से पचने वाले तथा उच्च जैविक मूल्य वाले प्रोटीन के स्रोत जैसे अण्डा, दूध आदि को आहार में पर्याप्त मात्रा में शामिल करना चाहिए।

- **कार्बोहाइड्रेट:** ग्लाइकोजन संग्रह को पुन: स्थापित करने के लिए एवं प्रोटीन को बचाने में सहायक होने के कारण आहार में कार्बोहाइड्रेट पर्याप्त मात्रा में देने चाहिए। पूर्ण रूप से पका हुआ एवं आसानी से पचने वाले कार्बोहाइड्रेट के स्रोत जैसे सरल स्टार्च, ग्लूकोज, शहद, चीनी आदि आहार में शामिल करने चाहिए।
- **वसा:** वसा का उपयोग ऊर्जा मूल्य बढ़ाने के लिए किया जाता है। अतिसार के कारण आसानी से पचने वाले वसा के स्रोत जैसे क्रीम, मक्खन, दूध आहार में शामिल करने चाहिए। तली-भुनी चीजों से परहेज करना चाहिए।
- **रेशा:** टायफाइड में अतिसार के साथ- साथ छोटी आंत में सूजन के कारण पाचन संस्थान के लिए प्रदाहजनक (irritating) किसी भी भोज्य सामग्री से परहेज करना चाहिए। अत: रेशे का प्रयोग टायफाइड में वर्जित होता है।
- **विटामिन:** संक्रमण तथा ज्वर की अवस्था में शरीर की विटामिन ए तथा विटामिन सी की आवश्यकता बढ़ जाती है। इसके अलावा ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ने पर रोगी के लिए विटामिन बी समूह भी अनिवार्य होता है। एन्टीबायोटिक व अन्य दवाईयों के प्रयोग द्वारा आंतों में उपस्थित लाभकारी बैक्टीरिया नष्ट हो जाते हैं। इस कारण भी विटामिन बी समूह पर्याप्त मात्रा में लेना चाहिए।
- **खनिज लवण:** अत्यधिक पसीने और मूत्र के कारण खनिज लवणों जैसे सोडियम, पोटेशियम और क्लोराइड आदि का काफी नुकसान होता है। अत: नमकीन सूप, फलों का रस, दूध आदि के माध्यम से खनिज लवण आहार में पर्याप्त मात्रा में देने चाहिए। टायफाइड में आंतों से रक्तस्राव भी होता है। अत: लौह लवण के उचित स्रोतों को भी आहार में शामिल करना चाहिए।
- **द्रव पदार्थ:** मूत्र और पसीने के रूप में निकलने वाले द्रव की पूर्ति करने के लिए रोगी को उचित मात्रा में द्रव पदार्थ देने चाहिए। सामान्यत: 2.5 से 5 लीटर पेय विभिन्न रूपों जैसे जूस, सूप, दूध ,सादा पानी आदि आहार में लेने चाहिए।

पर्याप्त मात्रा में देने योग्य भोज्य पदार्थ

- शोधित (refined) अनाज जैसे मैदा
- दूध व दूध से बने पदार्थ
- अच्छी तरह से उबली हुई सब्जियाँ
- धुली दालें व कम रेशेयुक्त भोज्य पदार्थ
- अण्डा, मछली

- शर्कराएं
- पर्याप्त द्रव जैसे जूस, सूप आदि।

वर्जित पदार्थ

- रेशे युक्त भोज्य पदार्थ जैसे साबुत अनाज व दालें
- कच्ची सब्जियाँ व फल (पपीता व केले के अलावा)
- तले हुए अथवा मिर्च मसाले युक्त पदार्थ
- तेज गन्ध वाले पदार्थ जैसे पापड़, अचार , प्याज, लहसुन
- मिठाईयाँ, केक, पेस्ट्री आदि।

तेज ज्वर की अवस्था में यदि रोगी मुख से आहार लेने में असमर्थ हो तो उसे अन्त: शिराओं (Intravenous Fluid) के माध्यम से आहार देना चाहिए जिससे शरीर में खनिज लवण तथा जल का सन्तुलन बना रहे, साथ ही ऊर्जा भी प्राप्त हो सके।

तीव्र ज्वर की स्थिति में व्यक्ति के लिए आहार में उपस्थित भोज्य पदार्थों की मात्रा (व्यक्ति/प्रतिदिन)

भोज्य पदार्थ	मात्रा
दूध	1 लीटर
जौ का पानी	1 लीटर
टमाटर या हरी सब्जी का सूप	250 मिली0 ली0
ग्लूकोज	200 ग्राम
चीनी	100 ग्राम
फलों का रस	400 मि0ली0

तीव्र ज्वर की स्थिति में रोगी हेतु आहार तालिका (व्यक्ति/प्रतिदिन)

आहार का समय	भोजन सूची	मात्रा

प्रात: 6 बजे	चाय	1 कप
प्रात: 8 बजे	जौ का पानी (ग्लूकोज के साथ)	1 गिलास
9 बजे	टमाटर या हरी सब्जी का सूप	1कप
11 बजे	मीठा दूध	1 गिलास
1 बजे दोपहर में	नमकीन दलिया	1कटोरी
	मौसमी का जूस	1 गिलास
शाम को 4 बजे	चाय	1 कप
	बिस्कुट/ सूजी रस	2
रात्रि 8 बजे	नमकीन खिचड़ी	1 कटोरी
रात्रि 9 बजे	मीठा दूध	1 गिलास

नोट: तीव्र ज्वर में नरम आहार जैसे खिचड़ी, उबला आलू, दूध, पनीर, फलों का रस आदि का सेवन पर्याप्त मात्रा में करना चाहिए।

12.7 दीर्घ अवधि ज्वर– तपेदिक / क्षय रोग (Chronic Fever-Tuberculosis)

तपेदिक या क्षय रोग एक संक्रमण है जो कि माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्लोसिस (Mycobacterium Tuberculosis) नामक बैक्टीरिया द्वारा होता है। तपेदिक आज भी विकासशील देशों में मृत्यु दर को बढ़ाने वाले मुख्य कारणों में से एक है। इस रोग में बैक्टीरिया मुख्यत: फेफड़ों को प्रभावित करता है। इस रोग में हल्का ज्वर काफी लम्बे समय तक शरीर में बना रहता है। क्षय रोग में चयापचय की गति तीव्र नहीं होती है, परन्तु दीर्घकालीन रोग हो जाने के कारण शरीर के अवयवों का क्षय अवश्य होता है। इसलिए रोगी को अधिक ऊर्जा तथा प्रोटीन युक्त आहार मिलना चाहिए।

तपेदिक के कारण

इस रोग के कारण निम्नलिखित हैं:

1) **कुपोषण:** कुपोषण की अवस्था में शरीर दुर्बल तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता क्षीण हो जाती है। जिस कारण क्षय रोग का संक्रमण आसानी से प्रभावित कर सकता है।
2) **गरीबी:** गरीबी से ग्रसित वर्ग अक्सर ही कुपोषित देखा जाता है जिस कारण विभिन्न रोगों से यह पीड़ित हो सकता है।
3) **अस्वच्छता:** निम्न स्तर का रहन सहन यानि शारीरिक एवं घरेलू साफ सफाई पर ध्यान न देने से भी इस संक्रमण को बढ़ावा मिलता है। गाँवों में प्राय: खुले स्थानों पर मल मूत्र त्याग करने की आदतों, कूड़े कचरे का अनुचित निस्तारण न होने से खुली नालियाँ इत्यादि कारक आसपास के वातावरण को दूषित करते हैं। इस प्रकार का वातावरण तपेदिक रोग को बढ़ावा देता है।
4) **अज्ञानता:** शारीरिक व घरेलू साफ सफाई पर ध्यान न देने से तो तपेदिक रोग फैलता ही है पर इससे बचाव की जानकारी के प्रति जागरुता न होना व अज्ञानता भी इसे बढ़ावा देते हैं। जैसे तपेदिक के रोगी से उचित दूरी न बनाए रखना, रोगी की उचित साफ सफाई व उसके बर्तन आदि प्रयोग न करने आदि बातों के प्रति अज्ञानता भी एक स्वस्थ व्यक्ति को तपेदिक का रोगी बना सकता है।

तपेदिक के नैदानिक लक्षण

- खाँसी व कफ आना।
- नाड़ी की गति तीव्र होना।
- जल्दी थकान व आलस्य अनुभव करना।
- कभी-कभी छाती में पीड़ा व मुंह से रक्त का निकलना।
- बहुत तेजी से शारीरिक वजन घटना।
- लगातार हल्का ज्वर रहना।

तपेदिक की जटिलताएं

तपेदिक का अगर समय से इलाज न कराया जाए या इस पर ध्यान न दिया जाये तो यह रोगी को कुपोषण की चरम सीमा तक पहुँचा सकता है तथा फिर भी ध्यान न देने पर रोगी की मृत्यु भी हो सकती है। इसके अलावा घर के अन्य स्वस्थ व्यक्ति भी इसका शिकार हो सकते हैं।

तपेदिक के रोगी के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता

तपेदिक के रोगी को उचित दवाइयों, साफ-स्वच्छ वातावरण, आराम के साथ-साथ पौष्टिक आहार की भी अत्यंत आवश्यकता होती है।

- **ऊर्जा/कैलोरी:** तपेदिक का रोगी अल्पभार व कुपोषण ग्रस्त होता है। अत: उसकी शारीरिक ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ जाती है। इसमें चयापचय की दर अधिक नहीं होती है लेकिन हल्का ज्वर रहने के कारण ऊर्जा की हानि सामान्य से अधिक होती है। इसलिए तपेदिक के रोगी को सामान्य से 10 प्रतिशत अधिक कैलोरी देनी चाहिए। अत: रोगी को 300-500 कैलोरी प्रतिदिन बढ़ाकर देनी चाहिए।
- **प्रोटीन:** दीर्घकालीन ज्वर होने के कारण शरीर के तन्तु लगातार नष्ट होते रहते हैं तथा कोशिकाएँ भी नष्ट होती रहती हैं। अत: नयी कोशिकाओं के निर्माण तथा पुराने ऊतकों की मरम्मत के लिए प्रोटीन की आवश्यकता अत्यधिक बढ़ जाती है। रोगी को अच्छी गुणवत्ता वाले (उच्च जैविक मूल्य/High Biological Value) प्रोटीन के स्रोत जैसे अण्डा व दूध आदि आहार में देने चाहिए। इसके अलावा प्रोटीन के सेवन को बढ़ावा देने के लिए आहार में अनाज व दालों के मिश्रण द्वारा तैयार खाद्यों को देना चाहिए जैसे खिचड़ी, मूंग का नमकीन दलिया। लगभग 1.2 से 1.5 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन प्रति किलो शरीर भार देना चाहिए।
- **कार्बोहाइड्रेट:** ऊर्जा की आवश्यकता अधिक होने से दीर्घ अवधि ज्वर में कार्बोहाइड्रेट की आवश्यकता भी बढ़ जाती है। रोगी को सरल व आसानी से पचने वाले कार्बोहाइड्रेट के स्रोत आहार में प्रचुर मात्रा में देने चाहिए।
- **वसा:** दीर्घ अवधि ज्वर में रोगी भूख न लगना व वमन होना आदि से ग्रसित होता है। अत: वसा का ज्यादा प्रयोग नहीं करना चाहिए। अधिक वसा या तले भोज्य पदार्थों को लेने से रोगी को पेट में भारीपन तथा अतिसार जैसी समस्याएं हो सकती हैं। अत: हल्का व सुपाच्य भोजन ही उपयुक्त होता है।
- **विटामिन:** रोगी के आहार में सभी विटामिन प्रचुर मात्रा में शामिल करने चाहिए। प्राय: रोगियों में विटामिन ए की कमी हो जाती है। इसलिए प्रोटीन के स्रोत जैसे अण्डा, दूध आदि रोगी को देने चाहिए। तपेदिक में विटामिन सी की आवश्यकता भी बढ़ जाती है। ज्वर में मूत्र के द्वारा विटामिन सी का काफी मात्रा में निष्कासन हो जाता है। अत: विटामन सी रोगी को प्रचुर मात्रा में देना चाहिए। तपेदिक में फेफड़ों के साथ-साथ बैक्टीरिया हड्डियों को भी प्रभावित करता है। हड्डियों की मजबूती के लिए कैल्शियम की आवश्यकता होती है। विटामिन डी कैल्शियम के अवशोषण में सहायता प्रदान करता है। अत: विटामिन डी को आहार में शामिल करना चाहिए। इसके अलावा तपेदिक में ली जाने वाली एन्टीबायोटिक दवाइयों से विटामिन बी समूह के कुछ विटामिनों पर दुष्प्रभाव पड़ता है, मुख्यत: विटामिन बी 6 में। इस कारण विटामिन बी समूह आहार में पर्याप्त होने चाहिए।

- **खनिज लवण:** इस रोग की स्थिति में संक्रमित अंगों में घाव हो जाता है जिस कारण शरीर में कैल्शियम की मांग बढ़ जाती है। अत: रोगी को प्रतिदिन 1-1.5 लीटर दूध आवश्यक है। इसके अलवा यदि रोगी को रक्तस्राव की समस्या है तो लौह लवण की भी विशेष आवश्यकता होती है।

तपेदिक के रोगी हेतु आहार में सम्मिलित खाद्य पदार्थ

- दूध व दूध से बने पदार्थ
- अंकुरित अनाज, सोयाबीन, दालें, मूँगफली
- अण्डा, मांस, मछली
- फल, हरी व पीली सब्जियाँ

तपेदिक के रोगी हेतु आहार में वर्जित खाद्य पदार्थ

- तला-भुना भोज्य पदार्थ
- मिर्च मसाले युक्त आहार
- कड़े / जटिल रेशेयुक्त खाद्य पदार्थ

तपेदिक अथवा क्षय रोग से पीड़ित व्यक्ति के लिए आहार तालिका

आहार का समय	भोजन सूची	मात्रा
प्रात: काल (6.30 बजे)	चाय	1 कप
सुबह का नाश्ता (9-10 बजे)	नमकीन दलिया, या डबलरोटी मक्खन के साथ अण्डा (उबला हुआ) दूध केला / फल	1 कटोरी 2 1 1 गिलास 1
सुबह 11.30 बजे	फलों का रस	1 गिलास
दोपहर 1:00 बजे	रोटी	2

	दाल (अरहर-मल्का) सब्जी (आलू-टमाटर) चावल सलाद / रायता	1 कटोरी 1 कटोरी 1 कटोरी 1 कटोरी
शाम 4:00 बजे	चाय बिस्किट / सूजी का रस	1 कप 2-4
रात्रि भोजन से पहले 7:00 बजे	सब्जियों का सूप	1 कप
रात्रि 9:00 बजे भोजन	रोटी लौकी-आलू सब्जी दही या रायता	2-3 1 कटोरी 1 कटोरी
सोते समय 10:00 बजे	दूध	1 गिलास

नोट: यदि रोगी को तीव्र ज्वर हो तो नरम आहार जैसे खिचड़ी, उबले आलू, दूध, पनीर, फलों का रस इत्यादि का सेवन करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. सामान्यत: एक स्वस्थ व्यक्ति के शरीर का तापमान .... होता है।
   b. शरीर के 1^0 F तापक्रम में वृद्धि से आधारीय चयापचय दर (बी0एम0आर0) में .... की वृद्धि हो जाती है जिससे ऊर्जा की मांग बढ़ जाती है।
   c. टायफायड में आँतों में छिद्र हो जाते हैं और उनसे रक्त निकलने लगता है, इसे .... कहते हैं।
   d. क्षय रोग एक संक्रमण है जो .... नामक बैक्टीरिया द्वारा होता है।
   e. क्षय रोगी को अधिक .... वाले खाद्य पदार्थ ग्रहण करने चाहिए।

12.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने ज्वर एवं कैंसर रोगों के बारे में अध्ययन किया एवं इन रोगों में आहार नियोजन की जानकारी ली। ज्वर एक आम समस्या है। हमारे शरीर पर बदलते मौसम के साथ विभिन्न संक्रामक कीटाणु प्रतिदिन हमला करते हैं परन्तु स्वस्थ रहने पर रोग प्रतिरोधक क्षमता इन हमलों से हमारे शरीर की रक्षा करती है और हम स्वस्थ बने रहते हैं। कुपोषण, अस्वच्छता तथा गन्दगी संक्रमण को बढ़ावा देती है। संक्रमण होते ही शरीर में विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकताएं बढ़ जाती हैं। साथ ही ज्वर शरीर को दिन प्रतिदिन और भी कमजोर बना देता है। अत: उचित उपचार, देखभाल के साथ-साथ पर्याप्त मात्रा में पोषक आहार तथा आहारीय उपचार भी रोगी को न केवल रोग से लड़ने में अपितु शीघ्र से शीघ्र स्वस्थ होने में भी सहायता करते हैं।

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।
   - a. 98^0F/37^0C
   - b. 7 प्रतिशत
   - c. Peyer's Patches
   - d. माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्लोसिस
   - e. ऊर्जा

12.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. टायफाइड के आहारीय उपचार की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. तपेदिक के कारण व लक्षण विस्तार पूर्वक बताइए।
3. ज्वर की अवस्था में दिए जाने वाले तथा वर्जित भोज्य पदार्थों की सूची बनाइए। ज्वर के रोगी के लिए आदर्श आहार तालिका बनाइए।
4. ज्वर में पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता क्यों होती है?

इकाई 13: अन्य अवस्थाओं में आहार

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 शल्य चिकित्साएं, जलना तथा क्षति अवस्थाएं
    13.3.1 शल्य चिकित्सा (Surgical conditions)
    13.3.2 क्षति अवस्थाओं में आहार नियोजन
    13.3.3 जलने में आहार चिकित्सा
13.4 प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण
    13.4.1 प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का वर्गीकरण
    13.4.2 प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण के कारण
    13.4.3 प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का उपचार
13.5 एनीमिया/ रक्ताल्पता
13.6 सारांश
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

अभी तक आपने जीवन की विभिन्न अवस्थाओं एवं विभिन्न रोग स्थितियों में आहार एवं पोषण के विषय में अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में हम उन विशेष अवस्थाओं में पोषण एवं आहार का अध्ययन करेंगे जिन्हें व्यक्ति सामान्य रूप से अनुभव नहीं करता। शल्य चिकित्सा किसी रोग की स्थिति या किसी अकस्मात् स्थिति में की जाती है। दोनों ही स्थितियों में व्यक्ति के पोषण स्तर को बनाए रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस स्थिति में रोगी के आहार के साथ उसे खिलाने की विधियों का चयन भी विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। शरीर के अधिक गर्मी के संपर्क में आने से त्वचा जल सकती है। जलने की स्थिति में आहार में एंटीऑक्सीडेंट तथा प्रोटीन की मात्रा में वृद्धि करनी चाहिए। इस इकाई में हम कुछ प्रमुख पोषण सम्बंधी समस्याओं जैसे प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण तथा रक्ताल्पता में आहारीय प्रबंधन पर भी चर्चा करेंगे।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत शिक्षार्थी;

- शल्य चिकित्सा पूर्व एवं पश्चात पोषण देखभाल के बारे में जानेंगे;

- क्षति अवस्थाओं में आहार नियोजन की जानकारी प्राप्त करेंगे;
- जलने के वर्गीकरण तथा पोषण प्रबंध की चर्चा करेंगे; तथा
- प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण तथा रक्ताल्पता में आहारीय प्रबंधन का अध्ययन करेंगे।

13.3 शल्य चिकित्साएं, जलना तथा क्षति अवस्थाएं

13.3.1 शल्य चिकित्सा (Surgical conditions)

हालांकि शल्य चिकित्सा की जटिलताओं का प्राथमिक बीमारी तथा ऑपरेशन की प्रकृति से सीधा संबंध है परंतु कुपोषण इन जटिलताओं की गंभीरता को बढ़ा सकता है। शल्य चिकित्सा से पूर्व पोषण, विशेषकर मध्यम तथा गंभीर रूप से कुपोषित रोगियों के लिए लाभकारी है।

शल्य चिकित्सा पूर्व पोषण संबंधी देखभाल

किसी भी रोगी में शल्य चिकित्सा (operation) के पश्चात् स्वास्थ्य स्तर में सुधार तथा पुनः सामान्य जीवन जीने की संभावना उसकी शल्य चिकित्सा के पूर्व तथा पश्चात् की पोषण संबंधी देखभाल पर निर्भर करती है। जब शल्य चिकित्सा आकस्मिक परिस्थितियों में की जाती है तब शल्य चिकित्सा पूर्व पोषक तत्वों के पर्याप्त भंडारण का समय नहीं मिलता परंतु यदि यह योजनानुसार की जा रही हो उस स्थिति में रोगी का उपयुक्त स्वास्थ्य सुनिश्चित करने हेतु पर्याप्त उपाय लिए जा सकते हैं। शल्य चिकित्सा पूर्व आहार इस प्रकार होना चाहिए जो इस दौरान तथा इसके तुरंत बाद कुछ समय तक शरीर में पोषक तत्वों का पर्याप्त भंडारण कर सके क्योंकि रोगी शल्य चिकित्सा के पश्चात् कुछ समय तक मुँह के माध्यम से भोजन लेने में असमर्थ रहता है। यह पोषक तत्वों का भंडारण मुख्य रूप से ऊर्जा, प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज लवणों का होना चाहिए। अगर रक्ताल्पता है तो उसे सुधार लेना चाहिए तथा मधुमेह हो तो नियंत्रित करना आवश्यक है।

आमतौर पर शल्य चिकित्सा से आठ घंटे पूर्व से ही रोगी को मुँह द्वारा कुछ न खाने की सलाह दी जाती है। आठ घंटे के अंत तक पेट पूरी तरह खाली हो जाता है तथा यह सुनिश्चित करता है कि जब रोगी को ऐनैस्थीसिया (बेहोश करने की दवा) दी जाए तब भोजन वमन के रूप में बाहर न आए।

शल्य चिकित्सा पश्चात् पोषण संबधी देखभाल

इस अवधि के दौरान उपचार में मदद करने तथा शल्य चिकित्सा के प्रभाव से रोगी के जल्दी तथा पूरी तरह ठीक होने के लिए पोषण अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस अवधि में रोगी के पोषण पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है क्योंकि शल्य चिकित्सा के दौरान शरीर से हानि काफी बढ़ जाती है। साथ में शल्य चिकित्सा के बाद भोजन के सेवन में कमी हो जाती है या कभी-कभी एकदम बंद हो जाती है। सभी पोषक तत्वों की जरूरतों पर विशेष ध्यान देने की

आवश्यकता होती है। ऊतकों को ज्यादा मात्रा में कार्बोहाइड्रेट्स की जरूरत होती है ताकि प्रोटीन का उपयोग ऊतकों के निर्माण हेतु हो सके तथा ग्लाइकोजन का भंडार खत्म होने पर यकृत को नुकसान न हो पाए।

आहार में प्रोटीन की मांग ज्यादा होती है ताकि वह ऊतकों का निर्माण कर घावों को भर सके, सूजन नियंत्रित हो सके विशेषकर शल्य चिकित्सा की जगह पर, हड्डियों का पुनः निर्माण या जल्दी ठीक कर सके, संक्रमण से बचा सके (प्रतिरोधक पिणु (antibodies), रक्त कोशिकाओं, हॉरमोन तथा एन्जाइम के निर्माण द्वारा) तथा वसा का परिवहन हो सके।

शरीर में तरल पदार्थों की आवश्यकताएँ भी ज्यादा हो सकती हैं। शल्य चिकित्सा के पश्चात् पानी का नुकसान कई कारणों से अधिक हो सकता है जैसे रक्त का नुकसान, वमन, घाव के रिसाव, अथवा बुखार आदि।

विटामिन विशेषकर विटामिन ए तथा सी की जरूरतें भी बढ़ जाती हैं ताकि ऊतकों के पुनः निर्माण में मदद मिल सके। ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ने पर बी-कॉम्प्लेक्स विटामिन जैसे थायमिन, राइबोफ्लेविन और नाइसिन की जरूरतें भी बढ़ जाती हैं क्योंकि यह विटामिन सह-एंजाइम कारकों की तरह भी कार्य करते हैं। विटामिन 'के' रक्त के थक्कों के निर्माण में मदद करता है इसलिए इस विटामिन की भी आवश्यकता बढ़ जाती है। खनिज लवण विशेषकर कैल्शियम, फॉसफोरस, सोडियम तथा क्लोराइड की जरूरतों पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है क्योंकि शरीर से भारी मात्रा में ऊतकों तथा पानी का नुकसान होता है।

शल्य चिकित्सा में आहार नियोजन

कुछ शल्य चिकित्सा के मामलों में यदि जठरांत्र संबंधी मार्ग का प्रयोग नहीं किया जा सकता है, उस स्थिति में अंतः शिरा (Intravenous) तरीके से खिलाने का प्रबंध किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में हाइड्रोलाइस्ड प्रोटीन या एमिनो ऐसिड, डैस्ट्रोस (dextrose) तथा वसा इमल्शन (fat emulsion) द्रव्य रूप में परिधीय (peripheral) नसों द्वारा खिलाया जाता है। पर्याप्त पोषण प्रदान करने तथा जठरांत्र संबंधी मार्ग को प्रोत्साहित करने हेतु रोगी को जितनी जल्दी संभव हो सके सामान्य रूप से खाना खिलाने की कोशिश करनी चाहिए। जब शरीर से भारी मात्रा में ऊतकों का नुकसान हो तथा जठरांत्र मार्ग से भोजन खिलाने में रोगी की बढ़ी हुई पोषण संबंधी आवश्यकताएं पूरी न हो पा रही हों, ऐसी स्थिति में पूर्ण पैरेन्टरल पोषण (Total Parenteral Nutrition) का प्रयोग किया जाता है। इस स्थिति में पोषण तत्वों का मिश्रण अंतःशिरा मार्ग से शरीर में पहुँचाया जाता है। इस प्रकार की आहार व्यवस्था में भोजन तब तक खिलाया जाता है जब तक रोगी स्वयं से खाना खाने में सक्षम न हो तथा शरीर की बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु पर्याप्त पोषण न ले सके।

नली द्वारा आहार देना (Tube Feeding)

इस प्रकार की आहार प्रणाली उन रोगियों में प्रयोग की जाती है जो सामान्य रूप से भोजन को चबा या निगल नहीं सकते। इस प्रकार की स्थिति कई मामलों में आ सकती है। जैसे;

- सर या गर्दन की शल्य चिकित्सा
- ग्रासनली (Oesophagus) में रुकावट
- जठरांत्र शल्य चिकित्सा
- गंभीर रूप से जलना
- ऐनोरैक्सिया नरवोसा (Anorexia Nervosa): यह एक मनौवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति भोजन लेने के लिए तैयार नहीं होता जिस कारण वजन तेजी से गिर जाता है।

आमतौर पर खाने की नली को नाक द्वारा भीतर पहुँचाया जाता है। ग्रासनली में रुकावट की स्थिति में नली को उदर की सतह द्वारा भीतर पहुँचाया जाता है, इसे गैस्ट्रोस्टोमी (gastrostomy) कहते हैं। सामान्यतया दिए जाने वाले मिश्रण के सामान्य संगठक दूध, अंडा, सब्जी, फल, फलों का रस, वसा रहित दूध का पाउडर तथा विटामिन सी होते हैं।

13.3.2 क्षति अवस्थाओं में आहार नियोजन

क्षति अवस्थाओं में शरीर की प्रतिक्रिया को आघात के रूप में वर्णित किया जा सकता है। शरीर की क्षति के कई कारक हैं जैसे घाव होना, फ्रैक्चर होना अथवा जलना आदि।

क्षति अवस्थाओं की शारीरिक प्रतिक्रियाएँ स्थानीयकृत नहीं होतीं अपितु यह प्रतिक्रियाएँ दो चरणों में हो सकती है-

- तीव्र चरण अथवा भाटा चरण
- प्रवाह चरण अथवा अनुकूल चरण

शरीर की जितनी जल्दी हो सके, होमियोस्टेसिस प्राप्त करना अथवा सामान्य होना जरूरी होता है। यह प्रक्रिया जितनी तेजी से होगी शारीरिक स्थिति में सुधार भी जल्दी होगा।

तीव्र चरण में शरीर की न्यूरोएंडोक्राइन (neuroendocrine) प्रणाली प्रभावित होती है। इस चरण का अंतराल 24 से 72 घंटों का होता है। इस चरण की कई विशेषताएँ हैं जैसे शरीर में ऑक्सीजन की खपत कम हो जाना, यकृत के ऊर्जा भंडार के प्रयोग होने की वजह से रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाना, ऊतकों में ऑक्सीजन की कमी की वजह से रक्त में लैक्टिक एसिड का बढ़ना, शरीर में कीटोन तत्वों का बनना आदि।

प्रवाह चरण का अंतराल क्षति के पश्चात् एक से तीन दिन का होता है। इस चरण का अंतराल चोट की गंभीरता तथा पहले चरण में लिए गए प्रभावी उपायों पर निर्भर करता है। इस चरण की कई विशेषताएं हैं जैसे अधिक चयापचयी प्रक्रियाएं, ऑक्सीजन के उपयोग में वृद्धि, यकृत ग्लूकोज उत्पादन में वृद्धि, वसा के टूटने से मुक्त वसीय अम्ल का उपयोग, प्रोटीन का टूटना तथा मूत्र नाइट्रोजन के उत्पादन में वृद्धि। प्रवाह चरण में शरीर के भार में नुकसान होता है। हृदय की गति जो तीव्र चरण में सामान्य से भी नीचे होती है, प्रवाह चरण में बढ़ जाती है। रोगी में ऋणात्मक नाइट्रोजन संतुलन दिखाई देता है जिसे पोषण तथा आहार के मध्यम से अनुकूल करना अति आवश्यक है।

विभिन्न क्षति अवस्थाएँ तथा आहार नियोजन

क्षति अवस्थाएँ विभिन्न प्रकार की होती हैं तथा विभिन्न क्षति अवस्थाओं में आहार नियोजन क्षति के प्रकार, रोगी की स्थिति तथा पोषण की आवश्यकता पर निर्भर करता है।

- घाव अथवा त्वचा का कटना।
- जलना अथवा त्वचा का अत्यधिक गर्मी, रासायनिक पदार्थ या अत्यधिक ठंड के संपर्क में आना।
- हड्डियों में फ्रैक्चर होना।
- शल्य क्रिया जिसके अंतर्गत अंगविच्छेद जैसी शल्य चिकित्सा सम्मिलित हैं।
- गंभीर शारीरिक क्षति जिस कारण रोगी की जान को खतरा हो सकता है।

मध्यम प्रकार की क्षति अवस्थाओं जैसे त्वचा में गहरा कटना या घाव होना को पूरी तरह ठीक होने कुछ हफ्ते लगते हैं। गंभीर कटना या घाव का हड्डियों तक चला जाना, ऐसी स्थितियों में तत्काल आपातकालीन चिकत्सकीय सेवा की आवश्यकता होती है। आहार क्षति अवस्थाओं में सुधार हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण है। क्षतिग्रस्त अवस्थाओं में उपयुक्त पोषण न लेने तथा प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ लेने से शरीर आवश्यक पोषण से वंचित हो जाता है जिस कारण क्षतिग्रस्त ऊतकों का निर्माण नहीं हो पाता।

क्षतिग्रस्त अवस्थाओं में आहार

सभी प्रकार की गंभीर क्षति अवस्थाओं में रोगी मुँह के माध्यम से भोजन लेने में असमर्थ होता है जिस कारण रोगी को नली द्वारा भोजन देने की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार की भोजन व्यवस्था में कृत्रिम रूप से बना हुआ भोजन तरल पदार्थ के रूप में नली द्वारा शरीर में पहुँचाया जाता है। यह आहार पोषक तत्वों का मिश्रण होता है जो शरीर की आधारभूत पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। अन्य अवस्थाओं में जब रोगी आहार लेने में समर्थ हो, उस स्थिति में क्षति अवस्था के अनुरूप ही आहार दिया जाता है। मोच, दबाव, छोटे कम गहरे घाव, सूजन, हड्डियों में फ्रैक्चर कुछ सीमा तक सही भोजन ग्रहण करने से ठीक किए जा सकते हैं।

क्षतिग्रस्त अवस्थाओं में शरीर पर तनाव कम करने के लिए ऐसे खाद्य पदार्थों का चयन करना चाहिए जो सुपाच्य हों। कई खाद्य पदार्थ जैसे खट्टे फल जो विटामिन सी में भरपूर होते हैं तथा विटामिन ई में समृद्ध खाद्य पदार्थों में चोट को जल्दी ठीक करने के गुण होते हैं। भरपूर मात्रा में पानी का सेवन न सिर्फ शरीर को निर्जलीकरण से बचाता है अपितु सुधार की प्रक्रिया को तेज करता है। दूध का अच्छी मात्रा में सेवन भी क्षतिग्रस्त अवस्थाओं में लाभकारी है। यह सभी पोषक तत्वों का अच्छा स्त्रोत है तथा इसमें विटामिन डी अधिक मात्रा में पाया जाता है जो हड्डियों के घनत्व को बढ़ाकर मजबूत हड्डियों के निर्माण में मदद करता है।

13.3.3 जलने में आहार चिकित्सा

शरीर के अधिक गर्मी के संपर्क में आने से त्वचा जल सकती है। अत्यधिक गर्मी, आग, गर्म तरल पदार्थ, बिजली, संक्षारक रसायन अथवा विकिरण (radiation) द्वारा हो सकती है जो शरीर को जला सकती है।

जलने का वर्गीकरण

जलने को शरीर की सतह क्षेत्र के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. पहली डिग्री- इसमें शरीर का 15-20 प्रतिशत सतह क्षेत्र प्रभावित होता है। इसमें त्वचा की बाहरी परत प्रभावित होती है जो दर्द तथा लालिमा का कारण बनती है।

2. द्वितीय डिग्री- इसमें शरीर का 20-40 प्रतिशत सतह क्षेत्र प्रभावित होता है। इसमें जलने का विस्तार त्वचा की दूसरी परत तक हो जाता है जिस कारण लालिमा, दर्द तथा फफोले हो सकते हैं।

3. तृतीय डिग्री- जलने की यह स्थिति गंभीर होती है जो शरीर की 40-50 प्रतिशत सतह क्षेत्र को प्रभावित करती है। यह त्वचा की अंदरूनी तथा बाहरी दोनों सतहों को प्रभावित करती है तथा अंतर्निहित हड्डियों तथा मांसपेशियों का भी नुकसान पहुँचा सकती है। इस स्थिति में जली हुई जगह पीली प्रतीत होती है। आमतौर पर जले हुए क्षेत्र में दर्द नहीं होता क्योंकि जलने से तंत्रिका अंत नष्ट हो जाते हैं।

जलने को त्वचा की मोटाई के अनुसार भी वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. आंशिक- इस स्थिति में जलने पर भी त्वचा की उपकला परत मौजूद रहती है जो जल्द ही नवीनीकृत हो जाती है।

2. पूर्ण- इस स्थिति में त्वचा की उपकला परत पूरी तरह नष्ट हो जाती है जिस कारण सर्जरी की आवश्यकता पड़ती है।

जलने में आहार प्रबंध का प्रयोजन

- शरीर की श्वसन तथा संचार प्रणाली को प्रबल करना जब तक त्वचा का आवरण पूर्ववत न हो, मौलिक चयापचय दर सामान्य हो, तरल तथा इलैक्ट्रोलाइट संतुलन तथा खून की मात्रा सामान्य हो और अंततः पोषण स्थिति सामान्य हो।
- संक्रमण से बचाना।

अगर व्यक्ति व्यापक रूप से जला हो तथा पहले से कुपोषित है ऐसी स्थिति में ऊर्जा की आवश्यकताएँ 30-300 प्रतिशत तक अधिक हो सकती हैं विशेषकर जब रोगी की शल्य चिकित्सा हुई हो।

पोषण संबंधी आवश्यकताएँ निम्न प्रकार हैं-

1. कैलोरीज- 25× शरीर भार (किलोग्राम में) + 40× शरीर की सतह क्षेत्र का प्रतिशत
2. प्रोटीन- 2-4 ग्राम प्रति किलोग्राम शारीरिक भार प्रति दिन।

3. आहार में पूरक पोषण सम्मिलित करना चाहिए, विशेष रूप से विटामिन सी तथा जस्ता (Zinc)
4. सीरम के पोटेशियम स्तर की नियमित जाँच करनी चाहिए अन्यथा रक्त में पोटेशियम के स्तर में गिरावट हो जाती है जिसे हाइपोकेलेमिया (Hypokalemia) कहते हैं। आहार में कैल्शियम का सेवन अधिक होना चाहिए।

जलने पर आहार संबंधी उपयोगी सुझाव

- एंटीऑक्सिडेंट खाद्य पदार्थ जैसे ताजे फल तथा सब्जियाँ खानी चाहिए।
- परिष्कृत (refined) खाद्य पदार्थों जैसे ब्रैड, बिस्किट, पास्ता आदि का सेवन कम करना चाहिए।
- खाना पकाने में वनस्पति तेल का प्रयोग करना चाहिए।
- केक, बिस्किट जैसे प्रसंस्कृत वसीय खाद्य पदार्थों का सेवन कम या नहीं करना चाहिए।
- कैफीन, तम्बाकू और मादक पेयों से बचना चाहिए।
- प्रतिदिन 6-8 गिलास छना हुआ साफ पानी पीना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 1

1. एक शब्द में परिभाषित कीजिए।

a. इस प्रक्रिया में हाइड्रोलाइस्ड प्रोटीन या एमिनो एसिड, डैस्ट्रोस (dextrose) तथा वसा इमल्शन (fat emulsion) द्रव्य रूप में परिधीय (peripheral) नसों द्वारा खिलाया जाता है। ....

b. यह एक मनौवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति भोजन लेने के लिए तैयार नहीं होता जिस कारण वजन तेजी से गिर जाता है। ....

c. क्षति अवस्था के इस चरण में शरीर में ऑक्सीजन की खपत कम हो जाती है, यकृत के ऊर्जा भंडार के प्रयोग होने की वजह से रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है तथा ऊतकों में ऑक्सीजन की कमी की वजह से रक्त में लैक्टिक एसिड बढ़ जाता है।.................................

d. जलने के इस वर्गीकरण में शरीर का 20-40 प्रतिशत सतह क्षेत्र प्रभावित होता है। इसमें जलने का विस्तार त्वचा की दूसरी परत तक हो जाता है जिस कारण लालिमा, दर्द तथा फफोले हो सकते हैं।...............

13.4 प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण

प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण विकासशील देशों की मुख्य जन स्वास्थ्य समस्या है। प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का मुख्य कारण बचपन में अपर्याप्त एवं असंतोषजनक आहार है। यह रोग मुख्यतः बच्चों को होता है। लगभग 70 प्रतिशत बच्चे जो माँ का दूध पीना जल्दी छोड़ देते हैं, प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण से ग्रसित हो जाते हैं। इस रोग के साथ अधिकतर संक्रमण भी हो जाते हैं। कुपोषण शरीर की मुख्य रोग प्रतिरोधी प्रतिक्रिया प्रणालियों को कमजोर करके शरीर की रोगों से लड़ने की

क्षमता को क्षीण कर देता है। इसके कारण जल्दी-जल्दी, लम्बे समय तक गम्भीर बीमारियों से शरीर ग्रसित रहता है। बीमारियों के कारण कुपोषण और अधिक बढ़ जाता है। प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण उच्च बाल मृत्यु दर का महत्वपूर्ण कारण है। तीव्र कुपोषण में बच्चा यदि बच भी जाए तो उसका शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध होता है जिससे सामाजिक एवं आर्थिक विकास दोनों ही प्रभावित होते हैं। जब शरीर को प्रोटीन ऊर्जा या दोनों की आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है तब वह प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण से ग्रसित होता है। बच्चों में इसके कारण वृद्धि अवरोध होता है एवं वयस्कों में क्षीणता।

13.4.1 प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का वर्गीकरण

कुपोषण की तीव्रता को मानवमितीय मापों से नापा जाता है। जब तीव्र कुपोषण होता है तो उसे प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण कहते हैं। प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण निम्नलिखित तीन प्रकार से परिलक्षित होता है।

(1) क्वाशियोरकर (Kwashiorkar)
(2) मरास्मस या सूखा रोग (Marasmus)
(3) मरास्मिक क्वाशियोरकर (Marasmic Kwashiorkar)

(1) क्वाशियोरकर: क्वाशियोरकर रोग 1-4 साल के बच्चों में होता है। 'क्वाशियोरकर' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सन् 1935 में सिसली विलियम्स ने किया था। यह एक अफ्रीकन शब्द है जिसका अर्थ उस रोग से है जो पहले बच्चे को दूसरे बच्चे के जन्म के बाद होता है (Disease which the child gets when the next baby is born)। क्वाशियोरकर रोग आहार में ऊर्जा की अपेक्षा प्रोटीन की कमी के कारण होता है। यह मुख्यतः तब होता है जब छोटे बच्चे से माँ का दूध छुड़ा दिया जाता है एवं उसे पूरक आहार के रूप में स्टार्च युक्त (कार्बोहाइड्रेट) आहार (जिसमें प्रोटीन की मात्रा न के बराबर या कम होती है) दिया जाता है। आहार में प्रोटीन या तो कम मात्रा में होता है या उसकी गुणवत्ता अच्छी नहीं होती है। आहार में प्रोटीन की लम्बे समय तक कमी रहने के कारण बच्चे का वजन कम होने लगता है। वजन में यह कमी बहुत ज्यादा नहीं होती है क्योंकि बच्चे को ऊर्जा तो मिल ही रही होती है। क्वाशियोरकर से पीड़ित बच्चों में निम्नलिखित लक्षण दिखाई देते हैं:

1. वृद्धि में रुकावट: क्वाशियोरकर से पीड़ित बच्चे की वृद्धि एवं विकास दोनों ही अवरुद्ध हो जाते हैं। बच्चे का वजन आयु के अनुरूप कम होता है। इन बच्चों की ऊँचाई भी आयु के अनुरूप कम रह जाती है। इस स्थिति को 'Stunting' (बौनापन) कहते हैं।

2. सूजन (Oedema): शरीर में प्रोटीन की कमी से सूजन हो जाती है। शरीर की सभी कोशिकाओं एवं ऊतकों के बीच पानी भर जाता है। सूजन की मात्रा प्रोटीन की कमी, रक्त में एल्ब्यूमिन की कमी, नमक एवं जल की अधिकता आदि पर निर्भर करती है। सूजन सबसे पहले पंजों एवं पैरों पर आती है। तत्पश्चात् जाँघों, हाथों और मुँह तक फैल जाती हैं। सूजन के कारण बच्चा तन्दुरुस्त दिखता है और उसके हाथ-पैर तथा मुँह मोटे तथा फूले हुए दिखते हैं।

3. माँसपेशियों का क्षय: शरीर की माँसपेशियाँ नष्ट होने लगती हैं। इसका प्रभाव बाँहों, हाथों की माँसपेशियों एवं टाँगों पर अधिक पड़ता है। ऊपरी बाँह के मध्य भाग का घेरा कम हो जाता है।

4. मानसिक परिवर्तन: बच्चे के स्वभाव में उदासीनता एवं चिड़चिड़ापन आ जाता है। बच्चा बात-बात पर रोने लगता है। बच्चे को अपने आस-पास की किसी भी गतिविधि या खेल में रुचि नहीं होती है। बच्चा आलसी, सुस्त एवं थका-थका दिखाई देता है। अधिक तीव्रता की स्थिति में बच्चे बिस्तर पर सुस्त पड़े रहते हैं।

5. रक्ताल्पता: प्रोटीन की कमी के कारण हीमोग्लोबिन का निर्माण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है जिसके कारण रक्ताल्पता या एनीमिया रोग हो जाता है।

6. बालों में परिवर्तन: इस रोग के होने पर बाल रूखे, कड़क एवं चमकहीन हो जाते हैं। बालों के रंग में परिवर्तन आ जाता है। बालों का रंग फीका पड़ जाता है और उनमें भूरापन, सुनहरापन या सफेदी आ जाती है। बालों की वृद्धि रुक जाती है। प्रोटीन की कमी के कारण बाल झड़ने लगते हैं। बाल कमजोर होकर आसानी से खींच कर टूट जाते हैं।

7. त्वचा पर प्रभाव: प्रोटीन की कमी के कारण त्वचा का रंग भी बदल जाता है। त्वचा शुष्क, खुरदुरी एवं कांतिहीन हो जाती है। त्वचा पर जगह-जगह गहरे भूरे रंग के काले चकत्ते पड़ जाते हैं। ऐसा वर्णकों की अधिकता के कारण होता है।

8. चन्द्राकार मुख: ऊतकों एवं कोशिकाओं में पानी भर जाने के कारण शरीर में सूजन आ जाती है। हाथ, पैर तथा टाँगों के अतिरिक्त मुँह पर भी सूजन आ जाती है। इस सूजन के कारण बच्चे का मुख चन्द्रमा के समान गोल हो जाता है।

9. भूख में कमी एवं अतिसार: प्रोटीन की कमी से पाचन सम्बन्धी अनेकों गड़बड़ियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। भोजन को पचाने के लिए पाचक रसों एवं विभिन्न एन्जाइमों की आवश्यकता होती है क्योंकि एन्जाइम का निर्माण प्रोटीन से ही होता है, इसलिए प्रोटीन के अभाव में पाचन में प्रयोग होने वाले एन्जाइमों का निर्माण उचित प्रकार नहीं हो पाता है, जिससे पाचन, अवशोषण एवं चयापचय की क्रिया बाधित होती है। फलस्वरूप पाचन शक्ति क्षीण होने लगती है। पाचन शक्ति क्षीण होने के कारण बच्चे को ठीक प्रकार से भूख नहीं लगती है तथा बच्चे को अतिसार हो जाता है।

10. श्लैष्मिक झिल्लियों का प्रभाव: प्रोटीन की कमी के कारण श्लैष्मिक झिल्लियाँ प्रभावित होती हैं। होंठ फटने एवं कटने लगते हैं। जीभ की सतह चिकनी हो जाती है।

11. नाड़ी संस्थान पर प्रभाव: प्रोटीन की कमी से न केवल बच्चे का शारीरिक विकास ही अवरुद्ध होता है बल्कि मानसिक एवं बौद्धिक विकास भी बाधित होता है। ऐसे बच्चों की सीखने की क्षमता कम हो जाती है।

12. यकृत में वसा का जमाव: प्रोटीन की कमी से यकृत पर वसा का जमाव हो जाता है, जिसके कारण इसके आकार में वृद्धि हो जाती है। यकृत छूने पर कठोर महसूस होता है। अग्नाशय का आकार छोटा हो जाता है।

13. विटामिन की कमी: रोगग्रस्त बच्चे के शरीर में विटामिन की कमी भी दिखाई देने लगती है। बच्चे के शरीर में विटामिन 'बी' एवं विटामिन 'ए' की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं।

14. संक्रमण का खतरा: क्वाशियोरकर से पीड़ित बच्चों में संक्रमण का खतरा हमेशा बना रहता है।

(2) मरास्मस: जब बालक के आहार में प्रोटीन एवं ऊर्जा दोनों की कमी हो जाती है तब उसे मरास्मस हो जाता है। यह रोग 6 माह से लेकर 18 माह तक के शिशु को होता है। यह रोग अधिकांशतः निर्धन वर्ग के बच्चों में होता है क्योंकि उनके आहार में प्रोटीन के साथ-साथ ऊर्जा की भी कमी होती है। इसका मुख्य कारण अपर्याप्त आहार है। स्त्री का जल्दी-जल्दी माँ बनना एवं बच्चे को कम उम्र में ही स्तनपान रोककर बोतल से दूध पिलाना शुरु करना भी इस रोग का महत्वपूर्ण कारण है। बोतल में दूध देने की प्रक्रिया में दूध में पानी मिलाना, बोतल को ठीक प्रकार से साफ न करना आदि क्रियाएं इस रोग को बढ़ावा देती हैं। बच्चे को पूरक आहार के नाम पर उचित पोषक भोजन न देना भी इसका मुख्य कारण है।

मरास्मस रोग क्वाशियोरकर से भी अधिक हानिकारक होता है। इस रोग के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं:

1. माँसपेशियों का क्षय अत्यधिक होता है। अतः हाथ, पैर पतले एवं कमजोर दिखते हैं। अति तीव्र अवस्था में त्वचा अस्थियों से चिपकी हुई दिखाई देती है।
2. रोगग्रस्त बच्चे का वजन एवं लम्बाई उसकी आयु के अनुरूप बहुत कम होता है।
3. ऐसे बच्चे का ऊपरी बाँह के मध्य भाग का घेरा 11.5 सेमी से कम हो जाता है।
4. बच्चे की त्वचा पर झुर्रियां पड़ जाती हैं और बच्चे का चेहरा बन्दर जैसा पिचका हुआ दिखाई देता है।
5. आंत्र मार्ग में संक्रमण के कारण बार-बार निर्जलीकरण हो जाता है।
6. बालक अधिक उम्र का दिखाई देता है।
7. बाल रूखे एवं मटमैले हो जाते हैं।

(3) मरास्मिक क्वाशियोरकर

अविकसित एवं विकासशील देशों में, जहाँ प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण अधिक है, वहाँ के बच्चों में मरास्मस एवं क्वाशियोरकर दोनों के लक्षण एक साथ दिखाई देते हैं। शिशु प्रारम्भ में क्वाशियोरकर से ग्रसित होता है। धीरे-धीरे जब उसके आहार में प्रोटीन के साथ-साथ कैलोरी भी कम हो जाती है तब उसे मरास्मस भी हो जाता है।

वयस्कों में प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण होने पर उनका वजन कम होने लगता है, वसा घट जाती है, रक्ताल्पता (एनीमिया) हो जाता है, व्यक्ति पर रोगाणुओं का प्रभाव आसानी से होने लगता है, उसे बार-बार अतिसार होता है। इन सब के कारण व्यक्ति जीवन के बाद के वर्षों में कठोर परिश्रम नहीं कर पाता तथा उचित धनोपार्जन नहीं कर पाता।

बच्चों एवं वयस्कों में प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का प्रभाव

शिशु एवं बालकों में

- रोगों से लड़ने की क्षमता कम हो जाती है।
- संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है।
- वृद्धि अवरोध।
- थकान व उदासीनता बढ़ जाती है।

- शिशु एवं बाल मृत्यु की सम्भावना बढ़ जाती है।
- मानसिक एवं संज्ञानात्मक विकास अवरुद्ध हो जाता है।
- सीखने की प्रक्रिया में अवरोध।

महिलाओं में

- गर्भावस्था के दौरान जटिलताओं का खतरा बढ़ जाता है।
- सहज गर्भपात, मृत प्रसव एवं शिशु मृत्यु का खतरा बढ़ जाता है।
- भ्रूण के मस्तिष्क का विकास अवरुद्ध हो जाता है।
- मातृ मृत्यु का खतरा बढ़ जाता है।
- कम वजन के बच्चे पैदा होने का खतरा बढ़ जाता है।
- कार्यक्षमता कम होने से बच्चों की उचित देखभाल नहीं होती।
- बच्चों में कुपोषण का खतरा बढ़ जाता है।

वयस्कों में

- कार्यक्षमता कम हो जाती है।
- संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है।

13.4.2 प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण के कारण

प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का मुख्य कारण अपर्याप्त एवं असंतुलित आहार है। इसके अलावा परिवार में ज्यादा बच्चे, निर्धनता, अज्ञानता, अंधविश्वास एवं प्रथाएं, बच्चों में संक्रमण, साफ-सफाई का अभाव, माता का कुपोषण आदि भी इसके कारण हैं।

13.4.3 प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का उपचार

अब आप भली प्रकार से जान चुके हैं कि प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण एक बहुमुखी समस्या है। इसलिए इसकी उपचारात्मक योजना भी उसी प्रकार बनायी जाती है। उपचार प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य वजन कम होने के रोकना, शरीर के वर्तमान वजन को बनाए रखना एवं ऐसे पोषक तत्वों को आहार में देना जिससे वजन बढ़ सके। उपचार की योजना में पोषणात्मक प्रबन्ध एवं चिकित्सकीय प्रबन्ध सम्मिलित किए जाते हैं।

पोषणात्मक प्रबन्ध

पोषणात्मक प्रबन्ध के अन्तर्गत आहार सुधार, पोषण शिक्षा, मौखिक पूरक आहार देना, ट्यूब फीडिंग एवं अंत:शिरा पोषण आदि क्रियाएं सम्मिलित हैं। उपचार के लिए कौन-सा तरीका अपनाना है यह बात पूरी तरह से रोगी की अवस्था एवं लक्षणों पर निर्भर करती है। कभी-कभी एक से ज्यादा तरीकों को उपयोग में लाया जा सकता है।

आहार सुधार का मुख्य उद्देश्य संतुलित आहार प्रदान करना है। कुपोषण की पहचान के बाद शीघ्रातिशीघ्र बच्चे को उचित आहार प्रदान किया जाता है। आहार की योजना इस प्रकार बनायी जाती है कि कुपोषित रोगी को अधिकतम पोषण लाभ मिल सके। बच्चे को ऊर्जा एवं प्रोटीन उसकी आयु तथा दैनिक आवश्यकतानुसार देने चाहिए। ऐसी स्थिति में बहुत ज्यादा मात्रा में आहार देना कभी-कभी बच्चे को नुकसान दे सकता है। अधिक मात्रा में आहार अपच, अतिसार आदि समस्याएं उत्पन्न कर सकता है।

शिशुओं के लिए पूरक आहार बनाते समय खासतौर पर सावधानी बरतनी चाहिए। प्रोटीन की गुणवत्ता विशेषत: अच्छी एवं उच्च प्रकार की होनी चाहिए। ऊर्जा की मात्रा को धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। आहार सुधार का मुख्य उद्देश्य आहार में पोषण सघनता को बढ़ाना होना चाहिए। अत्यधिक वसायुक्त भोज्य पदार्थों का उपयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि उनसे आहार की मात्रा एवं पोषक तत्वों की मात्रा कम हो जाती है। वसायुक्त भोज्य पदार्थ भूख को शान्त/कम कर देते हैं। बच्चे को दिन में दो या तीन बार अधिक मात्रा में भोजन देने के बजाय थोड़ी-थोड़ी मात्रा में पाँच या छः बार भोजन देना अधिक श्रेयस्कर रहता है। मुख्य भोजन के बीच कोई उच्च ऊर्जा-प्रोटीन पेय या नाश्ता दिया जा सकता है। जब बच्चे की हालत सुधरने लगे तो आहार में भोज्य पदार्थों की मात्रा को धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। शिशुओं के लिए दूध एवं पूरक आहार बनाते समय साफ-सफाई का उचित ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए भली प्रकार से उबला हुआ पानी प्रयोग करना चाहिए एवं दूध की बोतल को भी रोगाणु मुक्त रखना चाहिए।

पोषण शिक्षा का उद्देश्य भी आहार की मात्रा को बढ़ाना एवं संतुलित भोजन का प्रयोग है। देखभाल करने वाले व्यक्ति या बच्चों की माँ को पोषण शिक्षा के प्रति जागरुक किया जा सकता है कि वह लोग कैसे कुपोषित बच्चे या व्यक्ति का उपचार कर सकते हैं। पोषण शिक्षा के अंतर्गत आहार विविधिकरण पर बल दिया जाता है।

पोषण शिक्षा में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए:

1. माताओं एवं समुदाय के लोगों को स्तनपान का महत्व समझाना।
2. साफ-सफाई एवं स्वच्छता पर बल देना तथा लोगों को स्वच्छता की महत्ता समझाना।
3. टीकाकरण की आवश्यकता एवं लाभ समझाना।
4. बागवानी को प्रोत्साहित करना एवं घर के पीछे छोटे हिस्से में पोषक भोज्य पदार्थों को उगा कर ग्रहण करने की शिक्षा देना।
5. भोजन अंतर्ग्रहण से सम्बंधित भेदभाव दूर करने के लिए समाज को जागरुक करना।
6. बच्चों के लिए उचित पोषण का महत्व एवं देखरेख के अन्य उचित तरीके बताना।
7. पूरक आहार सम्बन्धी अंधविश्वास, मान्यताएं आदि के विषय में उचित जानकारी देकर उचित पोषण सम्बन्धी जानकारी देना।

मौखिक आहार सम्बन्धित उपचार निम्नलिखित तरीकों से करने चाहिए:

1. बच्चे को वसारहित दूध दिया जाना चाहिए क्योंकि वसायुक्त दूध कठिनता से पचता है।
2. वसारहित दूध में खिचड़ी, पके फल, दलिया आदि मिलाकर देने चाहिए।

3. तरल पेय पदार्थों जैसे सब्जियों का सूप, मूँग की घुटी दाल, फलों का रस, छाछ, दाल का पानी आदि पिलाना चाहिए। इस प्रकार का वसारहित भोजन बच्चे को कम से कम 3-4 सप्ताह तक दिया जाना चाहिए। जब ऐसा भोजन बच्चे को पचने लगे तब धीरे-धीरे भोज्य पदार्थों की मात्रा एवं गुणवत्ता बढ़ायी जानी चाहिए।
4. विटामिनों एवं खनिज लवणों की पूर्ति हेतु हरी पत्तेदार सब्जियों के रस, पीले फल, संतरा, मौसमी आदि फलों के रस का प्रयोग करना चाहिए।
5. मिश्रित भोज्य पदार्थों का उपयोग किया जाना चाहिए जैसे दाल-सब्जी एवं अनाज मिलाकर खिचड़ी, दूध-दलिया, खिचड़ी के साथ दूध या दही मिलाकर खिलाना चाहिए।
6. मरास्मस की स्थिति में बच्चों में ऊर्जा की भी कमी हो जाती है। अतः बच्चे के प्रति किलो ग्राम वजन के अनुसार उसे 140-150 किलो कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अतः उसकी ऊर्जा की माँग की पूर्ति के लिए अधिक कैलोरीयुक्त भोज्य पदार्थ खिलाने चाहिए।
7. आसानी से पचने योग्य उत्तम किस्म का प्रोटीन देना चाहिए। इसके लिए दालों, फलियों, अण्डों, वसा रहित माँस का प्रयोग किया जाना चाहिए।

चिकित्सकीय प्रबन्धन

यदि कुपोषण की स्थिति गम्भीर है तो भोजन में सुधार के साथ-साथ चिकित्सकीय उपचार भी आवश्यक है। ऐसी अवस्था में बच्चे को अस्पताल ले जाना चाहिए जहाँ पर बीमारी, संक्रमण एवं चयापचय संबंधी इलाज किये जा सकें। सर्वप्रथम बच्चे की बीमारियों जैसे कम रक्त शर्करा, अत्यधिक ठंड लगना, एनीमिया, अतिसार, वमन आदि का चिकित्सीय इलाज किया जाता है। प्रोटीन, ऊर्जा की कमी से उत्पन्न कुपोषण में रोगाणुओं का प्रकोप अधिक होता है। इसी कारण एंटीबायटिक औषधियां देनी आवश्यक हैं। एक और सावधानी यह रखी जाती है कि ऐसे बच्चे को गर्म वस्त्र पहना कर गर्म स्थान पर रखना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 2

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

a. मरास्मस होता है:

(क) प्रोटीन एवं ऊर्जा दोनों की कमी से (ख) खनिज लवणों की कमी से

(ग) प्रोटीन की कमी से (घ) ऊर्जा की कमी से

b. मरास्मस के मुख्य लक्षण हैं:

(क) वजन में कमी (ख) माँसपेशियों में क्षीणता

(ग) रक्त में एल्ब्यूमिन की कमी (घ) उपरोक्त सभी

c. क्वाशियोरकर एवं मरास्मस अलग-अलग तरह के .... हैं:

(क) खनिज कुपोषण (ख) प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण

(ग) विटामिन कुपोषण (घ) उपरोक्त सभी

13.5 एनीमिया/ रक्ताल्पता

एनीमिया एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है "रक्तहीन"। एनीमिया नाम उन विकार रोगों के समूह को दिया गया है जिसमें शरीर में लाल कोशिकाओं की गुणात्मक या मात्रात्मक कमी हो जाती है। सामान्य से कम लाल रक्त कोशिका, हीमोग्लोबिन की मात्रा या रक्त में उपस्थित लाल कोशिकाओं की मात्रा को एनीमिया कहा जाता है। सामान्य भाषा में रक्ताल्पता का अर्थ रक्त की कमी से है। सटीक शब्दों में एनीमिया या रक्ताल्पता लाल रक्त कोशिकाओं में पाए जाने वाले पदार्थ हीमोग्लोबिन की कमी से होता है। हीमोग्लोबिन पूरे शरीर में ऑक्सीजन को प्रवाहित करता है। एनीमिया में शरीर में ऑक्सीजन की आपूर्ति में कमी आ जाती है।

हीमोग्लोबिन की मात्रा

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विभिन्न आयु वर्गों के लोगों में हीमोग्लोबिन की ग्राम प्रति मि.ली. की मात्रा का सामान्य स्तर निश्चित है। उस स्तर से कम होने की स्थिति को एनीमिया कहा जाता है। विभिन्न आयु वर्गों के हीमोग्लोबिन का सामान्य स्तर नीचे दी गई तालिका में दिया गया है। निम्न तालिका के अनुसार महिलाओं में 12 ग्राम प्रति मि.ली. जबकि पुरूषों में 13 ग्राम प्रति मि.ली. हीमोग्लोबिन की मात्रा होनी चाहिए।

सामान्य हीमोग्लोबिन स्तर

आयु वर्ग	हीमोग्लोबिन स्तर (ग्राम/मि.ली.)
बच्चे (5 माह से 5 वर्ष तक)	11.0
बच्चे (5 वर्ष से 12 वर्ष तक)	11.5
बच्चे (12 वर्ष से 15 वर्ष तक)	12.0
महिलाएं (15 वर्ष से अधिक)	12.0
पुरुष (15 वर्ष से अधिक)	13.0
गर्भवती महिलाएं	11.0

एनीमिया का वर्गीकरण हीमोग्लोबिन स्तर के अनुसार किया जाता है। सामान्य से कम हीमोग्लोबिन के आधार पर एनीमिया को तीन भागों में वर्गीकृत किया जाता है।

एनीमिया का वर्गीकरण

स्तर	हीमोग्लोबिन स्तर (ग्राम/मि.ली.)

सामान्य	12 या उससे ज्यादा
न्यून	10-12
मध्यम	7-9.9
गंभीर	7 से कम

स्रोतः विश्व स्वास्थ्य संगठन

बढ़ते बच्चों, गर्भवती माताओं, किशोरियों एवं बीमार व्यक्तियों में एनीमिया का खतरा ज्यादा होता है।

लौह तत्व की कमी से होने वाला एनीमिया

भारत में सबसे ज्यादा लौह तत्व की कमी से होने वाला एनीमिया व्याप्त है। गर्भवती महिलाओं और बच्चों में यह मुख्य रूप से पाया जाता है क्योंकि इस उम्र में शरीर में लौह तत्व की आवश्यकता अधिक होती है। लौह तत्व, हीमोग्लोबिन अणु का महत्वपूर्ण हिस्सा है। हीमोग्लोबिन के सामान्य संश्लेषण के लिए शरीर में लौह तत्व की समुचित आपूर्ति होनी आवश्यक है।

लाल रक्त कोशिकाओं की जीवन अवधि 120 दिन की होती है, उसके बाद वह परिसंचरण से हट जाते हैं। नष्ट लाल रक्त कोशिकाओं से लौह तत्व अस्थि मज्जा में वापस लाया जाता है। अस्थि मज्जा में निरन्तर लाल रक्त कोशिकाओं का निर्माण होता रहता है। यह लौह तत्व नवगठित लाल कोशिकाओं में पुनः शामिल कर लिया जाता है। शरीर को लौह तत्व की आवश्यकता चयापचयिक हानि, मासिक धर्म हानि एवं शारीरिक वृद्धि के लिए होती है। शरीर में लौह तत्व की कमी से एनीमिया आहार में लौह तत्व के अपर्याप्त सेवन से या लाल रक्त कोशिकाओं में उपस्थित लौह तत्व के अपर्याप्त पुनरुपयोग से होता है।

एक अनुमान के अनुसार विश्व की 20 प्रतिशत जनसंख्या में लौह तत्व की कमी है। लौह तत्व की कमी से होने वाला एनीमिया हाइपोक्रोमिक (लाल रक्त कोशिकाओं का कम रंग) एवं माइक्रोसिटिक (लाल रक्त कोशिकाओं का छोटा आकार) होता है। लाल रक्त कोशिकाओं का रंग फीका इसलिए पड़ जाता है क्योंकि उनमें सामान्य से कम मात्रा में हीमोग्लोबिन होता है। कोशिकाओं का छोटा आकार हीमोग्लोबिन का स्तर कम होने कारण होता है।

लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया के कारण

मानव शरीर में लौह तत्व की कमी कई कारणों से हो सकती है।

1. अपर्याप्त आहार: शरीर में लौह तत्व की कमी का मुख्य कारण अपर्याप्त आहार है। लम्बे समय तक आहार से लौह तत्व युक्त भोज्य पदार्थों का सेवन कम या न करना एनीमिया का प्रमुख कारण है। यदि आहार में लौह तत्व युक्त भोज्य पदार्थ उपस्थित भी हों परन्तु वह अवशोषित न होने वाले हों, ऐसी स्थिति में भी एनीमिया हो जाता है।

2. असंतुलित आहार: आहार में प्रोटीन की तुलना में अधिक कार्बोहाइड्रेट का समावेश आहार के माध्यम से अधिक फॉस्फेट, फाइटेट एवं रेशे प्रदान करता है। ये सभी तत्व लौह लवण के साथ मिलकर अघुलनशील लवण बनाते हैं

जिससे लौह लवण का अवशोषण उचित प्रकार से नहीं हो पाता है। प्रतिदिन ज्यादा चाय, कॉफी पीने से भी लौह लवण के अवशोषण में बाधा पड़ती है। आहार में लौह लवण युक्त भोज्य पदार्थों जैसे हरी पत्तेदार सब्जियाँ, पोहा, अंकुरित दालें आदि को सम्मलित न करना एवं आहार में लौह लवण के अवशोषण अवरोधक की उपस्थिति एनीमिया रोग का कारण बनती है।

3. लौह लवण की अधिक माँग: मानव शरीर में लौह लवण की माँग आयु की विभिन्न अवस्थाओं में बढ़ जाती है। शैशवास्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, गर्भावस्था एवं धात्रीवस्था आदि में शरीर की लौह तत्व की माँग बढ़ जाती है। इन अवस्थाओं में यदि उचित मात्रा में लौह तत्व प्रतिदिन न लिया जाए तो एनीमिया हो जाता है।

4. अत्यधिक रक्तस्राव होने से: अत्यधिक रक्तस्राव भी एनीमिया का बड़ा कारण है। रक्तस्राव दुर्घटना के कारण, मासिक धर्म में अत्यधिक स्राव, बीमारी जैसे अल्सर, मलेरिया, पेट का कैंसर, प्रसव के समय, गर्भपात होने से, आंतों में परजीवियों की उपस्थिति से हो सकता है। इन सभी कारणों से भी एनीमिया हो जाता है।

5. जल्दी-जल्दी रक्तदान: साल भर में दो बार से अधिक रक्तदान एनीमिया का कारण बन सकता है।

6. दवाईयां: कुछ दवाईयों का निरन्तर प्रयोग एनीमिया का कारण बन सकता है। दर्द निवारक दवा, शराब एवं कीमोथेरेपी में प्रयोग होने वाली दवाएं एनीमिया की स्थिति पैदा कर सकती हैं।

7. अन्य कारण: अन्य कारण जैसे प्रोटीन-ऊर्जा कुपोषण, आहार में अवशोषण के सहायक तत्वों की कमी, आमाशय द्वारा जठर रस का पर्याप्त स्रावण नहीं होना, अतिसार दस्त आदि की स्थिति, अस्थियों का ट्यूमर आदि से भी एनीमिया हो सकता है।

एनीमिया के लक्षण

एनीमिया के सामान्य लक्षण निम्नलिखित हैं:

- शीघ्र थकावट महसूस करना
- त्वचा का रंग पीला पड़ जाना
- सांस लेने में कठिनाई
- चक्कर/सिर में दर्द
- हाथ-पैरों में दर्द
- भूख में कमी
- बच्चों में सुस्तता एवं उदासीनता
- जीभ चिकनी एवं चमकदार
- नाखून भंगुर एवं नाजुक हो जाते हैं। बाद में वे चपटे और पतले होने लगते हैं और अन्त में नाखून चम्मच जैसे आकार के हो जाते हैं, इसे कोइलोनाकिया/Koilonychia कहते हैं।

एनीमिया काम करने की क्षमता विशेषकर निरन्तर शारीरिक क्रियाकलाप के सामर्थ्य को कम कर देता है।

गर्भावस्था में लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया माता एवं भ्रूण दोनों के लिए खतरे उत्पन्न करता है। गर्भवती महिलाएं एनीमिया से ग्रस्त होकर बीमार रहती हैं, जिससे मातृ एवं शिशु मृत्यु की संभावना बढ़ जाती है। ऐसी महिलाएं कम भार वाले शिशु को जन्म देती हैं।

शैशव और बचपन के प्रारम्भिक दौर में लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया बच्चे के मनोवैज्ञानिक विकास में देरी कर सकता है और उनके संज्ञानात्मक विकास में बाधा डाल सकता है। इससे उनकी बुद्धिलब्धि (आई. क्यू.) कम हो सकती है। लौह तत्व की कमी के कारण होने वाला एनीमिया संक्रमण का प्रतिरोध कम कर देता है। महिलाओं में लौह तत्व की कमी से बाल झड़ने लगते हैं। लौह तत्व की कमी में विशेषकर बर्फ, मिट्टी, नमक, स्टार्च आदि खाने की अत्यधिक इच्छा होती है।

फोलिक अम्ल की कमी से उत्पन्न एनीमिया

फोलिक अम्ल एक जल में घुलनशील विटामिन है। यह बहुत से पादप जन्य भोज्य पदार्थों एवं पशु जन्य भोज्य पदार्थों में पाया जाता है। जल में घुलनशील होने के कारण मानव शरीर में फोलिक अम्ल का अत्यधिक संग्रह नहीं हो सकता है। इसलिए यदि फोलिक अम्ल का दैनिक आवश्यकतानुसार सेवन नहीं किया जाता है तो इसकी कमी के लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

फोलिक अम्ल की कमी से मेगालोब्लास्टिक एनीमिया हो जाता है। फोलिक अम्ल की न्यूनता से अस्थिमज्जा में लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण पर असर पड़ता है। लाल रक्त कोशिकाओं का आकार बढ़ने लगता है एवं उनकी संख्या घटने लगती है।

मेगालोब्लास्टिक एनीमिया के कारण

यह एनीमिया विशेषकर गर्भवती माताओं तथा शिशुओं को होता है। यह निम्न कारणों से होता है:

- पौष्टिक तथा सन्तुलित आहार का सेवन न करने से।
- आहार में फोलिक अम्ल की कमी से।
- भोज्य पदार्थों का ठीक प्रकार से अवशोषण न होने पर ।
- बार-बार (जल्दी) गर्भधारण से।
- कुछ विशिष्ट दवाओं के सेवन से।
- अत्यधिक शारीरिक माँग होने के बावजूद उसके अनुरूप पौष्टिक भोजन का सेवन न करने से।
- बार-बार अतिसार होने से।
- संक्रमण एवं बीमारी के कारण।
- शल्य चिकित्सा के कारण।

- अत्यधिक शराब के सेवन से।

लक्षण

मेगालोब्लास्टिक एनीमिया में भी लौह तत्व की कमी जैसे ही लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। इसके अलावा इसमें अतिसार तथा वजन में हानि भी हो सकती है।

विटामिन बी-12 की कमी से होने वाला एनीमिया

विटामिन बी-12 को साएनोकोबैलेमिन (Cyanocobalamin) कहते हैं। मनुष्य ऊतकों में विटामिन बी-12 का निर्माण नहीं होता है। इसलिये विटामिन बी-12 हमें आहारीय स्रोतों से लेना आवश्यक होता है। विटामिन बी-12 केवल पशुजन्य भोज्य पदार्थों में पाया जाता है। मांस, यकृत, मछली, अंडा आदि इसके उत्कृष्ट स्रोत हैं। विटामिन बी-12 की कमी से मैगालोब्लास्टिक एनीमिया होता है। विटामिन बी-12 अस्थि मज्जा में परिपक्व लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण के लिए आवश्यक है। अतः इसे रक्त वर्धक तत्व भी कहते हैं। यह शरीर में डीएनए के निर्माण के लिए आवश्यक है। यह तंत्रीय ऊतकों की रक्षा करने वाले वसीय पदार्थ माइलिन के निर्माण के लिए आवश्यक है।

कमी के कारण: आहार में विटामिन बी-12 की कमी अथवा विशुद्ध शाकाहारी होने से शरीर में विटामिन बी-12 की कमी हो जाती है।

रोग के लक्षण: लाल रक्त कोशिकाएं आकार में बड़ी होकर संख्या में घट जाती हैं। हीमोब्लोबिन का स्तर काफी नीचे गिर जाता है। मुंह में छाले हो जाते हैं तथा त्वचा का रंग पीला दिखने लगता है। भूख न लगना भी इसका महत्वपूर्ण लक्षण है।

परनीसियस एनीमिया

यह एनीमिया आमाशयिक रस में पर्याप्त मात्रा में अन्तः कारक (Intrinsic Factor) तत्व न उपस्थित होने से शरीर में विटामिन बी-12 के ठीक प्रकार से अवशोषित न होने के कारण होता है। इस रोग की व्यापकता अधिक नहीं है। यह विटामिन बी-12 की सामान्य कमी से भिन्न है।

पोषण संबंधी एनीमिया का उपचार

लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया दुनिया में पोषण संबंधी सबसे व्यापक समस्या है। भारत में आधी से अधिक महिलाएं एवं काफी बड़े अनुपात में छोटे बच्चे इसका शिकार हैं। एनीमिया का उपचार आवश्यक है क्योंकि जनसंख्या का बड़ा हिस्सा इससे प्रभावित है। एनीमिया के उपचार में कारण को पहचानना एवं उसका उपचार, प्रभावित पोषक तत्व की कमी को दूर करना एवं लक्षणों को समाप्त करना सम्मिलित है।

लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया में सिर्फ हीमोग्लोबिन ही कम नहीं होता अपितु संग्रहित लौह तत्व भी समाप्त हो जाते हैं। एनीमिया के उपचार के लिए निम्नलिखित तरीके अपनाने चाहिए:

1. आहार में सुधार

लौह तत्व की कमी को ठीक करने के लिए आहार संशोधन प्रभावी उपाय है। आहार संशोधन का मुख्य उद्देश्य समुदाय के लोगों के रक्त में लौह तत्व का स्तर बढ़ाना एवं उसे उचित स्तर पर बनाये रखना है।

आहार में सुधार के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए:

- दैनिक आहार में ताजे फल, हरी पत्तेदार सब्जियां, खट्टे फल आदि अवश्य रूप से सम्मलित करने चाहिए। सस्ते फल जैसे अमरूद, केला, तरबूज लौह तत्व के अच्छे स्रोत हैं।
- लौह तत्व के उचित अवशोषण के लिए विटामिन सी युक्त आहार लेना चाहिए।
- दूध एवं दूध से बने पदार्थों का उपयोग भोजन के साथ न करके दो आहारों के मध्य नाश्ते के रूप में करना चाहिए।
- चाय, कॉफी का सेवन भोजन के दो घन्टे पहले एवं बाद में नहीं करना चाहिए।
- संभव हो तो भोजन को लोहे के बर्तन में पकाना चाहिए।
- भोजन से लौह तत्व की उपलब्धता बढ़ाने के लिए खमीरीकरण, अंकुरण आदि का उपयोग करके भोजन पकाया जा सकता है।

2. नियमित कृमिनाशक का प्रयोग

कृमिनाशक दवा से रक्त हानि एवं एनीमिया से तो बचाव होता ही है, साथ-साथ इसके प्रयोग से भूख भी ज्यादा लगती है और पेट एवं सिरदर्द जैसी समस्या समाप्त हो जाती हैं।

3. सम्पूर्ण टीकाकरण

बच्चों को संक्रमण से बचाने के लिए सभी प्रकार के टीके अवश्य लगवाने चाहिए।

4. स्वास्थ्य एवं पोषण शिक्षा

एनीमिया से बचाव एवं रोकथाम के लिये वृहत पोषण शिक्षा कार्यक्रम की आवश्यकता है। इसमें स्कूली शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

5. महिलाओं की उचित देखभाल

प्रजनन आयु में महिलाओं की उचित देखभाल अति आवश्यक है। प्रसव एवं प्रसवोपरान्त उचित देखभाल एवं लौह तत्व युक्त भोज्य पदार्थों के नियमित उपयोग को प्रोत्साहित करना चाहिए।

6. हीमोग्लोबिन का स्तर बढ़ाने के लिए दवा

200 मिली ग्राम फैरस सल्फेट वाली तीन गोलियाँ तीस दिन तक प्रतिदिन खाने से हीमोग्लोबिन का स्तर सामान्य होने के बाद भी दवा का प्रयोग करते रहना चाहिए जिससे शरीर का लौह भण्डार पुन: सामान्य हो सके।

लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया की रोकथाम

- एनीमिया से संबंधित जागरुकता पैदा करने के लिए समुदायों में पोषण शिक्षा प्रदान करना।
- समय-समय पर लौह तत्व एवं फोलिक अम्ल की गोलियां देना।
- छः महीने तक की आयु के शिशु को सिर्फ स्तनपान कराने के लिए प्रोत्साहित करना।
- बचपन से आहार एवं पोषण संबंधी अच्छी आदतों के निर्माण के लिए स्कूली शिक्षा।
- बच्चों को छः महीने पश्चात् पूरक आहार देने के लिए जागरुकता फैलाना।
- लौह तत्व युक्त भोज्य पदार्थों के उपयोग को प्रोत्साहित करना एवं उन्हें अपने रसोई उद्यान में उगाने के लिए जागरुक तथा प्रोत्साहित करना।

फोलिक अम्ल की कमी का उपचार

फोलिक अम्ल की कमी से उत्पन्न एनीमिया को दूर करने के लिए सबसे पहले जिस कारण से कमी उत्पन्न हो रही है उसे दूर करना आवश्यक है।

- इस प्रकार के एनीमिया के निवारण हेतु वयस्कों को 5-20 मिली ग्राम फोलिक अम्ल मुंह के द्वारा दिया जाता है। रोग की तीव्रता की स्थिति में 2-5 मिली ग्राम फोलिक अम्ल इंजेक्शन के माध्यम से रोगी की मांसपेशियों में दिया जा सकता है।
- एक अच्छा संतुलित आहार भी इस प्रकार के एनीमिया के निवारण में उपयोगी होता है।
- आहार में पर्याप्त मात्रा में विटामिन एवं खनिज लवण होने चाहिए। हरी पत्तेदार सब्जियां, मांस, अण्डे, साबुत अनाज एवं फलों को आहार में दैनिक रूप से सम्मलित करना चाहिए।
- गर्भवती महिलाओं को कम से कम 400 माइक्रोग्राम फोलिक अम्ल प्रतिदिन लेना चाहिए।

विटामिन बी-12 की कमी का उपचार

उपचार में आहारीय संशोधन एवं विटामिन बी-12 का खुराक इंजेक्शन सम्मलित है। आहार में पर्याप्त दूध, दही, अंडे आदि के सेवन से कमी को दूर किया जा सकता है। साधारणतया मैगालोब्लास्टिक एनीमिया के लिए मुख द्वारा प्रतिदिन 50 से 100 माइक्रोग्राम विटामिन बी-12 दिया जाता है। साथ ही खान-पान पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। पर्याप्त मात्रा में दूध, हरी पत्तेदार सब्जियां, फल, अंडे आदि का सेवन करना चाहिए ताकि विटामिन बी-12 के साथ फोलिक अम्ल भी प्राप्त हो सके। संतुलित भोजन करना चाहिए। यदि व्यक्ति मांसाहारी है तो यकृत का सेवन अधिकाधिक करना चाहिए। उच्च प्रोटीन युक्त आहार का सेवन करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 3

1. रिक्त स्थान भरिए।

a. एनीमिया की गम्भीर स्थिति में नाखून चम्मच जैसे आकार के हो जाते हैं, इसे .... कहते हैं।

b. फोलिक अम्ल की कमी से .... हो जाता है।

c. .... अस्थि मज्जा में परिपक्व लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण के लिए आवश्यक है।

d. गर्भवती महिलाओं को कम से कम .... फोलिक अम्ल प्रतिदिन लेना चाहिए।

13.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने शल्य चिकित्सा, क्षति अवस्थाओं, जलने तथा खाद्य एलर्जी की स्थिति में पोषण प्रबंध पर चर्चा की। शल्य चिकित्सा में पूर्व और पश्चात दोनों ही अवस्था में आहार नियोजन महत्वपूर्ण है। क्षति अवस्थाओं में मौखिक एवं नली द्वारा आहार दिया जा सकता है जो व्यक्ति की क्षति अवस्था पर निर्भर करता है। जलने की स्थिति में आहार नियोजन जलने की डिग्री पर निर्भर करता है। जलने पर आहार में ऊतकों के पुनर्निर्माण हेतु प्रोटीन की उच्च मात्रा देनी चाहिए। प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण अधिकतर गर्भावस्था में शुरु हो जाता है। माँ कुपोषित हो तो शिशु भी कुपोषित हो सकता है। बुखार, दस्त, खाँसी से बच्चा क्षीण हो जाता है और उसकी भूख भी कम हो जाती है। इससे बच्चा कुपोषण और बीमारियों के दुश्चक्र में फंस जाता है। कुपोषण क्वाशियोरकर एवं मरास्मस के रूप में परिलक्षित होता है। विश्व में भारतीय महिलाओं एवं बच्चों में एनीमिया सर्वाधिक पाया जाता है। लौह तत्व की कमी से होने वाली खून की कमी विश्व में पोषण संबंधी सबसे आम विकृति है। इसके असर से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर पड़ जाती है तथा शारीरिक एवं मानसिक क्षमता भी कम हो जाती है। शिशुओं में पोषण की कमी बौद्धिक विकास को प्रभावित करती है।

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. एक शब्द में परिभाषित कीजिए।
   a. अंतः शिरा तरीके से खिलाना (Intravenous Feeding)
   b. ऐनोरैक्सिया नरवोसा (Anorexia Nervosa)
   c. तीव्र चरण अथवा भाटा चरण
   d. द्वितीय डिग्री,

अभ्यास प्रश्न 2

1. बहुविकल्पीय प्रश्न
   a. (क)
   b. (ख)
   c. (ख)

अभ्यास प्रश्न 3

1. रिक्त स्थान भरिए।

a. कोइलोनाकिया/Koilonychia
b. मेगालोब्लास्टिक एनीमिया
c. विटामिन बी-12
d. 400 माइक्रोग्राम

13.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शल्य चिकित्सा पूर्व एवं पश्चात् पोषण संबधी देखभाल की चर्चा कीजिए।
2. विभिन्न क्षति अवस्थाओं में आहार नियोजन को समझाइए।
3. जलने का वर्गीकरण बताइए। जलने पर पोषण संबंधी आवश्यकताओं की व्याख्या कीजिए।
4. प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण तथा रक्ताल्पता के पोषण प्रबंधन पर प्रकाश डालिए।